जैन इतिहास प्रकाशन संस्थान—प्रथम पुष्प

खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास

प्रथम खण्ड--इतिहास खण्ड

(जैन धर्म—ऋषभदेव से महावीर तक, आचार्य परम्परा, जातियों का उद्भव एवं विकास, विभिन्न 273 जैन जातियां, प्रमुख जैन जातियों का परिचय, खण्डेलवाल जैन जाति का उद्भव, गोत्रों की स्थापना एवं उनका विस्तृत इतिहास, आचार्य, मुनि एवं भट्टारक, पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें, शासन में योगदान, सामाजिक रीति-रिवाज, साहित्य सृजन, कला एवं संस्कृति का संरक्षण, जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर आधारित)

लेखक एवं सम्पादक
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक
जैन इतिहास प्रकाशन संस्थान
बरकत नगर, जयपुर

प्रकाशकीय

जैन इतिहास प्रकाशन संस्थान की ओर से खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास—प्रथम भाग—इतिहास खण्ड पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है। इस संस्थान की स्थापना जैन समाज के इतिहास प्रकाशन के लिए की गई है। इस दिशा में अभी विशेष कार्य भी नहीं हुआ है। इसीलिये दिगम्बर जैन समाज की विभिन्न जातियों के इतिहास लिखने के साथ मे वर्तमान समाज का पूर्ण परिचय प्रकाशन की योजना बनायी गई है। राजस्थान के शास्त्र भंडारों, मूर्तिलेखों, प्रशस्तियो, शिलालेखो एवं अन्य ग्रन्थों में इतिहास की ढेर सारी सामग्री बिखरी पड़ी है इसके आधार पर सामाजिक इतिहास का महल खड़ा किया जा सकता है। सामाजिक इतिहास की दृष्टि से दिगम्बर जैन समाज की विभिन्न जातियों का अपना-अपना इतिहास है। धर्म एवं संस्कृति के विकास में सबका योगदान है। इन जातियो की संख्या कभी 237 तक पहुंच गयी थी जो अब 50–60 की संख्या मे सिमट गयी है। इसीलिये लुप्त प्राय: जातियों एव वर्तमान युग मे जीवित जातियो का इतिहास यदि लिपिबद्ध हो जावे तो वह वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ भावी पीढ़ी के लिए भी मार्ग-दर्शक का कार्य करेगा।

दिगम्बर जैन जातियों में खण्डेलवाल जैन जाति एक बड़ी जाति है जो विगत दो हजार वर्षों से धर्म एवं संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा कर रही है। देश के सभी प्रदेशों में वह पायी जाती है इसीलिए सबसे पहिले उसी का इतिहास लिखने का निश्चय किया गया। जब इतिहास लिखने की योजना को समाज के सामने रखा गया तो सभी ने अपनी शुभकामनाएँ भेजकर इतिहास लेखन के कार्य का स्वागत किया। गया के श्री रामचन्द्र जी रारा से भी प्रेरणाएँ मिलती रही।

प्रकाशन की समस्या को सुलझाने एवं समाज का अधिक से अधिक सहयोग एवं लगाव प्राप्त करने के लिए इतिहास प्रकाशन योजना के सदस्य बनाये गये। समाज का परिचय प्राप्त किया गया और इतिहास की सामग्री एकत्रित की गयी और अन्त में तीन वर्ष के सतत् परिश्रम के पश्चात् इतिहास का प्रथम खण्ड तैयार हो सका।

इतिहास के दूसरे खण्ड में समाज का विगत एक शताब्दी का इतिहास रहेगा तथा वर्तमान खण्डेलवाल जैन समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों का सचित्र परिचय रहेगा जिससे समाज को एक दूसरे को जानने में सुविधा होगी तथा एक शताब्दी में होने वाले सामाजिक आन्दोलन, समारोह एव अन्य गतिविधियों का परिचय रहेगा। यह खण्ड पूरा सचित्र होगा जिसमें करीब एक हजार पृष्ठ होगे।

उक्त दोनों भागों के पश्चात् हम दूसरी जातियो के इतिहास भी प्रकाशित करना चाहेंगे। आशा है इस दिशा में समाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

प्रस्तुत इतिहास की सामग्री उपलब्ध कराने मे हमे कितने ही महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिनके हम पूर्ण आभारी है इनमे से सर्वश्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार प० लूणकरण जी पाण्डे, अनूपचन्द जी दीवान, व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ मन्दिर सोनियान, डॉ० प्रेमचन्द जी रांवका मन्त्री शास्त्र भण्डार मन्दिर जी जोबनेर, पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। श्री राजेन्द्रकुमार जी लुहाडिया ने अपनी प्राचीन डाइरेक्ट्री देकर जो सहयोग दिया उनका भी मैं आभारी हूँ।

चि० नरेन्द्रकुमार कासलीवाल ने इस पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार की तथा श्री महेशचन्द्र जी जैन, मनोज प्रिन्टर्स ने पुस्तक के सुन्दर प्रकाशन में जो सहयोग दिया उसके लिए मैं दोनों का ही आभारी हूँ।

867, अमृत कलश
बरकत नगर, किसान मार्ग
टोंक फाटक, जयपुर

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक
जैन इतिहास प्रकाशन संस्थान

प्राक्कथन

मुझे डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तक "खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास—प्रथम भाग—इतिहास खण्ड" को पढ़ कर अपार हर्ष हुआ। भारतीय जातियों पर अब तक अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं जो प्रायः किंवदन्तियो और अनुश्रुतियो पर आधारित है किन्तु डॉ० कासलीवाल की यह प्रथम पुस्तक है जो न केवल अनुश्रुतियों किन्तु अधिकतर पट्टावलियो, अभिलेखों, प्रशस्तियों एवं प्राचीन पाण्डुलिपियों पर आधारित है। लेखक करीब चालीस वर्षों से भी अधिक समय से इस प्रकार की सामग्री संकलन में व्यस्त रहा है। यह ग्रन्थ उनकी गहन साधना का सुपरिणाम है। यही कारण है कि प्रस्तुत इतिहास मौलिक एवं प्रामाणिक बन गया है।

विभिन्न जातियों एवं उनके गोत्रों की उत्पत्ति का समय भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है क्योंकि पूर्व की अनेक जातियाँ प्रायः लुप्त हो गई है और नई-नई जातियों की संरचना होती रही है। अभी तक ऐतिहासिक दृष्टि से इन जातियो के उद्भव एवं विकास का व्यवस्थित अध्ययन नही हुआ है इसलिये मेरी समझ में डॉ० कासलीवाल जी का यह प्रथम प्रयास है जिसके लिए भारतीय इतिहास जगत् एवं सम्पूर्ण जैन समाज उनका आभारी रहेगा।

चूंकि खण्डेलवाल जाति का सम्बन्ध जैन धर्म से रहा है इसलिए विद्वान् लेखक ने ऋषभदेव से महावीर तक और उनके पश्चात् होने वाले आचार्यों की पट्टावलियों एवं प्राचीन जैन ग्रन्थों के आधार पर आचार्य परम्परा का वर्णन किया है। प्रस्तुत इतिहास में जैन धर्म में समय-समय पर होने वाले सघ भेदों पर भी विचार किया गया है। खण्डेलवाल जैन जाति का संबध प्राय मूल संघ के आचार्यों से रहा है। इन जैन संघों के साथ-साथ अन्य जातियो के प्रादुर्भाव एवं उनके इतिहास पर प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर प्रकाश डाला गया है यही नही अभिलेखों एवं प्रशस्तियों के आधार पर कुछ लुप्त जातियों एव गोत्रों की जानकारी भी दी गयी है।

इस पुस्तक में खण्डेलवाल जैन जाति के उद्भव पर विभिन्न विचारों की

चर्चा की गयी है। विद्वान् लेखक ने उन अभिलेखों एवं प्रशस्तियों का उल्लेख भी किया है जिनमें खण्डेलवाल जाति का पहिली बार उल्लेख हुआ है। ये सब तथ्य खण्डेलवाल जैन जाति की उत्पत्ति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते है।

लेखक ने खण्डेलवाल जैन जाति के 84 गोत्रों का भी इतिहास लिखा है। अनुश्रुतियों के अतिरिक्त लेखक ने अभिलेख और प्रशस्तियों के आधार पर यह भी बतलाने का प्रयत्न किया है कि इन गोत्रों के उल्लेख कहाँ-कहाँ मिलते है और उन गोत्रों में उत्पन्न होने वाले साधु-सन्तो एवं श्रावकों ने कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। यही नहीं इन गोत्रों के अलावा अभिलेखों एवं प्रशस्तियों मे कुछ नये गोत्रों की जानकारी भी दी है जो वर्तमान समय में लुप्त हो गये हैं।

डॉ० कासलीवाल जी ने खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न जैन आचार्यों, मुनियों एवं भट्टारकों के जीवन एवं कार्यों का वर्णन किया है। इस जाति में उत्पन्न होने वाले दीवानों का भी अच्छा परिचय दिया गया है जिन्होंने राज्यो की बहुत अच्छी सेवाएँ की थीं। भारतीय साहित्य सृजन में भी इस जाति के आचार्यों, कवियों एवं लेखकों का महान् योगदान रहा है। लेखक ने उनका भी विशद वर्णन किया है। इस जाति के लोगों द्वारा देश के विभिन्न नगरों एवं ग्रामों में आयोजित पंच कल्याणक महोत्सवों एवं मूर्ति प्रतिष्ठाओं का भी विस्तृत एवं सामाजिक वर्णन करके इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पाठकों के सामने रखा है। यही नही खण्डेलवाल श्रावकों द्वारा समय-समय पर अनेक स्थानों पर निर्मित मन्दिरो और मूर्तियों का भी उल्लेख किया है जो स्थापत्य एवं मूर्ति कला पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। यह ग्रन्थ इस जाति के सामाजिक जीवन के बारे में भी जानकारी देता है।

इस प्रकार डॉ० कासलीवाल जी का यह ग्रन्थ न केवल मध्यकालीन जैन इतिहास अपितु भारतीय इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। जातियो के इतिहास सम्बन्धी विपुल सामग्री बिखरी हुई है। देश के राजनैतिक इतिहास के साथ उसके सामाजिक इतिहास का भी उतना ही महत्त्व है। इसलिए प्रस्तुत इतिहास से अन्य जातियों के इतिहास लिखने की प्रेरणा मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। डॉ० कासलीवाल से भी मेरा तो यही अनुरोध है कि वे दूसरी जैन जातियो पर भी इसी प्रकार इतिहास लिखे।

अन्त मे मैं डॉ० कासलीवाल जी को ऐसा उपयोगी इतिहास ग्रन्थ लिखने के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

मोहन निवास
देवास रोड, उज्जैन
दिनांक 5 फरवरी, 1989

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन
अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति, पुरातत्व अध्ययन शाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

शुभकामना

डॉ० कासलीवाल से मेरा विगत 8–10 वर्षों से निकट का सम्पर्क है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के माध्यम से मेरा उनसे परिचय हुआ। हाड़ौती के प्रमुख जैन तीर्थ अतिशय क्षेत्र चादखेड़ी के इतिहास पर आयोजित दो सेमिनारो के वे कुलपति रहे तथा उसकी स्मारिका के वे सम्पादक रहे जिससे क्षेत्र के सम्बन्ध में काफी महत्त्वपूर्ण सामग्री समाज की जानकारी मे आई। अब तक उन्होंने पचासों पुस्तको का सम्पादन, लेखन एवं उनके सम्पादन मे सहयोग दिया है तथा साहित्य, इतिहास, कला एवं सस्कृति की नई-नई खोज उनके जीवन की उपलब्धियाँ रही हैं।

उनकी नवीनतम रचना "खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास" हमारे सामने है। दिगम्बर जैन समाज की विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में तथा विशेषत: खण्डेलवाल जैन जाति के सम्बन्ध में ढेर सारी सामग्री की खोज शोध के साथ उसे इतिहास की डोर से बांधा है। इतिहास लेखन के ऐसे दुष्कर कार्य को डॉ० कासलीवाल जैसे विद्वान् ही कर सकते हैं। उन्होने साहित्य साधना में अपने आपको समर्पित कर रखा है।

प्रस्तुत इतिहास के प्रकाशन से एक बात हमारे सामने आई है कि किसी जाति विशेष की उपलब्धियों को प्रकाश में लाने का अर्थ समूचे जैन समाज को गौरवान्वित करना है क्योंकि वह जाति विशेष भी समाज का ही एक अंग है। इसमें न जातिवाद की गन्ध आती है और न समाज की अन्य जातियों की अवमानना होती है। मेरा तो डॉ० कासलीवाल से यही अनुरोध है कि वे इसके पश्चात् दूसरी जातियों का इतिहास लिखकर प्रकाशित करावें। क्योंकि सभी जातियों के अपने-अपने केन्द्र स्थान हैं जैन साहित्य, संस्कृति, इतिहास एवं कला को उनका जो योगदान है उसको कभी नकारा नहीं जा सकता। इसलिये उनका बखान करना जैन संस्कृति अथवा इतिहास को ही प्रकाशित करना है।

डॉ० कासलीवाल की इस कृति से यह भी ज्ञात हुआ कि कभी जैन जातियों की संख्या 84 के स्थान पर 237 तक पहुंच गई थी। उनमें वर्तमान में 50–60 जातियाँ ही मिलती हैं। शेष जातियाँ कहाँ गई, किस कारण विलीन हो गई और

वर्तमान में जो जैन जातियाँ बची हैं उनकी सुरक्षा के क्या उपाय किये जाने चाहिए। यह एक अहम् प्रश्न जैन समाज के सामने उपस्थित है। जो जैन जातियाँ समाप्त हो गई हैं उनका भी कुछ न कुछ इतिहास तो अवश्य रहा होगा। उन सबका संकलन आवश्यक है जिससे हमारे अतीत का गौरव सामने आ सके।

खण्डेलवाल जैन जाति जैन धर्म की रीढ रही है। उसने देश के अधिकांश प्रदेशों में जैन संस्कृति को सुरक्षित रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान में उनका वर्चस्व रहा है और आज भी पाया जाता है। खण्डेला से निकल कर उसने किस प्रकार देश के अन्य प्रदेशों में अपना पाँव फैलाया यह सब रोमांचकारी कहानी है जिसका प्रस्तुत इतिहास मे उल्लेख किया है। डॉ० कासलीवाल ने इस जाति विशेष का समग्र इतिहास लिखकर एक प्रशंसनीय कार्य किया है जिसके लिए उनका जितना आभार माना जावे वही कम होगा। उनके अतिरिक्त कौनसा विद्वान् 68 वर्ष की आयु मे देश के विभिन्न भागों में घूमकर सामग्री का संकलन करना चाहेगा। एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि उन्होंने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की तरह एक "जैन इतिहास प्रकाशन संस्थान" की स्थापना की है जिसके माध्यम से इसी प्रकार जैन समाज का इतिहास प्रकाशित होता रहेगा। समाज का उन्हें अपने अनुकूल वातावरण बनाने में जो सफलता मिली है जिसके लिए उन्हें हार्दिक बधाई है। हमारी शुभकामनाये उनके साथ है।

त्रिलोकचन्द कोठारी
महामन्त्री
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

एक अभिलाषा पूरी हुई

खण्डेलवाल जैन समाज के इतिहास को विस्तार से पुस्तक रूप में देखने की मेरी विगत 50 वर्षों से अभिलाषा थी। विदिशा (मध्य प्रदेश) निवासी पूज्य राजमल जी बड़जात्या के द्वारा ईस्वी सन् 1910 में प्रकाशित "खण्डेलवाल जैन इतिहास" करीब 50 वर्ष पूर्व देखने तथा पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसी समय एक प्रामाणिक इतिहास प्रकाशित कराने की इच्छा जाग्रत हुई। हमने पूज्य राजमल जी से इस विषय में पत्र व्यवहार भी किया था। संवत् 2004 का उनका लिखा हुआ पत्र जिसमें इतिहास के विषय में उनके कई सुझाव लिखे हुए हैं तथा वह पत्र अभी तक हमारे पास सुरक्षित है तथा धीरे-धीरे मैंने 10–12 प्रकार के इतिहासों का सकलन किया जिसमे एक प्राचीन हस्तलिखित इतिहास की प्रति भी है। जब भी किसी जैन पत्र-पत्रिका में इस समाज के सम्बन्ध में कोई समाचार, लेख एवं टिप्पणी प्रकाशित होती तो मैं उसकी कटिंग रख लेता। किसी ग्राम, नगर एवं समारोह में जाने का अवसर मिलता तब भी खण्डेलवाल जैन जाति के इतिहास की कड़ियाँ खोजने मे लगा रहता।

सन् 1974 में भगवान महावीर का 2500 वाँ परिनिर्वाण महोत्सव मनाया गया। स्थान-स्थान पर गोष्ठियाँ, सम्मेलन, सेमिनार आदि आयोजित हुये। गया जैन समाज ने भी विशाल रूप से एक सेमिनार का आयोजन किया जिसमें देश के 50 से भी अधिक विद्वानो ने भाग लिया। इसी सेमिनार में डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल भी भाग लेने आये। जब वे मेरे निवास "होटल सराबगी" में आये तो वहाँ उनसे इतिहास लेखन के बारे में कुछ चर्चा हुई। लेकिन सेमिनारों के दूसरे कार्यक्रमों मे व्यस्त रहने के कारण उनसे विशेष चर्चा नहीं हो सकी। फिर भी मेरे दिमाग में यह अवश्य जम गया कि डॉ० कासलीवाल चाहें तो वे इतिहास लेखन के कार्य को पूरा कर सकते है। इसके पश्चात् 2–3 वर्ष तक फिर कोई प्रगति नहीं हुई।

सन् 1978–79 में मुझे जयपुर जाना पड़ा। मैं डॉक्टर साहब के घर पर गया। उस समय वे अपनी अकादमी की स्थापना में लगे हुये थे। उनकी जैन हिन्दी

साहित्य को 20 भागों में लिखने एवं प्रकाशित करने की योजना मूर्त रूप लेने लगी थी। डॉ० कासलीवाल ने मुझे अकादमी का उपाध्यक्ष सदस्य बनने के लिए कहा जिसकी मैंने तत्काल स्वीकृति दे दी। उस समय मैंने उनसे खण्डेलवाल जैन जाति का इतिहास लिखने की बात फिर चलाई। डॉक्टर साहब ने कहा कि यह योजना बहुत व्यय साध्य एवं श्रम साध्य है तथा पर्याप्त समय लेने वाली है। व्यय साध्य के लिए तो मैंने उनसे निवेदन किया कि इस पर जितना भी व्यय होगा या तो मैं दूंगा या फिर और कोई प्रयत्न करूंगा। डॉक्टर साहब ने इतिहास लेखन के कार्य को जब स्वीकार किया तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मैंने तत्काल घर जाकर प्रारम्भिक खर्च के लिए कुछ अमाउन्ट भी भेज दिया।

डॉक्टर साहब फिर भी अपनी अकादमी के कार्यों में व्यस्त रहे और इतिहास लेखन की ओर वे अधिक नहीं दे सके।

समय बीतता गया और मैं उनको बराबर तकाजा करता रहा। अन्त में सन् 1985 से इस कार्य को उन्होंने पुन: हाथ मे लिया और अपने ही बलबूते पर आर्थिक साधन जुटाकर वे इस काम में लग गये। एक बार हम दोनो खण्डेलवाल जैन समाज के जागा (भाट) श्री रतनलाल जी के पास नसीराबाद सावर भी गये और उनका इतिहास से सम्बन्धित रेकार्ड देखा। उनके रिकार्ड से कुछ नोट्स भी लिये। लेकिन दु:ख इसी बात का है कि श्री रतनलाल जी के परिवार ने उनकी अनुपस्थिति में अधिकाश रेकार्ड बेच दिया या जला दिया। उनको भी इसी बात का खेद है कि समाज उसके श्रम का मूल्यांकन नही करती है जिससे इस वृत्ति के आधार पर रोजी-रोटी चलाना भी कठिन हो गया है और मुझे दूसरा कार्य ढूढना पड़ा है।

इतिहास लेखन का कार्य बहुत श्रम एव व्यय साध्य है। पहले हमारा विचार एक ही इतिहास खण्ड निकालने का था लेकिन डॉ० कासलीवाल ने अपनी से सूझबूझ वर्तमान खण्डेलवाल जैन समाज का परिचय खण्ड भी निकालने की योजना बनाई जिसके लिए उन्हें राजस्थान, बिहार, आसाम, उत्तर प्रदेशो के पचासों नगरों एव गांवों मे जाकर इतिहास सम्बन्धी परिचय वाली सामग्री एकत्रित करनी पड़ी। मै भी उनको साथ लेकर बिहार के डाल्टनगंज, गया, कोडरमा, राची, हजारीबाग, रफीगंज, सरिया जैसे बीसो नगरों मे गया और समाज का जितना सहयोग हो सकता था उनको दिलाया।

अब इतिहास खण्ड छपने के पश्चात् हमारा तथा डॉक्टर साहब का बिहार, बंगाल एवं उड़ीसा जाने का कार्यक्रम है जिससे दूसरे खण्ड मे इन प्रदेशो की खण्डेलवाल जैन समाज का परिचय उपलब्ध कराया जा सके। मुझे पूर्ण आशा है कि समाज का हमें पूर्ण सहयोग मिलेगा।

डॉ० कासलीवाल जी एक निष्ठावान विद्वान् है। साहित्य लेखन एवं प्रकाशन ही उनकी एकमात्र रुचि है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उनकी एक जीवित संस्था है जिसके माध्यम से अब तक हिन्दी जैन कवियों पर दस भाग प्रकाशित हो चुके है। हमारा यह भी सौभाग्य है कि वे स्वयं खण्डेलवाल जैन जाति में उत्पन्न हुये हैं इसलिये उस जाति की संस्कृति, रहन-सहन, समाज व्यवस्था को जानने एवं लिखने मे जितना उनका अधिकार है वह अन्य जैन जाति के विद्वान् को नहीं हो सकता।

खण्डेलवाल जैन समाज के इतिहास को प्रकाशित देखकर मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता है तथा मुझे इस बात का गहरा सन्तोष है कि यह अमूल्य कृति मेरे जीवन काल में प्रकाशित हो गई। अन्त मे, मैं डॉ० कासलीवाल जी का किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ। वास्तव मे समाज का इतिहास लिखकर उन्होंने जो ऐतिहासिक कार्य किया है उसके लिए देश एवं समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा। ऐसे विद्वान् को अपने बीच में पाकर हम सब गौरवान्वित हैं।

होटल सरावगी
चर्च रोड, गया
दिनांक 15 जनवरी, 1989

रामचन्द्र जैन रारा

लेखक की कलम से

"खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास—प्रथम खण्ड" (इतिहास खण्ड) को मुझे पाठकों के हाथों में देते हुये अतीव प्रसन्नता है। मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि आज मेरी वर्षों की साधना का एक भाग पूरा हुआ है। इतिहास का दूसरा खण्ड भी इसी वर्ष पाठकों के हाथों में पहुच जावेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

किसी भी देश एवं समाज को जानने के लिए इतिहास ही उसका जीवन्त परिचायक होता है इसलिए जिस समाज एवं जाति का अपना इतिहास नही है, त्याग एवं बलिदान की कहानियाँ नही है, धर्म एवं संस्कृति पर मर मिटने की भावना नही है वह समाज तो जीवित होता हुआ भी मृतप्राय है। जैन समाज विशाल समाज है। उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक वह फैला हुआ है। उसकी सस्कृति एवं सभ्यता उतनी ही प्राचीन है जितनी प्राचीन किसी दूसरे भारतीय समाज की हो सकती है। लेकिन इतना होते हुये भी उसका कोई लिपिबद्ध इतिहास नही है। इसके अतिरिक्त जैन समाज सैकड़ो जातियो में बंटा हुआ है। प्रस्तुत इतिहास मे मैने 237 जैन जातियो की नामावली दी है जिनका नामोल्लेख विभिन्न विद्वानो ने किया है। जैन समाज मे जो 84 जातियो की प्रसिद्धि मिली हुई है वह भी एकमात्र 84 संख्या के प्रति एक आसक्ति का परिणाम मात्र है।

लेकिन दुःख की बात है इन जैन जातियो का अब तक कोई व्यवस्थित इतिहास नही लिखा जा सका तथा जिसकी आवश्यकता को वर्षों से अनुभव किया जा रहा है। इतिहास नहीं होने पर किंवदन्तियाँ उड़ती है और वे ही हमारे इतिहास का आधार बन जाती है। मुझे यहाँ यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि पिछले दो वर्षों में सन् 1987 एवं 1988 में ही पल्लीवाल, जैसवाल एवं बरैया इन तीन जैन जातियों के इतिहास प्रकाशित होकर समाज के सामने आये है। पल्लीवाल जैन जाति के इतिहास के लेखक युवा विद्वान् डॉ० अनिलकुमार जैन हैं तथा शेष दोनो इतिहास श्री रणजीत जैन एडवोकेट लश्कर-ग्वालियर ने लिखकर एक यशस्वी कार्य किया है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि पण्डित जगनमोहनलाल जी शास्त्री परवार समाज का इतिहास लिख रहे हैं। इस तरह यदि जैन समाज की सभी जातियों का अलग-अलग इतिहास प्रकाशित हो जावे तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

खण्डेलवाल जैन जाति दिगम्बर जैन समाज की एक प्रमुख जाति है। उसकी संख्या, संस्कृति, धर्म एवं समाज को उसकी देन, साहित्य एवं कला मे उसका योगदान किसी भी जाति से कम नहीं है इसलिये सभी दिशाओं में उसकी व्यापकता को देखते हुये मैंने उसे खण्डेलवाल जैन समाज नाम दिया हैं और इसी नाम से उसका इतिहास लिखा है।

इतिहास लेखन की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास श्री राजमल जी बड़जात्या बम्बई ने किया और सन् 1910[1] में "खण्डेलवाल जैन इतिहास" प्रकाशित कराया जिसमें 84 गोत्रो के नामों के अतिरिक्त खण्डेलवाल जाति की खण्डेला से उत्पत्ति का एक अति संक्षिप्त इतिहास दिया है। इसके पश्चात् आगरा के श्री मटरूमल जी बैनाड़ा ने भी पूर्व प्रकाशित कथा के आधार पर एक अति संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित करवाया था।[2] इनके अतिरिक्त कुछ जैन विद्वानो ने पत्र-पत्रिकाओ में खण्डेलवाल जैन जाति के इतिहास पर प्रकाश डाला और 84 गोत्रो की नामावली प्रकाशित कराई। लेकिन इस समाज का कोई व्यवस्थित पुस्तकबद्ध इतिहास नही लिखा जा सका। खण्डेलवाल जैन महासभा जो इस जाति विशेष का ही सगठन था उसने भी इस कार्य को या तो महत्व नही दिया या फिर इतिहास लिखने वाले किसी विद्वान् की सेवाएँ नहीं ली जा सकीं। कुछ भी हो इतिहास का का कार्य विगत एक शताब्दी से अवरुद्ध ही पड़ा रहा।

खण्डेलवाल जैन समाज का इतिहास लिखने की जब चर्चा चली तो मैंने इस दिशा मे कार्य करने का संकल्प किया। जब मैने अपने विचारों से समाज को अवगत कराया तो समाज के सभी शीर्षस्थ महानुभावों ने अपनी शुभकामनाएँ भेजते हुए इतिहास को लिखने के कार्य को हाथ मे लेने की प्रेरणा दी। नागपुर प्रान्तीय खण्डेलवाल महासभा ने अपने छिन्दवाड़ा अधिवेशन मे मेरे कार्य को सराहा और फिर हस्तिनापुर में समाज के सभी महानुभावो ने इतिहास लेखन के कार्य में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। लेकिन दूसरी ओर समाज के ही कुछ व्यक्तियों ने इतिहास लेखन के कार्य को जातिवाद फैलाने की संज्ञा दी तथा मुझे खण्डेलवाल अग्रवाल पोरवार आदि जातियों के नाम से समाज को नही बांटने के लिए कहा। उस समय मैने उन सज्जनो से यही निवेदन किया कि किसी समाज का या जाति का इतिहास लिखने में कभी जातिवाद नही फैलता। यह तो उस जाति के उद्भव एवं विकास तथा समाज को उसके योगदान की कहानी कहने के समान है। क्योंकि यदि कोई जाति अथवा समाज है तो उसका अपना इतिहास भी है

1. खण्डेलवाल जैन इतिहास—प्रकाशन तिथि सन् 1910।
2. आगरा से प्रकाशित।

जिसको जानना जातीय बन्धुओं के साथ साथ समाज के लिए भी अत्यावश्यक है। इतिहास को नकारने का अर्थ हमारे पूर्वजों के अस्तित्व को भी नहीं मानना है। मैंने उनसे यह भी कहा कि इस इतिहास के पश्चात् दूसरी जैन जातियो के इतिहास लेखन की भी योजना है क्योंकि हमारा किसी जाति अथवा समाज से कोई विरोध नहीं है। हम तो सभी जातियो का इतिहास लिखना चाहते है। हमारी यह योजना शीघ्र ही पूरी हो यही हमारी भावना है।

खण्डेलवाल जाति का अपना गौरवपूर्ण इतिहास है। विगत 1945 वर्षों से उसका अपना इतिहास है। प्रारम्भ में उसमे अधिकांश परिवार क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित थे। इस जाति में जितने विशिष्ट पुरुष हुये उतनी संख्या अन्यत्र नहीं मिलेगी। खण्डेला नगर से निकल कर वह सारे देश में फैली है। अब तो विदेशों में भी सैकड़ो परिवार जाकर रहने लगे है।

प्रस्तुत इतिहास को मैंने 10 अध्यायों मे विभक्त किया है—

प्रथम अध्याय मे पृष्ठभूमि के रूप में जैन धर्म का इतिहास ऋषभदेव से महावीर तक, आचार्य परम्परा, प्रमुख आचार्यों की नामावली एवं शताब्दियो के अनुसार उनके प्रमुख ग्रन्थों के नाम भी दिये गये हैं।

द्वितीय अध्याय में संघ भेद, जातियों का प्रादुर्भाव, 84 जातियों का उद्‌भव एवं विकास, 237 जैन जातियो की नामावली, सन् 1914 की गणना के अनुसार जातियों की जनसख्या, प्रमुख 30 जैन जातियों का परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय में खण्डेला नगर मे महामारी का प्रकोप, 101 दिगम्बर मुनियों की आहुति, आचार्य जिनसेन का आगमन, रोग की शान्ति, महाराजा खण्डेल गिरी एवं आचार्य जिनसेन के मध्य वार्तालाप, महाराजा खण्डेलगिरी द्वारा जैन धर्म में दीक्षित होना, उसके पश्चात् खण्डेलवाल जाति के उद्‌भव का विस्तृत इतिहास लिखा गया है।

चतुर्थ अध्याय में 84 गोत्रों का ऐतिहासिक परिचय, विभिन्न गोत्रो के श्रावकों का धर्म, संस्कृति एव समाज के विकास में योगदान एवं 84 गोत्रो के अतिरिक्त मिलने वाले अन्य गोत्रो का प्रामाणिक परिचय दिया गया है।

पंचम अध्याय मे खण्डेलवाल समाज में जन्म लेने वाले आचार्यों, मुनियों एवं भट्टारकों का विस्तृत परिचय दिया गया है।

षष्ठ अध्याय मे समाज द्वारा विभिन्न 56 नगरों मे समय-समय पर आयोजित पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं का विवरण, प्रतिष्ठाचार्यों एवं प्रतिष्ठाकारकों के नामों का उल्लेख किया गया है। विगत 1945 वर्षों में एक नगर में कितनी बार पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएँ हुई हैं इसका भी विवरण दिया गया है।

सप्तम अध्याय मे राज्य प्रशासन में योगदान देने वाले 54 जैन दीवानों के जीवन एवं उनकी धार्मिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है।

अष्टम अध्याय में उन विद्वानों का परिचय मिलेगा जिन्होंने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा में साहित्य सृजन करने का गौरव प्राप्त किया है। ऐसे विद्वानों की संख्या 88 गयी है।

नवम अध्याय में समाज का तेरह बीस एवं गुमान पंथों मे विभाजन के अतिरिक्त सामाजिक रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालते हुए समाज के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो का जीवन परिचय दिया गया है।

दशम अध्याय में कला एवं संस्कृति के साथ प्रमुख कलापूर्ण मन्दिरों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इतिहास की खोज में

प्रस्तुत इतिहास मेरी स्वयं की विगत 40 वर्षों की साहित्य साधना का सुफल है। राजस्थान के 100 से अधिक जैन शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध सामग्री, मूर्तिलेख, हस्तलिखित पाण्डुलिपियों एवं दूसरे प्रकाशित तथा अप्रकाशित सामग्री के आधार पर प्रस्तुत इतिहास लिखा गया है। लेकिन वह सामग्री भी जब अपर्याप्त लगी तो मुझे राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, आदि प्रदेशों के कोई 70–80 गाँवों एवं नगरो में घूम कर इधर-उधर बिखरी हुई सामग्री का संकलन करना पड़ा। खण्डेलवाल समाज के इतिहास का राजस्थान ही प्रमुख स्रोत है और यहाँ जयपुर, आमेर, सांगानेर, मोजमाबाद अजमेर, केकडी, नसीराबाद मालपुरा, टौंक, टोडारायसिंह, निवाई, साभर, लुणवां, कुचामण, पांचवा लाडनूं, सुजानगढ़, अलवर, भीलवाडा, मांडलगढ़, शाहपुरा, सवाई माधोपुर, राणोली, सीकर, खण्डेला, रेनवाल, जोबनेर सैंथल, दौसा आदि नगरों के अलावा उत्तर प्रदेश मे आगरा, लखनऊ, बिलारी, रामपुर, मेरठ देहली, मैनपुरी, गोरखपुर, सीतापुर पूर्वान्चल प्रदेश के गोहाटी, डीमापुर, तिनसुखिया, डिब्रूगढ़, मणिपुर एव बिहार मे गया, कोडरमा, डाल्टनगंज, हजारीबाग, रामगढ़, सरिया, आदि मे घूम कर इतिहास लेखन का कार्य करना पड़ा। वहां की समाज से प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त की। मेरी इस यात्रा के कारण इतिहास के कितने ही बन्द पृष्ठ खुले है और वहां इतिहास के दोनो खण्डो के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई है। मुझे यह लिखते हुये भी हर्ष होता है कि दो चार नगरो को छोड़कर अधिकाश मे वहाँ के समाज का सभी तरह का सहयोग मिला जिसके लिये मैं उन सभी महानुभावो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विशेष सहयोग

इतिहास लेखन की प्रेरणा के स्रोत है **गया** के श्री रामचन्द्र जी रारा जो खण्डेलवाल जैन जाति के इतिहास मे विगत 30–40 वर्षों से पूर्ण रुचि ले रहे है। उन्होंने मुझे प्रेरणा ही नही दी लेकिन वे स्वयं मुझे साथ लेकर बिहार एव राजस्थान के

कुछ गाँवों में घूमे हैं। इस तरह के उत्साही एवं लगनशील व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं। उन्होंने अपने पास संकलित सामग्री को भी मुझे देकर इतिहास लेखन में जो योग दिया और भविष्य में जो सहयोग मिलेगा उसके लिए मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

इसके अतिरिक्त खण्डेलवाल जैन समाज के प्रमुख माननीय श्री निर्मलकुमार सेठी लखनऊ, श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा, श्री अमरचन्द जी पहाड़िया कलकत्ता, श्री पूनमचन्द जी गंगवाल झरिया, श्री हरकचन्द जी सरावगी कलकत्ता, श्री चैनरूप जी बाकलीवाल डीमापुर, श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल, श्री राजकुमार सेठी डीमापुर, श्री सागरमल जी सबलावत डीमापुर, श्री मानमल जी झांझरी कोडरमा, रायबहादुर श्री हरकचन्द जी सरावगी रांची, श्री रतनलाल दुलीचन्द डीमापुर, श्री सोहनलाल जी पाटनी गोहाटी, श्री हुकमीचंद जी सरावगी गोहाटी, श्री मन्नालाल जी बाकलीवाल मणिपुर, श्री डूंगरमल जी गंगवाल डीमापुर एवं श्री सत्यन्धरकुमार जी सेठी उज्जैन, का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिनका इतिहास लेखन के कार्य में मुझे खूब सहयोग मिला है। श्री कोठारी जी ने तो अपनी शुभकामनाएँ भी लिख कर भेजी है।

प्रस्तुत इतिहास पर प्राक्कथन लिखने के लिए मैं प्रो० कैलाशचन्द जी जैन विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन का भी आभारी हूँ। डॉ० जैन प्राचीन इतिहास के बड़े भारी विद्वान् है तथा राजस्थान एवं मालवा के इतिहास पर उन्होंने बहुत कार्य किया है।

अन्त में मैं उन सभी महानुभावों का भी आभारी हूँ जिनका प्रस्तुत इतिहास लेखन में किसी न किसी प्रकार का सहयोग मिला है।

दिनांक 15 जनवरी, 1989 **डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल**

विषय-सूची

अध्याय 1

पृष्ठभूमि

किसी देश एवं समाज को जानने के लिए उसके इतिहास को जानना आवश्यक है । क्योंकि इतिहास उस शीशे के समान है जिसमें किसी के अतीत को झाक कर देखा जा सकता है । वर्तमान को सावधान किया जा सकता है तथा भविष्य मे सुखद जीवन-यापन के लिये परिवर्तन परिवर्द्धन किया जा सकता है । जिस समाज अथवा जाति का अपना कोई इतिहास नही वह समाज निष्प्राण समझा जाता है । इतिहास एक ओर बलिदान, त्याग एवं उत्सर्ग की कहानी कहता है तो दूसरी ओर वह हमें हमारी संस्कृति, साहित्य एवं पुरातत्व का बोध भी कराता है । महापुरुषो के जीवन से प्रेरणा देने वाला इतिहास ही तो है । इसलिये इतिहास का लिपिबद्ध होना प्रत्येक देश, समाज एवं जाति के लिये उतना ही आवश्यक है जितना उसको अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये अन्य साधनो की आवश्यकता होती है । राजनैतिक इतिहास को तो हम फिर भी जान लेते है क्योकि वह शासन से बधा हुआ होता है लेकिन सामाजिक इतिहास के प्रति हम सदैव उदासीन बने रहते है और उसे लिपिबद्ध करने का हम विशेष प्रयास नही करते । हमारी विशाल सांस्कृतिक धरोहर है मूर्तिलेख, शिलालेख, प्रतिष्ठित प्रतिमायें, पट्टावलियाँ एवं प्रशस्तियाँ, विशाल एवं जीते जागते मदिर, सामाजिक परम्परायें और इन सबमें अधिक महत्वपूर्ण है हमारा साहित्य जिसमें हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास के पृष्ठ अंकित है ।

जैनधर्म एवं समाज का इतिहास

जैनधर्म एवं जैन समाज दोनों ही प्राक् ऐतिहासिक काल से भारतीय संस्कृति के प्राण रहे हैं । देश में जैनधर्म विभिन्न नामो से जाना जाता रहा । आत्म-धर्म, आर्हत् धर्म, निर्ग्रंथ धर्म, श्रमण धर्म आदि विभिन्न नाम इस धर्म के ही रूप रहे है । इसलिये जैनधर्म सनातन धर्म है । वह एक ऐसी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है जो शुद्ध भारतीय होने के साथ-साथ यहां की प्राचीनतम संस्कृति है । उसके उद्भव

एवं विकास की कहानी उस सुदूर प्राक् ऐतिहासिक काल में निहित है जिसको काल की सीमा में नही बांधा जा सकता । उसका उत्कर्ष वैदिक काल से भी पूर्व हो चुका था । मोहनजोदडो एवं हड़प्पा में प्राप्त श्रमण सस्कृति के अवशेष इसके स्पष्ट प्रमाण है ।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में जैन धर्म के 24 तीर्थङ्कर हो चुके हैं । जिन्होंने देश एवं विश्व को अहिंसा, दया, सत्य, समता एवं सह-अस्तित्व को जीवन में उतारने का अमोघ मंत्र दिया । प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव एवं अंतिम तीर्थङ्कर महावीर द्वारा बताया गया मार्ग आज भी उतना ही उपादेय एवं प्रासंगिक है जितना पहिले कभी रहा होगा । इसका महत्व न कभी पहिले खण्डित हो सका और न भविष्य मे खण्डित होने की आशा है ।

तीर्थङ्कर ऋषभदेव

भारत भूमि पर वर्तमान अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर थे । उनका जन्म अयोध्या मे महाराजा नाभि के पुत्र रूप मे हुआ । उनकी माता मरुदेवी थी । तीर्थङ्कर ऋषभ मानव सस्कृति के प्रथम सूत्रधार थे । उन्होंने अहिंसक समाज व्यवस्था का सूत्रपात किया और असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह क्रियाओं के माध्यम से जीवनयापन की शिक्षा देकर देश को वैज्ञानिक युग मे प्रवेश दिलाया । वे ऐसे युग मे पैदा हुए जब देश संक्रान्तिकाल से गुजर रहा था । वन्य जीवन, छोटे-छोटे कबीलो का जीवन एवं कल्पवृक्षो पर आधारित जीवन को नयी दिशा की ओर मोडा तथा सबको ग्रामीण जीवन एवं नागरिक जीवन जीना सिखाया । समाज को एक सूत्र मे बाधने एवं सब में अपने-अपने कार्यों के प्रति निष्ठा जाग्रत करने के लिये समाज को क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र वर्गों मे विभाजित किया और अपने जीवन मे ही उसके अच्छे परिणाम देखें ।

ऋषभदेव ने अपनी दोनो पुत्रियो ब्राह्मी और सुन्दरी को लिपि विद्या एवं अक विद्या सिखलाई और उन्हे अपनी-अपनी शिक्षा मे पारगत बनाया । जैन मान्यता के अनुसार ब्राह्मी लिपि का नामकरण ऋषभ पुत्री ब्राह्मी के नाम पर हुआ । ऋषभदेव ने विवाह किया, सुनन्दा एव यशस्वती को अपनी रानियां बनाई । राजा बने । शासन सूत्र सम्हाला । भरत बाहुबली आदि 100 पुत्रो के पिता बने और अन्त में अपने बडे पुत्र भरत को राज्य देकर ससार से विरक्त होकर निर्ग्रन्थ अवस्था को प्राप्त हुए । कैवल्य होने के पश्चात् लम्बे समय तक देश के विभिन्न भागों में विहार करके हिमालय के कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया । उनका जीवन भारतीय अहिंसक जीवन का प्रतिबिम्ब बन गया ।

भरत और भारत

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत थे । वे प्रथम सम्राट् थे । उन्होंने इस देश का नाम भारत रखा और वह भारतवर्ष कहलाने लगा । जिस दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से भारत का नाम माना जाता है वह तो सम्राट् भरत के बहुत बाद में हुए थे । सम्राट् भरत ने ही इस देश को राजनैतिक स्वरूप प्रदान किया । जैन भूगोल के अनुसार उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सारा देश भरत क्षेत्र कहलाता है । यहां गगा एवं सिन्धु नदी बहती है और देश की भूमि को सस्यश्यामला बनाती है । सम्राट् के छोटे भाई बाहुबलि ने कर्नाटक की चन्द्रगिरि पहाड़ी पर जाकर तप साधना की और कैवल्य प्राप्त किया था । इसलिये उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक सारा देश भारतवर्ष कहलाता है ।

चातुवर्ण की स्थापना

भगवान ऋषभदेव ने समाज को तीन वर्णों में विभाजित किया था लेकिन उनके पुत्र सम्राट् भरत ने इसमें एक वर्ण और जोड़ा और चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की । सम्राट् भरत चाहते थे कि जो अणुव्रतो के पालन करने मे आगे रहते है, श्रावको मे श्रेष्ठ है ऐसे व्यक्तियो को दान देने से पुण्य लाभ होता है तथा गुणो की वृद्धि होती है । इसलिये ऐसे व्यक्तियों को दान देने के लिये सम्राट् ने उन्हें ब्राह्मण के नाम से सम्बोधित किया और एक नये वर्ण की स्थापना की । व्रतो के सस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्याय पूर्वक धन कमाने से वैश्य तथा नीचवृत्ति का आश्रय लेने से शूद्र कहलाये गये । लेकिन जब ऋषभदेव को चतुर्थ वर्ण स्थापना का समाचार स्वयं सम्राट् भरत ने निवेदन किया तो उन्होंने भरत के उक्त कदम की सराहना नही की । सम्राट् ने एक बार जो घोषणा कर दी उस घोषणा को वापिस लेने में उनकी अकुशलता का बोध होता इस कारण उन्होंने यही कहा कि जिनकी सृष्टि की जा चुकी है उन्हें नष्ट करना ठीक नहीं । यही कह कर उन्होंने आगे कुछ नही कहा ।

भगवान ऋषभदेव के पश्चात् इसी देश में अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन-नाथ, सुमतिनाथ, पदमप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयान्सनाथ, वासपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शातिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लि-नाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर-वर्धमान तक 23 तीर्थङ्कर और हुये जिन्होंने देशवासियों को ही नहीं किन्तु मानव मात्र को शांति-पूर्वक जीवन यापन का उपदेश देकर समाज के विकास में अपना पूर्ण योगदान दिया । नेमिनाथ पार्श्वनाथ एवं महावीर तो इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष माने जाते है लेकिन उनके पूर्व में होने वाले तीर्थङ्करों का भी धीरे-धीरे इतिहास मिलने लगा है । वैसे विगत अढ़ाई हजार वर्षों से इन तीर्थङ्करो की इसी तरह मूर्तियों का

निर्माण होना, मंदिरों में प्रतिष्ठा किया जाना, पूजा के अतिरिक्त साहित्य में उनका उल्लेख मिलना भी एक प्रकार से इतिहास सिद्ध होने के बराबर ही है। देश एवं विदेश के सभी इतिहास मनीषियो ने भी जैन धर्म के 24 तीर्थङ्करों के बारे मे अपनी सहमति प्रकट की है।

तीर्थंकर नेमिनाथ

नेमिनाथ 22वें तीर्थंकर थे। नेमिनाथ और श्रीकृष्ण आपस में चचेरे भाई थे। जैन इतिहास के अनुसार समुद्र विजय और वसुदेव सहोदर थे। समुद्र विजय के पुत्र नेमि और वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। छादोग्योपनिषद् मे अगिरस ऋषि द्वारा श्रीकृष्ण को जिन शिक्षाओ को देना बतलाया गया है वे शिक्षाए नेमिनाथ के उपदेशो के निकट है। कई आधुनिक शोध विद्वानो के मत से तीर्थंकर नेमिनाथ और घोर अगिरस ऋषि अभिन्न पुरुष माने गये है। नेमिनाथ का काल महाभारत काल है। हरिवंशपुराण अथवा रिट्ठणेमिचरिउ मे दोनों ही महापुरुषो का जीवन चरित्र मिलता है। नेमिनाथ ने गिरनार से निर्वाण प्राप्त किया था।

भगवान पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ 23 वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म चैत्र बुदी 9 के शुभ दिन वाराणसी के राजा अश्वसेन के यहा हुआ। उनकी माता का नाम वामा देवी था। बचपन से ही वे उदासीन रहते, माता-पिता द्वारा रखे विवाह के प्रस्ताव को भी उन्होंने स्वीकार नही किया। एक दिन वे अपने साथियो के साथ वन क्रीडा को जा रहे थे। मार्ग मे उन्होंने पचाग्नि तप करते हुये एक तपस्वी को देखा। वे उसके पास जाकर बोले कि इन लकडो को जलाकर क्यो जीव हिंसा करते हो। तापसी को क्रोध आया। तब कुमार ने तापसी के पास से कुल्हाडी उठाकर ज्योंही लकडे को दो टुकडे किये उसमे नाग-नागिन का जलता हुआ जोडा निकला। कुमार ने उन्हे मरणोन्मुख जानकर उनके कान मे णमोकार मत्र सुनाया। उन्हे इस घटना से बड़ी वेदना हुई। कुछ समय पश्चात पार्श्व कुमार ने राज्यपाट को तिलाञ्जली देकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उस समय उनकी आयु 30 वर्ष की थी।

एक शिलापट्ट[1] के अनुसार उन्हें बिलोलिया (राजस्थान) मे तपस्या करते समय उनके पूर्व जन्म के शत्रु सवर देव ने शिलाखड, भयानक आंधी, वर्षा आदि से उनको ध्यान से डिगाना चाहा। ऐसे घोर उपसर्ग के समय जो नाग-नागिन मर कर पाताल लोक मे धरणेन्द्र पद्मावती हुये थे वे अपने उपकारो पर उपसर्ग हुआ जानकर वहाँ आये। धरणेन्द्र ने सहस्र फण वाले सर्प का रूप धारण करके भगवान

---

1. देखिये बिजोलिया का स. 1226 का विस्तृत शिलालेख।

के ऊपर अपना फरण फैला दिया और इस तरह उपद्रव से उनकी रक्षा की । उसी समय पार्श्वनाथ को कैवल्य हो गया । उन्होने राजस्थान के बिजोलिया चंवलेश्वर, भालरापाटरण, कोटा जिलो मे विहार किया और जन-जन को अहिंसा एवं शांति का उपदेश दिया । वे संघ सहित मथुरा भी गये और वहाँ अहिच्छत्र होते हुये सम्मेदाचल गये । उन्होने जहाँ-जहाँ भी विहार किया वही क्षेत्र अहिच्छेत्र के नाम से पुकारा जाने लगा । राजस्थान के कितने ही भाग अहिच्छेत्र के नाम से जाने जाते है । 100 वर्ष की आयु मे उन्होंने सम्मेदशिखिर से निर्वारण प्राप्त किया ।

भगवान महावीर

24वे तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म ईसा के 599 वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के कुण्ड ग्राम के महाराजा सिद्धार्थ के यहाँ हुआ । उनकी माता प्रियकारिणी त्रिशला थी। उनके वर्धमान, सन्मति, अतिवीर आदि भी नाम थे, लेकिन "महावीर" नाम सबसे अधिक लोकप्रिय है । अभी सन् 1975 में महावीर स्वामी का 2500वाँ परिनिर्वारण महोत्सव वर्ष सारे देश मे ही नही विदेशों में भी धूमधाम से मनाया गया था । महावीर भगवान भी आजन्म अविवाहित ही रहे और 30 वर्ष की आयु मे उन्होंने मुनि दीक्षा धारण कर ली । 12 वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् वे सर्वज्ञ बन गये । साधना की अवधि मे एक बार वे उज्जैन भी गये । जब वे वहाँ की श्मशान भूमि मे साधना मे रत थे तो वहाँ उन पर भीषरण उपसर्ग हुआ । उज्जैन जाते अथवा आते समय उन्होने राजस्थान की भूमि को भी अपने चरण रज से पावन किया होगा । उदयपुर के पास बडली का वीर निर्वारण सं० 84 का शिलालेख इसका एक प्रमारण है ।

सर्वज्ञ बनने के पश्चात् उन्होंने 30 वर्ष तक देश के विभिन्न भागो में विहार करके जन-जन को सर्वजीव सममाव, सर्वधर्म सममाव एवं सहअस्तित्व का संदेश दिया । लाखो-करोडो देशवासी उनके समवशरण मे जाकर उनके अनुयायी बन गये । उन्होने सबको अपनी धर्म सभा मे अभय प्रदान किया तथा वर्ग-भेद एवं नीच-ऊच की भावना को समाप्त कर विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढाया ।

भगवान के 11 गरणधर थे । गौतम गरणधर प्रमुख थे तथा शेष 10 गरणधर अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त, सुधर्म, पाण्डव्य, मौर्ययुग, अकम्पन, अचल, मेदार्य और प्रभास नाम वाले थे । ये सभी जन्मना ब्राह्मण थे तथा वेदों के विशेष ज्ञाता थे । इन सभी ने अपने पूरे शिष्य समुदाय के साथ भगवान महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया था । इन गरणधरों की शिष्य सख्या चौदह हजार थी । ऐसा हरिवंश पुराण में उल्लेख मिलता है ।[1]

1. हरिवंश पुराण—तृतीय सर्ग, पद्य सख्या 45–46.

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् निम्न प्रकार केवली एवं श्रुतकेवली अथवा 11 अंगधारी आचार्यों की परम्परा रही :—

			केवली काल
1.	3 केवली	गौतम स्वामी	12 वर्ष
		सुधर्मा स्वामी	12 वर्ष
		जम्बू स्वामी	38 वर्ष
			62 वर्ष
2.	5 श्रुतकेवली	विष्णु	14 वर्ष
		नन्दिमित्र	16 वर्ष
		अपराजित	22 वर्ष
		गोवर्धन	19 वर्ष
		भद्रबाहु स्वामी	29 वर्ष
			100 वर्ष
3.	दशपूर्वधारी आचार्य		आचार्य काल
		विशाखाचार्य	10 वर्ष
		प्रोष्ठिलाचार्य	19 वर्ष
		क्षत्रियाचार्य	17 वर्ष
		जयसेनाचार्य	21 वर्ष
		नागसेनाचार्य	18 वर्ष
		सिद्धार्थाचार्य	17 वर्ष
		धृतिसेनाचार्य	18 वर्ष
		विजयाचार्य	13 वर्ष
		बुद्धिलिंगाचार्य	20 वर्ष
		देवाचार्य	14 वर्ष
		धर्मसेनाचार्य	16 वर्ष
			183 वर्ष
4.	11 अंगधारी आचार्य	नक्षत्राचार्य	18 वर्ष
		जयपालाचार्य	20 वर्ष
		पाण्डवाचार्य	39 वर्ष

	ध्रुवसेनाचार्य	14 वर्ष
	कंसाचार्य	32 वर्ष
		123 वर्ष
5.	दशांग, नवांग, अष्टांगधारी आचार्य	
	सुभद्राचार्य	6 वर्ष
	यशोभद्राचार्य	18 वर्ष
	आचार्य भद्रबाहु	23 वर्ष
	लोहाचार्य	50 वर्ष
	वीर निवाण सवत् 565 तक	97 वर्ष
6	एकागधारी आचार्य	
	आचार्य अर्हद्बलि	28 वर्ष
	आचार्य माघनन्दि	21 वर्ष
	आचार्य धरसेन	19 वर्ष
	आचार्य पुष्पदन्त	30 वर्ष
	आचार्य भूतबलि	20 वर्ष
		118 वर्ष

उक्त आचार्यों में तीन केवली, पांच श्रुत केवली तथा शेष आचार्य दश पूर्वधारी, ग्यारह अंगधारी एवं एकांगधारी आचार्य हुए जिन्होंने चतुर्विध जैन संघ को अपने पारलौकिक ज्ञान से आप्लावित किया तथा भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित श्रुतज्ञान को नष्ट नही होने दिया। आचार्य धरसेन ने अवशिष्ट ज्ञान को पुष्पदन्त और बाहुबलि को दिया और उन्होंने उसे षट्खण्डागम के रूप में लिपिबद्ध किया। इन सब आचार्यों को हम श्रुतधराचार्य कह सकते हैं। इस प्रकार वीर निर्वाण संवत् 683 तक केवली, श्रुत केवली एवं आचार्यों के रूप में 30 आचार्य हुये। इसके पश्चात् विक्रम संवत् लिखने का प्रचलन प्रारम्भ होता है तथा तिथियां उसी संवत् के अनुसार आगे बढ़ती हैं। उक्त आगमवेत्ता आचार्यों के पश्चात् श्रुतधराचार्यों की परम्परा चलती है जो आगे 300–400 वर्षों तक बराबर चलती रहती है। इन आचार्यों ने कर्म सिद्धान्त, लोकानुयोग एवं अध्यात्म साहित्य की सरचना की।

पट्टावलियो के अनुसार आचार्य परम्परा और फिर भट्टारक परम्परा निम्न प्रकार मानी जाती है—

1. सर्वप्रथम विक्रम संवत् 4 में आचार्य भद्रबाहु पट्ट पर बैठे । भद्रबाहु के शिष्य गुप्तिगुप्त थे जिनके अर्हद्बलि, गुप्तिगुप्त व विशाखाचार्य ये तीन नाम थे । इनके भी चार शिष्य थे । जिसने नन्दिवृक्ष के नीचे वर्षायोग की स्थापना की उसने नन्दिसंघ की स्थापना की । जिसने जिनसेन नामक तृणतल के नीचे वर्षायोग स्थापित किया उसने वृषभसघ की स्थापना की । जिस शिष्य ने सिह की गुफा मे वर्षायोग स्थापित किया उसने सिह सघ की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त किया । जिसने देवदत्ता वेश्या के घर पर वर्षायोग की स्थापना की उसने देवसघ की स्थापना की ।

2. आचार्य भद्रबाहु सुभद्राचार्य के 24 वर्ष पश्चात् एव विक्रम सवत् 4 मे पट्ट पर बैठे तथा आचार्य पद पर 22 वर्ष 10 महिने 10 दिन एव 27 रिक्तता के इस प्रकार वे 76 वर्ष 11 महिने जीवित रहे ।

3 विक्रम सवत् 26 फागुण सुदि 14 को गुप्तगुप्ति जी आचार्य पद पर विराजमान हुये । ये जाति से पवार राजपूत थे । ये 22 वर्ष तक गृहस्थ, 34 वर्ष तक मुनि तथा आचार्य पद पर 9 वर्ष 6 महिने तथा 25 दिन रहे । इनकी पूरी आयु 65 वर्ष 7 महिने कं. रही ।

4. आचार्य गुप्तगुप्ति के पश्चात् विक्रम सवत् 36 आसोज सुदि 14 को जैसवाल जातीय आचार्य माघनन्दि पट्ट पर बैठे । ये 20 वर्ष तक गृहस्थ अवस्था में रहे । 44 वर्ष तक मुनि रहे तथा 4 वर्ष 4 महिने 26 दिन तक ही आचार्य पद पर रहे ।

5. इनके पश्चात् फागुण सुदि 14 विक्रम सवत् 40 मे जिनचन्द्र मुनि ने आचार्य पद को सुशोभित किया । ये जाति से चोसरवा पोरवाड (परवार) थे तथा 24 वर्ष 9 महिने तक गृहस्थ रहने तथा 32 वर्ष 3 माह तक साधु अवस्था मे रहने के पश्चात् आचार्य बने । ये 8 वर्ष 9 महिने 6 दिन तक आचार्य पद पर रहे ।

6 आचार्य जिनचन्द्र के पश्चात् वर्तमान युग के सर्वाधिक सम्मानित मुनि श्री कुन्दकुन्द विक्रम संवत् 49 पोष बुदि अष्टमी को आचार्य पद को अलकृत किया । ये जाति से पल्लीवाल थे तथा 8 वर्ष तक गृहस्थावस्था मे रहने के पश्चात् 33 वर्ष तक मुनि अवस्था मे रहे और फिर 51 वर्ष 10 महिने एव 10 दिन तक आचार्य पद को सुशोभित करते रहे । इनके 4 नाम प्रसिद्ध थे जो पद्मनन्दि वक्रग्रीव गृधपिच्छि एव एलाचार्य थे ।

7 आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् सवत् 101 कार्तिक सुदी 8 को उमास्वामी आचार्य गादी पर विराजमान हुये । ये अयोध्यापुरी श्रावक थे । ये 19 वर्ष तक गृहस्थ अवस्था में रहने के पश्चात् 25 वर्ष मुनि अवस्था मे रहे तथा 40 वर्ष 8 मास 1 दिन आचार्य पट्ट पर रहे ।

8 सवत् 142 आसाढ सुदि 14 को लोहाचार्य अपर नाम समन्तभद्राचार्य

आचार्य पट्ट पर विराजमान हुगे। लोहाचार्य ही आचार्य समन्तभद्र थे, प्रस्तुत पट्टावली में इसी मत की पुष्टि की गई है। इनकी लंबेचू जाति थी। ये 21 वर्ष तक गृहस्थ, 38 वर्ष तक मुनि एवं आचार्य पद पर 10 वर्ष 10 महिने 10 दिन बैठे। इस प्रकार 69 वर्ष 10 महिने 26 दिन की आयु में समाधि मरण किया।

9. इनके पश्चात् मुनि यशकीर्ति ने संवत् 153 जेष्ठ सुदि 10 के दिन आचार्य पद को अलकृत किया। ये जन्म से जायलवाल श्रावक थे। केवल 12 वर्ष की बाल अवस्था में इन्होने वैराग्य धारण कर लिया और 21 वर्ष तक मुनि अवस्था में रहे फिर 58 वर्ष 8 महिने 10 दिन तक आचार्य पद को सुशोभित करते रहे और 91 वर्ष 8 महिने 26 दिन की आयु प्राप्त कर स्वर्गवासी बने।

10. इनके स्वर्गवास के पश्चात् 4 दिन तक आचार्य पद खाली रहा और सवत् 211 फागुण सुदि 10 को आचार्य यशोनन्दि ने सघ का उत्तरदायित्व सभाला। ये जाति से जैसवाल थे। ये 49 वर्ष 4 महिने 9 दिन तक आचार्य पर रहे तथा 79 वर्ष 4 महिने 13 दिन की आयु में समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवासी बने।

उक्त आचार्यों के पश्चात् निम्न प्रकार एक के पश्चात् दूसरे आचार्य होते रहे :—

11 सवत् 258 असाढ सुदि 8 आचार्य देवनंदि जी गृहस्थ वर्ष 11 मास 5, दीक्षा वर्ष 15 मा० 7 पट्टस्थ वर्ष 49 मास 10 दिन 28 विरह दिन 4 सर्व वर्ष 75 मास 11 दिन 21, ये जाति से पोरवाल थे।

12. सवत् 308 जेष्ठ सुदि 10 आचार्य पूज्यपाद आचार्य पट्ट पर बैठे। ये गृहस्थ वर्ष 15 दीक्षा वर्ष 11 मास 7 आचार्य पट्ट पर वर्ष 4 मास 1 दिन 22 विरह दिन 9 वर्ष 71 मास 6 दिन 29, जाति पद्मावती पोरवाल।

13. संवत् 353 जेष्ठ सुदि 9 गुणनंदि जी आचार्य पट्ट पर विराजमान हुये। ये गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 13 मास 5 पट्टस्थ वर्ष 11 मास 3 दिन 1 विरह दिन 1 सर्व वर्ष 38 मास 8 दिन 5, जाति गोलापूर्व।

14. संवत् 364 भादवा सुदि 14 आचार्य वज्रनंदि जी। गृहस्थ वर्ष 19 दीक्षा वर्ष 16 मास 3 पट्टस्थ वर्ष 22 मास 2 दिन 20 अन्तर दिन 9 सर्व वर्ष 57 मास 8 दिन 5।

15. संवत् 386 फागुण बुदि 4 आचार्य कुमारनंदि जी। गृहस्थ वर्ष 16 दीक्षा वर्ष 10 मास 2 पट्टस्थ वर्ष 40 मास 2 दिन 20 अन्तर दिन 9 सर्व वर्ष 66 मास 4 दिन 29, जाति-सहजवाल।

16. संवत् 427 जेष्ठ बदि 3 आचार्य लोकचन्द्र जी। गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा

वर्ष 16 पट्टस्थ वर्ष 26 मास 3 दिन 26 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 60 मास 3 दिन 26, जाति लम्बेचू ।

17. संवत् 453 भादवा सुदि 14 आचार्य प्रभाचन्द्र जी पट्ट पर बैठे । ये गृहस्थ वर्ष 9 दीक्षा वर्ष 24 पट्टस्थ वर्ष 25 मास 5 दिन 15 अन्तर दिन 21 सर्व वर्ष 58 मास 5 दिन 26 ये जाति से पंचम थे ।

18 सवत् 478 फागुण सुदि 10 आचार्य नेमिचन्द्र जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 22 पट्टस्थ वर्ष 8 मास 9 दिन 1 अन्तर दिन 9 सर्व वर्ष 40 मास 9 दिन 10, जाति नैगम श्रावक ।

19 संवत् 487 पोस बुदि 5 भानचद्र जी आचार्य पट्ट पर अभिषिक्त हुये । ये गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 15 पट्टस्थ वर्ष 21 मास दिन 24 अन्तर दिन 12 सर्व वर्ष 46 मास 1 दिन 6, जाति ढूसर ।

20. सवत् 508 माघ सुदि 11 आचार्य हरिनदि जी । गृहस्थ वर्ष 9 दीक्षा वर्ष 15 पट्टस्थ वर्ष 16 मास 7 दिन 15 अन्तर दिन 14 सर्व वर्ष 40 मास 7 दिन 29 । जाति श्रीमाल सीकरया ।

21. संवत् 525 आसोज सुदि 10 आचार्य वसुनंदि जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 30 पट्टस्थ वर्ष 6 मास 2 दिन 22 अन्तर दिन 9 सर्व वर्ष 46 मास 3 दिन । जाति बघनोरा ।

22. सवत् 531 पोस बुदि 11 आचार्य वीरनदि जी । गृहस्थ वर्ष 9 दीक्षा वर्ष 13 पट्टस्थ वर्ष 30 मास दिन 14 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 52 मास दिन 24, जाति लबेचू ।

23. संवत् 561 माह सुदि 5 आचार्य रत्नकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 8 दीक्षा वर्ष 12 पट्टस्थ वर्ष 23 माम 4 दिन 7 अन्तर दिन 11 । सर्व वर्ष 43 मास 4 दिन 18, जाति का उल्लेख नही मिलता ।

24. मवत् 585 आषाढ बुदि 8 आचार्य माणिक्यनद जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 19 पट्टस्थ वर्ष 16 मास 5, दिन 10 अन्तर दिन 15 सर्व वर्ष 45 मास 5 दिन 25, जाति अग्रवाल ।

25. संवत् 601 पोस बदि 3 आचार्य मेघचन्द्र । गृहस्थ वर्ष 24 मास 3 दिन 17 दीक्षा वर्ष 7 मास 6 दिन 13, पट्टस्थ वर्ष 25 मास 5 दिन 2 अन्तर दिन 12 सर्व वर्ष 56 मास 6 दिन 2, जाति खण्डेलवाल ।

26. सवत् 627 आषाढ बुदि 5 आचार्य शांतिकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 10 पट्टस्थ वर्ष 15 मास दिन 25 अन्तर दिन 20 सर्व वर्ष 32 मास 1 दिन 15, जाति सहजवाल ।

27. संवत् 642 सावरण सुदि 5 के दिन आचार्य मेरुकीर्ति जी आचार्य पट्ट पर बैठे । वे गृहस्थ वर्ष 8 दीक्षा वर्ष 11 पट्टस्थ वर्ष 4 मास 3 दिन 16 अन्तर दिन 13 सर्व वर्ष 63 मास 3 दिन 29 रहे । ए पट्ट 26 मदलापुर हुआ । मालवा देश, जाति-सहजवाल ।

नोट :—उक्त सभी आचार्य मद्दलापुर मे हुये थे ।

28. संवत् 686 मंगसिर सुदि 4 आचार्य महाकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 6 दीक्षा वर्ष 21 पट्टस्थ वर्ष 17 मास 11 दिन 5 अन्तर दिन 15 सर्व वर्ष 35 मास 11 दिन 20 ये उज्जैन गादी के प्रथम भट्टारक थे । जाति सहजवाल ।

29. संवत् 704 मंगसिर बुदी 9 आचार्य विष्णुनंदि जी । गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 14 पट्टस्थ वर्ष 21 मास 4 दिन 1 अन्तर दिन 15 सर्व वर्ष 42 मास 4 दिन 15, विष्णुनन्दि जी अपरनाथ विश्वकीर्ति जी । जाति बागडया ।

30. सवत् 726 चैत्र सुदि 9 आचार्य श्री भूषरण । गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 8 पट्टस्थ वर्ष 9 मास । अन्तर दिन 26 सर्व वर्ष 31 मास 1 दिन 26 जाति सहजवाल ।

31. सवत् 735 वैशाख सुदि 5 आचार्य श्रीचन्द्र । गृहस्थ वर्ष 6 दीक्षा वर्ष 12 पट्टस्थ वर्ष 14 मास 3 दिन 4 अन्तर मास 1 सर्व वर्ष 32 मास 4 दिन 5, जाति श्रीमाल ।

32. सवत् 749 भादवा सुदि 10 आचार्य नंदिकीर्ति । गृहस्थ वर्ष 15 दीक्षा वर्ष 20 पट्टस्थ वर्ष 15 मास 6 दिन 4 अन्तर दिन 13 सर्व वर्ष 50 मास 6 दिन 17, जाति नागद्रहा (नागदा)

33. सवत् 765 चैत्र बुदि 12 आचार्य देशभूषरण । गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा वर्ष 24 पट्टस्थ वर्ष मास 6 दिन 6 अन्तर दिन 7 सर्व वर्ष 42 मास 6 दिन 14, जाति श्रीमाल ।

34. सवत् 765 आसोज सुदि 10 अनन्तकीर्ति । गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 13 पट्टस्थ वर्ष 19 मास 9 दिन 25 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 43 मास 10 दिन 5, जाति पोरवाल द्विसखा ।

नोट :—एक ही वर्ष में उक्त दो आचार्य पट्ट पर बैठे ।

35. संवत् 785 श्रावरण सुदि 15 आचार्य धर्मनन्दि । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 18 पट्टस्थ वर्ष 22 मास 9 दिन 25 अन्तर दिन 5 सर्व वर्ष 53 मास 10 जाति नागद्रहा (नागदा) ।

36. संवत् 808 जेष्ठ सुदि 15 आचार्य वीरचन्द । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 25 पट्टस्थ वर्ष 32 मास दिन 4 अंतर दिन 8 सर्व वर्ष 70 मास दिन 12, जाति बघेरवाल गोत्र हरसोरा ।

37. सवत् 840 आषाढ बुदि 12 आचार्य रामचंद्र। गृहस्थ वर्ष 8 दीक्षा वर्ष 11 पट्टस्थ वर्ष 16 मास 10 अंतर दिन 6 सर्व वर्ष 35 मास 10 दिन 6 जाति पंचम।

38. संवत् 857 वैशाख सुदि 3 आचार्य रामकीर्ति। गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 16 पट्टस्थ वर्ष 22 मास 4 दिन 26 अंतर दिन 11 सर्व वर्ष 51 मास 5 दिन 7, जाति लंबेचू।

39. सवत् 878 आसोज सुदि 10 आचार्य अभैचंद्र। गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा वर्ष 10 पट्टस्थ वर्ष 17 मास दिन 27 अंतर दिन 4 सर्व वर्ष 45 मास 1 दिन जाति अयोध्यापुरी।

40. सवत् 897 कार्तिक सुदि 11 आचार्य नरचद। गृहस्थ वर्ष 15 दीक्षा वर्ष 21 पट्टस्थ वर्ष 18 मास 9 अंतर दिन 9 सर्व वर्ष 54 मास 9 दिन 9 जाति नैगमा।

41. सवत् 916 भादवा बुदि 5 आचार्य नागचद्रजी। गृहस्थ वर्ष 21 दीक्षा वर्ष 13 पट्टस्थ वर्ष 23 मास दिन 3 अंतर दिन 10 सर्व वर्ष 67 मास दिन 13, जाति बागडी।

42 संवत् 939 भादवा सुदि 3 आचार्य नैणचद। गृहस्थ वर्ष 8 दीक्षा वर्ष 10 पट्टस्थ वर्ष 8 मास 9 दिन 11 अंतर दिन 9। सर्व वर्ष 26 मास 9 दिन। जाति ढूसर।

43 सवत् 948 आषाढ बुदि 8 आचार्य हरिचन्द्र। गृहस्थ वर्ष 8 मास 4 दीक्षा वर्ष 14 मास 8 पट्टस्थ वर्ष 26 मास 1 दिन 8 अंतर दिन 9 सर्व वर्ष 49 मास 1 दिन 16, जाति बघेरवाल हरसोरा।

44. सवत् 974 सावण सुदि 9। आचार्य महीचन्द गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 10 मास 11 पट्टस्थ वर्ष 16 मास 6 दिन, अंतर दिन 5 सर्व वर्ष 41 मास 5 दिन 5, जाति-धाकडा।

45. सवत् 990 माह सुदि 14 आचार्य माघचन्द्र। गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 20 पट्टस्थ वर्ष 32 मास 2 दिन 24 अंतर दिन 9 सर्व वर्ष 65 मास 3 दिन 3 जाति पद्मावती पोरवाल।

46. सवत् 1023 जेष्ठ बुदि 2 आचार्य लक्ष्मीचन्द्रजी। गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 25 पट्टस्थ वर्ष 14 मास 4 दिन 3 अंतर दिन 11 सर्व वर्ष 50 मास 4 दिन 14, जाति का उल्लेख नही मिलता।

47. सवत् 1037 आसोज सुदि 1 आचार्य गुणनन्दि। गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा वर्ष 20 पट्टस्थ वर्ष 10 मास 10 दिन 29 अंतर दिन 14 सर्व वर्ष 48 मास 11 दिन 13, जाति नगौलदाल।

48. संवत् 1048 भादवा सुदि 14 आचार्य गुणचन्द्र। गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 22 पट्टस्थ वर्ष 17 मास 8 दिन 7 अंतर दिन 10 सर्व वर्ष 49 मास 8 दिन 17, जाति गोलापूर्व।

49. सवत् 1066 जेष्ठ सुदि 1 आचार्य लोकचन्द्रजी। गृहस्थ वर्ष 15 दीक्षा वर्ष 30 पट्टस्थ वर्ष 13 मास 3 दिन 3 अंतर दिन 4 सर्व वर्ष 58 मास 3 दिन 1, जाति सहजवाल।

50. सवत् 1079 भादवा सुदि 8 आचार्य श्रुतकीर्तिजी । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 32 पट्टस्थ वर्ष 15 मास दिन 6 अंतर दिन 6 सर्व वर्ष 60 मास 6 दिन 12, जाति सचानू।

51. सवत् 1094 चैत्र बदि 5 भावचन्द्रजी। गृहस्थ वर्ष 12 दीक्षा वर्ष 25 पट्टस्थ वर्ष 20 मास 11 दिन 25 अतर दिन 5 सर्व वर्ष 58 मास दिन जाति का उल्लेख नही मिलता है।

52. सवत् 1115 चैत्र बदि 5 आचार्य महीचन्द्र। गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 26 पट्टस्थ वर्ष 25 मास 5 दिन 10 अतर दिन 5 सर्व वर्ष 62 मास 5 दिन 15, जाति-श्रीमाली।

53 सवत् 1140 भादवा सुदि 5 आचार्य माघचन्द्रजी। गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 13 पट्टस्थ वर्ष 4 मास 3 दिन 17 अतर दिन 7 सर्व वर्ष 31 मास 3 दिन 24, जाति पचम श्रावक।

54 सवत् 1144 पौष बदि 14 आचार्य वृषभनन्दि। गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 37 पट्टस्थ वर्ष 3 मास 4 दिन 1 अतर दिन 4 सर्व वर्ष 47 मास 4 दिन 5, जाति वघनोरा।

55. संवत् 1148, वैशाख सुदि 4 आचार्य शिवनन्दिजी । गृहस्थ वर्ष 9 दीक्षा वर्ष 39 पट्टस्थ वर्ष 7 मास 6 दिन 10 अंतर दिन 14 सर्व 55 मास 7 दिन 1, जाति सहजवाल।

56 संवत् 1155 मंगसिर सुदि 5 आचार्य वसुचंद्र। गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 40 पट्टस्थ वर्ष 0 मास 7 दिन 28 अन्तर दिन 3 सर्व वर्ष 51 मास 8 दिन 1, जाति-वघनोरा।

57. संवत् 1156 श्रावण सुदि 6 आचार्य सिंहनंदि । गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 32 पट्टस्थ वर्ष 40 मास दिन 24 अन्तर दिन 5 सर्व वर्ष 3 मास दिन 29, जाति का उल्लेख नही मिलता है।

58. संवत् 1160 भादवा सुदि 5 आचार्य भावनंदि। गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 3 पट्टस्थ वर्ष 7 मास 2 दिन अन्तर दिन 3 सर्व वर्ष 48 मास 2 दिन 3, जाति सचाणू।

59. संवत् 1167 कार्तिक सुदि 8 आचार्य देवनंदि । गृहस्थ वर्ष 61 दीक्षा वर्ष 30 पट्टस्थ वर्ष 3 मास 3 दिन 2 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 44 मास 3 दिन 12, जाति धाकड़ा ।

60. संवत् 1170 फाल्गुण बदि 5 विधाचन्द्र जी । गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 38 पट्टस्थ वर्ष 5 मास 5 दिन 5 अन्तर दिन 14 सर्व वर्ष 57 मास 5 दिन 19, जाति बागड़ा ।

61. संवत् 1176 श्रावण सुदि 9 सुरचंद्र जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 35 पट्टस्थ वर्ष 8 मास 1 दिन 29 अन्तर दिन 2 सर्व वर्ष 53 मास 2 दिन 1, जाति नरसिंहपुरा ।

62. संवत् 1184 आसोज सुदि 10 आचार्य माघनंदि जी । गृहस्थ वर्ष 14 मास 3 दीक्षा वर्ष 32 मास 2 पट्टस्थ वर्ष 4 मास 1 दिन अन्तर दिन 5 सर्व वर्ष 50 मास 6 दिन 21, जाति चतुर्थ ।

63. संवत् 1188 मगसिर सुदि 1 आचार्य ज्ञानकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 34 पट्टस्थ वर्ष 11 मास दिन 3, अन्तर दिन 7 सर्व वर्ष 55 मास दिन 10 ।

64. संवत् 1199 मगसिर सुदि 11 आचार्य गगकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 3 पट्टस्थ वर्ष 11 मास 2 दिन 8 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 53 मास 2 दिन 18 ।

ये सभी आचार्य बारां मे पट्टस्थ हुए ।

65. संवत् 1206 फाल्गुण बदि 14 सिहकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 8 दीक्षा वर्ष 37 पट्टस्थ वर्ष 2 मास 2 दिन 15 अन्तर दिन 16 सर्व वर्ष 47 मास 3 दिन 1, जाति नरसिहपुरा ।

66. सवत् 1209 ज्येष्ठ बदि 8 हेमकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 24 पट्टस्थ वर्ष 7 मास 3 दिन 27 अन्तर दिन 6 सर्व वर्ष 44 मास 4 दिन 3, जाति हूबड ।

67. संवत् 1216 आसोज सुदि 3 सुन्दरकीर्ति जी । वर्ष 6 मास 9 दीक्षा वर्ष 19 मास 3 पट्टस्थ वर्ष 6 मास दिन 20 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 32 मास 7, जाति सहजवाल ।

68. सवत् 1223 वैशाख सुदि 3 नेमिचद जी । गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 21 पट्टस्थ वर्ष 7 मास 8 दिन 29 अन्तर दिन 9 सर्व वर्ष 35 मास 9 दिन 8, जाति नागद्रहा ।

69. संवत् 1230 माह सुदि 11 नामिकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 5 दीक्षा वर्ष 35 पट्टस्थ वर्ष 1 मास 11 दिन 26 अन्तर दिन 4 सर्व वर्ष 42, नैगम श्रावक ।

70. संवत् 1232 माह सुदि 11 नरेन्द्रकीर्तिजी । गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 13, पट्टस्थ वर्ष 9 दिन 28 अन्तर दिन 12, सर्व वर्ष 36 मास 1, जाति नागद्रहा ।

71. संवत् 1241 फाल्गुण सुदि 11 श्रीचंद जी । गृहस्थ वर्ष 7 दीक्षा वर्ष 25 पट्टस्थ वर्ष 6 मास 3 दिन 24 अन्तर दिन 7, सर्व वर्ष 38 मास 4 दिन 1, जाति बघेरवाल ।

72. संवत् 1248 असाढ सुदि 12 आचार्य पद्मकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 10 दीक्षा वर्ष 22 पट्टस्थ वर्ष 4 मास 11 दिन 25 अन्तर दिन 6, सर्व वर्ष 37 मास दिन 1, जाति-पोरवाल ।

73. संवत् 1253 आषाढ सुदि 13 वर्द्धमान जी । गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा वर्ष 5 पट्टस्थ वर्ष 2 मास 11 दिन 28 अन्तर दिन 3 सर्व वर्ष 26 मास दिन 1, जाति बघनोरा ।

74. संवत् 1256 आषाढ सुदि 14 अकलंकचद्र । गृहस्थ वर्ष 14 दीक्षा वर्ष 33 पट्टस्थ वर्ष 1 मास 3 दिन 24 अन्तर दिन 7 सर्व वर्ष 48 मास 4 दिन 1, जाति अठसखा पोरवाल ।

75. संवत् 1257 कार्तिक सुदि 15 ललितकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 24 पट्टस्थ वर्ष 4 मास अन्तर दिन 5 सर्व वर्ष 41 मास दिन 5, जाति-लंबेचू ।

76. संवत् 1261 मंगसिर बदि 5 केशवचद जी । गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 34 पट्टस्थ वर्ष 1 मास 6 दिन 15 अन्तर दिन 6 सर्व वर्ष 46 मास 6 दिन 21.

77. संवत् 1262 जेष्ठ सुदि 11 चारूकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 13 दीक्षा वर्ष 32 पट्टस्थ वर्ष 2 मास 3 दिन 2 अन्तर दिन 7 सर्व वर्ष 47 मास 3 दिन 8, जाति पंचम श्रावक ।

78. संवत् 1264 आसोज बुदि 3 आचार्य अभयकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 11 मास 21 दीक्षा वर्ष 30 मास 5 पट्टस्थ वर्ष मास 4 दिन 11 अन्तर दिन 7 सर्व वर्ष 41 मास 11 दिन 17, जाति अठसखा पोरवार ।

79. संवत् 1264 माह सुदि 5 आचार्य बसन्तकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 12 दीक्षा वर्ष 20 पट्टस्थ वर्ष 1 मास 4 दिन 22 अन्तर दिन 8 सर्व वर्ष 33 मास 5, जाति-खण्डेलवाल-साह गोत्रीय ।

80. संवत् 1266 असाढ सुदि 5 प्रक्षातकीर्ति जी । गृहस्थ वर्ष 11 दीक्षा वर्ष 15 पट्टस्थ वर्ष 2 मास 3 दिन 16 अन्तर दिन 4 सर्व वर्ष 28 मास 3 दिन 23 ।

नोट :—ये सभी आचार्य ग्वालियर पट्ट हुये थे ।

81. सवत् 1268 कार्तिक बुदि आचार्य शांतिकीर्ति । गृहस्थ वर्ष 18 दीक्षा

वर्ष 23 पट्टस्थ वर्ष 2 मास 9 दिन 7 अन्तर दिन 8 सर्व वर्ष 43 मास 9 दिन 15, जाति खण्डेलवाल (छाबड़ा)

82. संवत् 1271 श्रावण सुदि 15 आचार्य धर्मचद्र जी। गृहस्थ वर्ष 16 दीक्षा वर्ष 24 पट्टस्थ वर्ष 25 मास दिन अन्तर दिन सर्व वर्ष 65 मास दिन 13, जाति खण्डेलवाल सेठी गोत्र।

उक्त आचार्य पट्टावली मूलसघ के आचार्यों की पट्टावली है जो विक्रम सवत् 4 से प्रारम्भ होती है। आचार्यों की इस परम्परा मे सवत् 49 मे आचार्य कुन्दकुन्द का नाम आता है। यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्द पूर्वधारी, अगधारी आचार्यों मे बहुत बाद मे हुए लेकिन मगल पाठ मे मगल कुन्दकुन्दाद्यो का स्मरण आचार्य शिरोमणि के रूप मे किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म दक्षिण भारत मे कोन्डकुन्दपुर नगर मे हुआ था। वे जाति से वैश्य थे। आचार्य कुन्दकुन्द के वक्रग्रीव, एलाचार्य, गृद्धपिच्छ और पद्मनन्दि ये नाम और थे। दक्षिण भारत के होने पर भी इन्होने उत्तर भारत मे खूब विहार किया था। इनके समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड, जैसे ग्रन्थ उत्तर भारत मे ही सबसे अधिक लोकप्रिय रहे। जनश्रुति के अनुसार ये विदेह क्षेत्र मे गये और वहा उनको केवली भगवान की साक्षात्वाणी सुनने का अवसर मिला था। यही कारण है इनके ग्रन्थो को जैन समाज मे सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् इसी आचार्य परम्परा में आचार्य उमास्वाति हुए। इनके द्वारा रचित तत्वार्थसूत्र जैन समाज मे गीता के समान पूज्य है और जिसका एक बार मनोयोग से पाठ करने से एक उपवास का फल मिलना माना गया है। वास्तव मे आचार्य उमास्वामी ने जैन दर्शन का सारतत्व अपनेग्रन्थ तत्वार्थ सूत्र मे भर दिया।

लोहाचार्य अपर नाम समन्तभद्राचार्य संवत् 142 मे आचार्य पट्ट पर अभिषिक्त हुए। समन्तभद्र दि. जैनाचार्यों मे लोहपुरुष थे इसलिये इनको लोहाचार्य भी कहते थे। उनकी "वादार्थ विचराम्यह नरपते शार्दूल विक्रीडितम्" सिह गर्जना उनकी विलक्षण तार्किक शक्ति का उद्घोष करती है। समन्तभद्र के बाद होने वाले सभी आचार्यों ने समन्तभद्र की तार्किक शक्ति, अगाध ज्ञान एव तपस्वी जीवन का लोहा माना है और विभिन्न प्रकार से उनका स्तवन किया है। देवागम स्तोत्र, (आप्त मीमासा) स्वयभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्ड श्रावकाचार जैसे ग्रन्थ उनकी कृतिया है। जैन दर्शन को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय समन्तभद्र को जाता है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार उनका श्रावक धर्म को प्रतिपादित करने वाला निसन्देह अपूर्व ग्रन्थ है जिसको असीमित लोकप्रियता प्राप्त है। पट्टावली के अनुसार ये लबेचू जाति के श्रावक थे।

आचार्य पूज्यपाद की भी पट्टावली परम्परा के आचार्यों मे गणना की गयी है। पूज्यपाद जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनकी तत्वार्थसूत्र पर सर्वार्थसिद्धि

टीका, समाधि तन्त्र, इष्टोपदेश, जैनेन्द्र व्याकरण, सिद्धिप्रिय स्तोत्र, एवं दश भक्ति जैसे ग्रन्थों की रचना का गौरव प्राप्त है। उनका दूसरा नाम देवनन्दि भी था। ये जाति से पद्मावती पोरवाल थे।

इसके पश्चात् आचार्य पट्टावली में आचार्य नेमिचन्द्र, आचार्य माणिक्यनन्दि, आचार्य अनन्तकीर्ति जैसे कुछ आचार्यों के नाम आते है लेकिन पट्टावली में वर्णित समय एवं इतिहास मे वर्णित समय में पर्याप्त अन्तर होने से हम यह नही कह सकते किये वे ही आचार्य है जिनके बारे में उनकी लोकप्रियता है।

लेकिन पट्टावली में वर्णित आचार्यों के अतिरिक्त बीसों आचार्य ऐसे है जिनके नाम इस पट्टावली में नहीं आ सके है लेकिन उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व इतना विख्यात एव लोकप्रिय है कि उन आचार्यों को उपेक्षित करने का अर्थ उनके कार्यों को अनदेखा करना है। ऐसे आचार्यों में दो अथवा दस पांच नही है किन्तु पचासों नाम लिये जा सकते है। ऐसे लोकप्रिय आचार्यो मे आचार्य यतिवृषभ, आचार्य वट्टकेर, शिवार्य, स्वामिकुमार (कार्तिकेय), आचार्य पात्र केसरी, आचार्य जोइंदु, आचार्य मानतुंग, आचार्य रविषेण, आचार्य अकलंकदेव, वीरसेनाचार्य, आचार्य जिनसेन, आचार्य विद्यानन्द, आचार्य देवसेन, आचार्य अमितिगति, आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन, आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ति, जैसे पचासो आचार्यों के नाम है जो जैनदर्शन की रीढ है और समाज को जिनकी भारी देन है। इन सभी आचार्यों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करना सहज कार्य नहीं है। इन आचार्यों ने देश एव समाज की सस्कृति को पल्लवित किया और उसे अपने योगदान से सदैव विकसित रखा। वास्तव में जैनदर्शन तो इन आचार्यों पर गर्व करता है और भविष्य में भी करता रहेगा।

अब रहा इन आचार्यों की जाति के सम्बन्ध में उल्लेख। इस सम्बन्ध में मेरा तो यही मत है कि जो आचार्य वैश्य कुल से सम्बन्धित है वे खण्डेलवाल जाति के भी हो सकते हैं और नही भी हो सकते है लेकिन इतना तो अवश्य है कि उनका खण्डेलवाल जाति से भी घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा और वे उसके प्रशंसक भी रहे होगे।

उक्त आचार्य परम्परा के अतिरिक्त देश में और भी अनेक आचार्य एवं पंडित हुए जिन्होंने जैनदर्शन, साहित्य एवं इतिहास की अपूर्व सेवा की थी। जिनका नामोल्लेख किये बिना आचार्यों के इतिहास का कार्य अधूरा ही रहेगा। प्रथम शताब्दी से लेकर 20वी शताब्दी तक होने वाले सभी महान् आचार्यों की नामावली निम्न प्रकार है—

प्रमुख आचार्य अनुक्रमणिका

ईसवी शताब्दी 1

क्रम सं.	आचार्य का नाम		प्रमुख ग्रंथ का नाम
1.	गुणधर प्रारम्भ में कषायपाहुड़		
2.	चन्द्रनंदि 1		
3.	बलदेव 1		
4.	जिननंदि		
5.	सर्वगुप्त		
6.	मित्रनंदि		
7.	शिवकोटि		भगवती आराधना
8	विनयधर	3-30	
9.	गुप्तिश्रुति	15-45	
10.	गुप्ति	20-50	
11.	शिवगुप्त	35-60	
12.	बप्पदेव		व्याख्याप्रज्ञप्ति
13.	गुप्तिगुप्ति	38-48	
14.	अर्हद्बलि	38-66	अंगांशधारी
15.	अर्हदत्त		,,
16.	शिवदत्त		,,
17.	विनयदत्त		,,
18.	श्रीदत्त		,,
19.	माघनन्दि	48-87	,,
20.	धरसेन 1	38-106	षट्खंडागम
21	पुष्पदन्त	66-106	,,
22.	भूतबली[1]	66-156	,,

1. नन्दि पर्वत की गुफाओं में इन आचार्य का निवास रहा प्रतीत होता है।

राज नहपान उज्जैन एवं सुराष्ट्र का अधिपति था। सातकर्णी से पराजित होकर नहपान मुनि हो गये और भूतबली नाम से प्रसिद्ध हुए। सन् 66 ई. के लगभग संघ नायक अर्हद्बलि ने वेण्या नदी के तट पर स्थित महिमा नगरी (वर्तमान कोल्हापुर राज्य का महिमानगढ़) में एक विशाल मुनि सम्मेलन किया और सुविधा

23. दिवाकरसेन	80-150	
24. यशोबाहू (भद्रबाहू 2)		
25. आर्य मंक्षु	73-123	कषायपाहुड़
26. नागहस्ति	93-162	,,
27. यतिवृषभ	143-173	,,

ईसवी शताब्दी 2

28. जिनचन्द्र	87-127	कुन्दकुन्द के गुरु
29. कुन्दकुन्द ⟶	127-179	समयसार, प्रवचनसार आदि
30. वट्टेकर	127-179	
31. उमास्वामी	179-243	तत्त्वार्थसूत्र
32. समन्तभद्र	120-185	आ० मीमांसा र० श्रावकाचार

ईसवी शताब्दी 3

33. बलाक पिच्छ	220-231
34. लोहाचार्य 3	,,
35. यशःकीर्ति	231-289
36. यशोनन्दि	289-336

ईसवी शताब्दी 4

37. देवनन्दि	336-386	
38. मल्लवादी	—	द्वादशारनयचक्र
39. जयनन्दि	386-436	
40. धरसेन	—	
41. पूज्यपाद		सर्वार्थसिद्धि
42. गुणनन्दि	436-442	
43. वज्रनन्दि	442-464	
44. कुमारनन्दि	464-515	

के लिए मूलसंघ को नन्दि, देव, सेन, सिंह, भद्र आदि उपसंघों में विभाजित कर दिया। इस सम्मेलन से आचार्य धरसेन की प्रार्थना पर आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को उनके पास गिरिनगर भेजा गया और उन्होंने इन शिष्य द्वय को जो आगम ज्ञान उन्हें साक्षात् था प्रदान किया और उसे लिपिबद्ध करने का आदेश दिया। — जैन सन्देश शोधांक 19

ईसवी शताब्दी 6

45.	लोकचन्द्र	505-531	
46.	प्रभाचन्द्र 1	531-556	
47.	योगीन्द्र	—	परमात्मप्रकाश
48.	नेमिचन्द्र 1	556-565	
49.	भानुनन्दि	565-586	
50	दिवाकर सेन	583-623	
51	शातिषेण	—	
52.	पात्रकेशरी	—	पात्रकेसरी स्तोत्र

ईसवी शताब्दी 7

53.	अर्हत्सेन	603-643	
54.	वीरनन्दि-1	609-639	
55	मानतु ग	618	भक्तामरस्तोत्र
56.	अकलंक	620-680	राजवार्तिक
57	रत्नन्दि	639-663	—
58.	रविषेण	677	पद्मपुराण
59	कुमारसेन	696	आत्ममीमासा
60.	जटासिहनन्दि	अन्तिम वर्षों मे	वरागचरित

ईसवी शताब्दी 8

61.	शान्तिकीर्ति	705-721	
62	मेरुकीर्ति	720-758	
63	पुष्पसेन	720-780	
64.	अपराजित	736	विजयोदया
65.	स्वयम्भू	738-840	पउमचरिउ
66.	जिनसेन 1	748-818	हरिवशपुराण
67	वादीभसिह	770-860	क्षत्रचूडामणि
68.	विद्यानन्दि-1	775-840	आप्तपरीक्षा
69.	वीरसेनस्वामी	770-827	धवला
70	धनंजय		विषापहार
71.	श्रीधर-1		

ईसवी शताब्दी 9

72	महावीराचार्य	800-830	गणितसारसंग्रह
73.	जिनसेन-2	818-878	आदिपुराण आदि

74.	उग्रादित्याचार्य	828	कल्याणकारक
75.	वीरसेन–2	883-923	
76.	कुमारसेन	898	
77.	गुणभद्र	898	उत्तर पुराण

ईसवी शताब्दी 10

78.	गोलाचार्य	900-920	उत्तरपुराण का शेष
79.	अमृतचन्द	905-955	आत्मख्याति
80.	हेमचन्द्र	923	
81.	अमितगति–1	923-963	योगसारप्राभृत
82	हरिषेण	—	वृहत कथाकोष
83.	देवसेन–2	933-955	दर्शनसार
84.	सोमदेव–1	943-966	नीतिवाक्यामृत
85.	वीरनन्दि–2	950-990	आचारसार
86.	प्रभाचन्द्र–4	950-1020	प्रमेयकमलमार्तण्ड
87.	माधवसेन	963-1007	
88.	भावसेन	973	प्रद्युम्न चरित्र
89.	प्रभाचन्द्र–5	980-1065	
90.	चामुण्डराय	978	चारित्रसार
91.	नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती	981	गोम्मटसार
92.	अमितगति–2	983-1023	श्रावकाचार
93.	क्षेमधर	1000	बृहत् कथामंजरी

ईसवी शताब्दी 11

94.	माणिक्यनदि	1003-1028	परीक्षामुख
95.	शुभचन्द्र	1003-1068	ज्ञानार्णव
96.	वादिराज	1010-1056	एकीभावस्तोत्र
97.	पदमसिंह	1029	ज्ञानसार
98.	कीर्तिवर्मा	1046	आयुर्वेदज्ञ
99.	मल्लिषेण	1047	महापुराण
100.	नेमिचन्द्र–3	1068	द्रव्यसंग्रह
101.	वसुनन्दि	1068–1118	प्रतिष्ठापाठ
102.	श्रुतकीर्ति	1089	पंचवस्तु टीका
103.	जयसेन–5	अन्तिम भाग में कुन्दकुन्द त्रयी टीका	
104.	वसुनन्दि–3	,, ,,	श्रावकाचार

ईसवी शताब्दी 12

105. चन्द्रप्रभ	1102	प्रमेयरत्नकोष
106. माघनन्दि (कोल्हा)	1108-1136	
107. शुभचन्द्र 3	1120-1147	
108. नयसेन	1125	धर्मामृत
109. गुणधरकीर्ति	1132	
110. देवचन्द्र	1133-1163	
111. बालचन्द्र	1150-1196	
112. हस्तिमल	1161-1181	विक्रांतकौरव
113. माघनन्दि 4	1193-1260	शास्त्रसार समुच्चय
114. नेमिचन्द	—	कर्मप्रकृति
115. रविचन्द्र	—	आराधनासार समुच्चय

ईसवी शताब्दी 13

116. गुणभद्र	पूर्वपाद	धन्यकुमारचरित
117. ललितकीर्ति	1234	
118. शुभचन्द्र 6	1230-1258	
119. अभयचन्द्र 2	1249-1279	गो. सार नन्दप्रबोधिनी टीका
120. प्रभाचन्द्र 8	1253-1328	
121. भास्करनंदि	1296	ध्यानस्तव
122. श्रुतमुनि	अंतिमपाद	परमागमसार

ईसवी शताब्दी 14

123. पदमनन्दि 8	1305	यत्याचार
124. बालचन्द्र	1311	—
125. पद्मनन्दि 9	1328-1393	भावनापद्धति
126. श्रुतकीर्ति	1384	
127. जिनदास 1	1393-1468	जम्बूस्वामीचरित
128. रत्नकीर्ति	1399	

ईसवी शताब्दी 15

129. सकलकीर्ति	1406-1442	मूलाचार प्रदीप आदि
130. यश:कीर्ति	1429-1440	सुदर्शन चरित
131. विद्यानंदि	1442-1481	
132. धर्मधर	1454	

133. श्रुतसागर	1481-1499	तत्वार्थवृत्ति
134. लक्ष्मीचंद	1499-1518	
135. श्रुतकीर्ति अंतिमपाद		हरिवंशपुराण

ईसवी शताब्दी 16

136. विद्यानन्दि 3	1500-1561	
137. रत्नकीर्ति 3	1515	भद्रबाहुचरित
138. ज्ञानभूषण 2	1525-1559	कर्मप्रकृतिटीका
139. गुणचन्द्र	1556-1596	
140. क्षेमकीर्ति	1584	
141. वादिभूषण	1593-1675	

ईसवी शताब्दी 17

142. ज्ञानकीर्ति	1602
143. महीचन्द्र	1607-1665
144 अभयकीर्ति	1616
145. मेरूचन्द	1665-1675

ईसवी शताब्दी 18

146. जिनदास	1721-1740

ईसवी शताब्दी 19

147. जगतकीर्ति	1828

ईसवी शताब्दी 20

148. आ. आदिसागर	
149. आचार्य शान्ति सागर	1919-1955
150. वीरसागर	1924-1957
151. शिवसागर	1949-1965
152. ज्ञानसागर	
153. महावीरकीर्ति	
154. धर्मसागर (1965 से 1987 तक)	

अध्याय 2

संघ भेद

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनका सघ निर्ग्रन्थ महाश्रमण संघ के नाम से प्रसिद्ध रहा। लेकिन यही सघ आगे चलकर कितने ही सघो मे विभाजित हो गया और मूलसंघ के अतिरिक्त यापनीय सघ, कूर्चक सघ, द्रविड़ सघ, काष्ठासंघ, माथुर संघ आदि नामों से जाना जाने लगा। इन्द्रनन्दि श्रुतावतार मे लिखा है कि वर्धन पुण्डोपुरवासी आचार्य अर्हत्बली प्रत्येक पाच वर्षो के अन्त मे सौ योजन मे बसने वाले मुनियो को युगप्रतिक्रमरण के लिये बुलाते थे। एक समय उन्होंने ऐसे ही प्रतिक्रमरण के अवसर पर समागत मुनियो मे से पूछा क्या सब आ गये। मुनियो ने उत्तर दिया—हाँ हम सब अपने सघ के साथ आ गये। इस उत्तर को सुनकर उन्हे लगा कि जैन धर्म अब गरण पक्षपात के साथ ही रह सकेगा। अतः उन्होने सघो की रचना की। जो मुनि गुफा से आये थे उनमे से किसी को नन्दि नाम दिया और उनको वीर जो अशोकवाट से आये थे। उनमे से कुछ को अपराजित और कुछ को देव नाम दिया। जो पचस्तूप निवास से आये थे उनमे से कुछ को सेन नाम दिया और कुछ को भद्र नाम दिया। जो शाल्मली वृक्ष मूल से आये थे उनमे से किन्ही को गुणधर और किन्ही को गुप्त। जो खण्डकेसर वृक्ष के मूल से आये थे उनमे से कुछ को सिंह नाम दिया और किन्ही को चन्द्र। इन्द्रनन्दि ने अपने कथन की पुष्टि मे एक प्राचीन पद्य भी उद्धृत किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि मूलसघ से ही काष्ठासघ, सेनसघ, सिंह सघ और देवसघ हुये।[2].

---

1. **आयातौ नन्दिवीरौ प्रकटगिरिगुहावसितो अशोकवाटा, द्देवाश्चान्यो अपरादिजित इति यतयो सेनभद्राह्वयौ च। पचस्तूप्यात्सगुप्तौ गुणधर वृषभः शाल्मली वृक्षमूलात्। निर्यातौ सिंहचन्द्रौ प्रथितगुणगणौ केसरात्खण्ड पूर्वात् ॥96॥**

2. **अर्हद्बली गुरुश्चक्रे संघ संघटन परम्।**
   सिंहसंघो नन्दिसघो सेनसघस्तथापरः।
   देवसघ इति स्पष्ट स्थान स्थिति विशेषतः ॥

आचार्य देवसेन ने दर्शनसार मे श्वेताम्बर, यापनीय संघ, द्रविड़संघ, काष्ठासंघ और माथुर संघ इन पांच संघों को जैनाभास बतलाया है। लेकिन इन्द्रनन्दि ने कहा है कि सिंहसघ, नन्दिसघ, सेनसंघ, और देवसघ इनमें मूलतः कोई भेद नही हे। इसी तरह काष्ठासघ को भी जैनाभास नही बतलाया है।

1. मूलसंघ

मूलसघ कब स्थापित हुआ और किस आचार्य के नाम से इस संघ का नाम रखा गया इस सबध में अभी कोई उल्लेख नही मिला है। ऐसा लगता है कि भगवान महावीर का निर्ग्रन्थ महाश्रमण संघ का नाम ही आगे चलकर मूलसघ नाम पड गया। अर्हद्बली आचार्य द्वारा जिन सघो की स्थापना की गई वे सभी मूलसघ के ही अंग थे इसलिये उन्होंने मूलसघ नाम का कोई अलग संघ नही बतलाया।

मूलसघ का सबसे प्रथम उल्लेख नोगा मंगल के दान-पत्र में पाया जाता है जो वि सं. 482 (425 ईस्वी) के लगभग का है।[1] इस दान-पत्र को विजयकीर्ति के लिये उरनूर के जिन मंदिरों को कोगणि वर्मा ने प्रदान किया था।

कौण्डकुन्दान्वय का उल्लेख बदन गुप्पे के लेख नं. 54 मे पाया जाता है जो शक संवत् 730 (808 ईस्वी) का है। और उत्तरवर्ती अनेक लेखो मे मिलता है। कुन्दकुन्द का वास्तविक नाम पद्मनन्दि था किन्तु कौण्डकुन्द स्थान से सम्बद्ध होने के कारण वे कुन्दकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये।

मूलसंघ मे वीर शासन के स्तम्भ माने जाने वाले तथा उसे चमत्कृत करने वाले अनेक आचार्य हुये है जिनमे आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र, देवनन्दी, पात्रकेसरी, अकलंकदेव एवं विद्यानन्द जैसे आचार्यों के नाम उल्लेखनीय है।

मूलसंघ के अन्तर्गत सात गणो के नाम मिलते हैं—देवगण, सेनगण, देशीगण, सूरस्थगण, बलात्कारगण, काणूरगण और निगमान्वय। इन गणो का नामकरण मुनियों के नामान्त शब्दों से तथा प्रान्त और स्थान विशेष के कारण हुये है।

(i) देवगण

कुछ विद्वान भट्टाकलंकदेव को इस गण का सस्थापक मानते है। वैसे देव नामान्त होने से देवगण नाम पड़ गया लगता है जैसे उदयदेव, लाभदेव, जयदेव, विजयदेव, महिदेव और अकलंकदेव आदि।

---

1. जैन शिलालेख संग्रह भाग 2, पृष्ठ 60–61

(ii) सेनगण

यह गण भी प्राचीन है । इसका प्रथम उल्लेख सन् 903 के शिलालेख में मिला है । उत्तरपुराण के रचयिता आचार्य गुणभद्र को अपनेगुरु जिनसेन एवं दादा गुरु वीरसेन को सेनान्वय के आचार्य माना है । किन्तु वीरसेन एव जिनसेन ने अपनी धवला जयधवला टीका मे अपने वंश को पंचस्तूपान्वय लिखा है । पंचस्तूपान्वय ईसा की 5वी शताब्दी मे होने वाले निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के साधुओ का एक सघ था । इसका सबसे पहिले गुणभद्र ने उत्तरपुराण मे उल्लेख किया है । सेनगण पोगरी-गच्छ, पुस्तकगच्छ और चन्द्रकपाट गच्छो मे विभक्त था ।

(iii) देशीगण

कुन्दकुन्दान्वय के साथ प्रयुक्त होने वाले देशीयगण का मूलसघ के साथ प्रयोग सन् 860 के एक लेख मे पाया जाता है । देमिस, देगिक, देसिग एवं देशीय आदि नाम इसी के दूसरे नाम है । देशिय शब्द देश से बना है जिसका सामान्य अर्थ प्रान्त होना है । कर्नाटक प्रान्त के कई स्थानो मे इस गण के अनेक केन्द्र थे ।

(iv) सूरस्थगण

मूलसंघ का एक गण सूरस्थ नाम से प्रसिद्ध है । लेकिन सूरस्थ नाम कैसे पडा इसका कोई उल्लेख नही मिलता । इस गण का पहिला उल्लेख लेख नं. 185 मे मिलता है । जान पड़ता है सूरस्थ गण पहले मूलसंघ के सेनगण से सम्बन्धित था । अनन्तवीर्य, बालचन्द्र, प्रभाचन्द्र, हेमनन्दि, विनयनन्दि जैसे विद्वान इसी गण के पंडित थे ।

(v) बलात्कारगण

इस गण का नाम बलात्कारगण कब और कैसे पड़ा इसके बारे में कोई इतिवृत्त नही मिलता । दक्षिण भारत में एक बलगार नाम का ग्राम है । बलगार गण का प्रथम उल्लेख सन् 1071 का मिलता है । इसमे मूलसंघ नन्दि संघ का बलगार गण ऐसा नाम दिया है । इसके अतिरिक्त जबरदस्ती क्रियाओ में अनुरक्त होने या लगने आदि के कारण भी इसका नाम बलात्कारगण रखा गया जान पडता है । 14वी-15वी शताब्दी के भट्टारक पद्मनन्दि की बलात्कारगण का अग्रणी भट्टारक कहा गया था क्योकि इन्होने सरस्वती की पाषाण मूर्ति को बलात्कार मन्त्र शक्ति द्वारा बुलवाया था । लेकिन बलात्कारगण तो इससे भी पूर्व अत्यधिक प्रसिद्ध था । महाराष्ट्र मे मलखेड का पीठ बलात्कारगण का केन्द्र था । उसकी दो शाखायें कारजा एव लातूर मे स्थापित हुई थी । सूरत में बलात्कारगण की गद्दी थी । ग्वालियर और सोनागिर माथुरगच्छ और बलात्कारगण के केन्द्र थे । इसी

नरह अजमेर, देहली, चित्तौड, चम्पावती, आमेर एवं जयपुर तथा श्री महावीरजी गादी के भट्टारक बलात्कारगण एवं सरस्वती गच्छ के भट्टारक थे ।

(vi) काणूरगण

इस गण में बड़े-बड़े आचार्य हुये जो सभी दक्षिण भारतीय थे । इस गण का 14वी शताब्दी तक उल्लेख मिलता है । मूल संघ के देशीयगण एवं काणूरगण की अपनी-अपनी बसदियाँ (मन्दिर) थी । दगिड से प्राप्त एक लेख मे लिखा है कि होयमल सेनापति मरिया ने और भरत ने दडिगण के स्थान में पांच बसदियाँ बनवाई उनमे चार देशीयगण के लिये तथा एक काणूरगण के लिये बनवाई थी ।

2. यापनीय संघ

यह संघ दक्षिण भारत मे 15वी शताब्दी तक महत्त्वपूर्ण संघ माना जाता रहा । ललित विस्तर के कर्ता हरिभद्रसूरि, षट्दर्शन समुच्चय के टीकाकार गुणरत्न-सूरि और षट्प्राभृत के व्याख्याता श्रुतसागर सूरि के अनुसार यापनीय संघ के मुनि नग्न रहते थे, पाणितल भोजी थे, नग्न मूर्तियाँ पूजते थे और वन्दना करने वाले श्रावकों को धर्म लाभ देते थे । ये सब बाते दिगम्बर धर्म के अनुसार थी, किन्तु वे यह भी मानते थे कि स्त्रियों को भी उसी भव मे मोक्ष हो सकता है । केवली भोजन करते है और सगंथावस्था और परशासन में भी मुक्ति होना सम्भव है । यापनीय सघ में आवश्यक, छद सूत्र, दशवैकालिक आदि ग्रन्थों का पठन-पाठन होता था ।

इस संघ का सबसे अधिक प्रभाव कर्नाटक के उत्तरीय प्रदेश तथा तमिल प्रान्त मे रहा । लेकिन अन्त मे यह संघ दिगम्बर सम्प्रदाय में विलीन हो गया ।

3. द्रविड संघ

द्रविड देश मे रहने वाले जैन समुदाय का नाम द्रविड संघ है । आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में द्रविड संघ की स्थापना पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दि के द्वारा दक्षिण मथुरा मे वि. सं. 526 में होना लिखा है । वादिराज भी द्रविड सघ के थे । उनकी गुरू परम्परा मठाधीशों की परम्परा थी । वे मन्दिर बनवाते, उनका जीर्णोद्धार कराते तथा मुनियों के लिये आहार की व्यवस्था करते थे । इन्ही वादिराज के समसामयिक मल्लिषेण थे जिनके मंत्र-तंत्र विषयक ग्रन्थों मे मारण-उच्चारण, वशीकरण, मोहन, स्तंभन आदि के अनेक प्रयोग निहित है ।

4. काष्ठासंघ

देवसेन ने काष्ठासंघ की उत्पत्ति शक् संवत् 753 में मानी है । इस संघ की स्थापना जिनसेन के सतीर्थ विनयसेन के शिष्य कुमारसेन द्वारा की गई थी । ये

नन्दितट में रहते थे । देवसेन ने लिखा है कि उन्होंने कर्कश केश अर्थात् गौ की पूंछ ग्रहण करके सारे बागड प्रदेश में उन्मार्ग चलाया । कविवर बुलाकीचन्द ने अपने बचनकोष में उमास्वामी के पट्टाधिकारी लोहाचार्य द्वारा काष्ठासघ की स्थापना अग्रोहा नगर मे की थी, मे ऐसा उल्लेख किया है । उनके अनुसार काठ की प्रतिमा पूजने के कारण काष्ठासंघ नाम पडा ।

काष्ठा नाम का स्थान दिल्ली के उत्तर में यमुना नदी के किनारे बसा था जिस पर नागवंशियो की टाक शाखा का राज्य था । 14वी शताब्दी मे मदनपारिजात का निबध यही लिखा गया था । काष्ठासघ की पट्टावली मे भी लोहाचार्य का नाम आता है । ऐसी प्रसिद्धि है कि लोहाचार्य ने ही अग्रवालो को दिगम्बर जैन धर्म मे दीक्षित किया था । अग्रवालो का उल्लेख करने वाले लेखो मे काष्ठासघ और लोहाचार्यान्वय का निर्देश मिलता है ।

काष्ठासघ मे अनेक आचार्य हो गये है उनमे देवसेन, अमितिगति, प्रथम, नेमिषेण, माधवसेन, अमितिगति द्वितीय है । काष्ठासघ मे नन्दि तट माथुर, बागड, और लाड बागड ये चार गच्छ प्रसिद्ध थे । भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने इसका निम्न पद्य मे उल्लेख किया है .—

काष्ठासंघ भुविख्यातो जानान्ति नृसुरासुराः ।
तत् गच्छाश्च चत्वारो राजन्ते विश्रुताः ।।
श्री नन्दितट संज्ञा च माथुरो बागडाभिधः ।
लाड बागड़ इत्येके विख्यातः क्षिति मण्डले ।।

माथुर गच्छ, बागड गच्छ एव लाड बागड गच्छ मे अनेक आचार्य एव भट्टारक हुये है । अमितिगति प्रथम एव अमितिगति द्वितीय दोनो ही माथुर सघी थे । ग्वालियर के रइधू एव उनके समकालीन अन्य आचार्य भी माथुर सघी थे ।

बागड सघ का कोई स्वतन्त्र उल्लेख नही मिलता लेकिन लाड बागड सघ का मिला जुला उल्लेख मिलता है । इस सघ का प्रभाव गुजरात एव बागड प्रदेशीय भूमि मे बहुत कुछ रहा है । श्रीचन्द्र ने लाड बागड सघ का उल्लेख किया है । 10वी शता० से पूर्व ही लाड बागड सघ अस्तित्व मे आ गया था । सवत् 1232 मे प्रतिष्ठित एक मूर्ति जो अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर अलवर मे विराजमान है लाड बागड सघ का उल्लेख आया है ।

जातियो का प्रादुर्भाव

साधु सघो के सघ, गण एव गच्छो मे विभाजन से समस्त जैन समाज भी जातियो एव उपजातियो मे विभक्त हो गया । यद्यपि भगवान महावीर के समय जाति प्रथा ने अधिक जोर नही पकड़ा था लेकिन उनके निर्वाण के कुछ वर्षों पश्चात् से ही

जातियाँ एक, दो अथवा दस बीस नहीं रहीं, किन्तु सैंकड़ों की संख्या में एक के पश्चात् दूसरी जाति का प्रादुर्भाव होने लगा और एक जाति अपने को उच्च तथा दूसरी जाति को हीन समझने लगी। इसीलिये सम्यग्दर्शन के परिपालन के लिये आठ मदो में से एक **मद जाति** मद को भी सम्मिलित किया गया। यद्यपि आदि पुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन ने "मनुष्य जातिः एकैव" कहकर जातियो के महत्त्व को कम करना चाहा और समस्त मानव समाज को एक ही मानव जाति के रूप मे प्रस्तुत किया गया किन्तु मूलाचार मे आचार्य वट्टकेर ने जाति, कुल, शिल्प, वर्ग के आधार पर आहार ग्रहण करने को सदोष आहार मान कर जाति प्रथा को प्रश्रय ही नही दिया किन्तु उसकी उपयोगिता को भी स्वीकार कर लिया।

भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले गणधरो, केवलियो, आचार्यों एवं भट्टारको की कितनी ही पट्टावलियाँ मिलती है। इन पट्टावलियों में भी बहुत से आचार्यों एवं भट्टारको के नामो के आगे जातियों का उल्लेख मिलता है। यह भी एक विचारणीय तथ्य है तथा उससे भी पता चलता है कि जाति प्रथा का जोर भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् ही हो गया था उस समय चाहे उनमे पारस्परिक भेदभाव नही रहा हो। ये जातियाँ आजीविका आदि के आधार पर चार वर्णों के अन्तर्गत प्रदेश भेद एवं आचार भेद के कारण भी बनने लगी थी। इसलिये आजीविका भेद भी इन जातियो के बनने का एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।

वैसे जातियो का उद्भव सामान्यतः तीन प्रकार से माना जाता है :—

(क) कर्म (व्यवसाय) के आधार पर

(ख) स्थान विशेष के आधार पर

(ग) देवता के आधार पर

(क) व्यवसाय विशेष के आधार पर जो जातियाँ बनी उनके नाम में ही व्यवसाय का बोध होता है जैसे-सुनार, लुहार, खाती, चमार, धोबी आदि।

(ख) स्थान अथवा नगर विशेष के आधार पर भी बहुत सी जातियाँ प्रसिद्ध है जैसे खडेला से खण्डेलवाल, अग्रोहा से अग्रवाल, बघेरा से बघेरवाल, चित्तौड़ से चित्तौड़ा आदि।

(ग) देवता विशेष के नाम से भी कितनी ही जातियों का विकास हुआ है। जैसे नाग देवता से नाग जाति, वानर से वानर जाति, गरूड़ से गरूड़ जाति लेकिन जैन जातियों के उद्भव एवं विकास में जैनाचार्यों एवं भट्टारकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसकी हम उपेक्षा नही कर सकते। जहां कही भी किसी आचार्य का प्रभावशाली व्यक्तित्व हुआ उसीने स्थानीय व्यक्तियों को अपने धर्म मे दीक्षित

करके एक नई जाति अथवा उपजाति को जन्म दिया। देश के एक भाग में किसी एक भाग का तथा दूसरे भाग में किसी दूसरी जाति का प्रभाव एव संख्या की अधिकता मिलना भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

चौरासी जातियों का उद्भव एवं विकास

जातियों की उत्पत्ति का कारण एवं समय कुछ भी रहा हो लेकिन दिगम्बर जैन समाज मे 84 जातियाँ मानी जाती हैं। वैसे 84 की सख्या सभी धर्मो मे एक विशेष संख्या रही है इसलिये जातियो की सख्या गिनाने में उक्त सख्या को भी प्रमुखता दी गई ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। इन 84 जातियो का उल्लेख राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत ग्रन्थो मे मिलता है। आमेर शास्त्र भण्डार मे गुटका संख्या 38 मे प्राकृत भाषा में निबद्ध के एक चौरासी जातिमाला है जिसका लिपि संवत् 1612 है। ब्रह्म जिनदास (15वी शताब्दी) स्वय ने चौरासी जाति जयमाल की रचना की थी जिसमे चौरासी जातियो का उल्लेख किया है। इसी तरह विनोदीलाल कृत चौरासी जाति की जयमाला तो बहुत लोकप्रिय रचना है जिसमे भी कवि ने 84 जातियो के नाम गिनाये है। इसी तरह 17वी शताब्दी के कवि ब्रह्म गुलाल कृत चौरासी जाति के जयमाला अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध होती है। इन सब जयमालाओ का प्राय: एक ही कथानक है और वह है गिरनार पर्वत पर एकत्रित श्रावको द्वारा भगवान की माला की बोली बोलने का। हमारे पास एक सचित्र गुटका है जिसमे एक चित्र में एक भट्टारकजी के सामने माला की बोली बोली जा रही है और बघेरवाल, दिलीवाल, अग्रवाल, खण्डेलवाल जाति के श्रावक बोली बढ़ा रहे है। झालावाड़ के मन्दिर मे सग्रहीत एक गुटके मे "श्रीमाल" मे 84 जातियों के पूरे नाम नही गिना कर प्रमुख जातियो के ही नाम गिनाये है।

18वी शताब्दी के कवि बख्तराम साह ने भी बुद्धिविलास मे 84 जातियो के नाम गिनाये है और इन जातियो के नाम गिनाने के पहिले इन जातियो की उत्पत्ति के बारे में अपना निम्न मन्तव्य छन्दोबद्ध किया है—

आगे तो श्रावक सबै एकमेक ही होत।
लगे चलन विपरीत तब, थापे खाप अरु गोत ।। (683)
थपी बहोतरि खाप ए ग्राम नगर के नाम।
जैसे पोथनु में लखी, सो बरनी अभिराम ।। (684)

पहिले कवि ने 72 जातियों के नाम गिनाये और फिर 12 जातियो के नाम

---

1. श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक सं.-डॉ. प्रेमचंद रांवका

ग्रौर गिनाकर 84 नाम पूरे किये हैं। लेकिन बुद्धि विलास में 84 नामों के बारे में यह भी लिखा है कि ये नाम पांच-सात पुस्तकों को देखने के पश्चात् लिखे हैं। यदि इनमें कोई गलती हो तो उसे ठीक कर लेवें। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वयं कवि भी 84 जातियों के नामों के प्रति आश्वस्त नहीं थे और उसने प्राचीन गुटकों के आधार पर ही नाम गिना दिये है। कवि के समय में इनमें कितनी जातियों का अस्तित्व था, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

लेकिन प्राचीन पाण्डुलिपियो में 84 जातियों के नाम अवश्य उपलब्ध होते है। हमने इस प्रकार की पाण्डुलिपियाँ एवं एक प्रकाशित ग्रन्थ (बुद्धि विलास) का अध्ययन किया है। उनके अनुसार 84 जातियों के नाम निम्न प्रकार हैं :—इनमें सबसे प्राचीन ब्रह्मा जिनदास कृत चौरासी जाति जयमाला है जो 15वी शताब्दी की रचना है। यह राजस्थानी में है। पूरी रचना महाकवि ब्रह्म जिनदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व मे प्रकाशित हो चुकी है। दूसरी पाण्डुलिपि विनोदीलाल द्वारा रचित फूल-माला पच्चीसी है। जो बहुत ही लोकप्रिय रचना है। तीसरी जयपुर के बख्तराम साह कृत बुद्धि विलास मे संग्रहीत है। चौथी पाण्डुलिपि संवत् 1852 की है उस पर कवि ने अपना नाम नहीं दिया है।

पाण्डुलिपियो के अनुसार दिगम्बर जैन जातियों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

84 जातियों का विवरण

क्र. सं.	ब्रह्म जिनदास की जयमाला के आधार पर	विनोदीलाल की जयमाला के आधार पर	बख्तराम साह द्वारा वर्णित बुद्धि विलास के आधार पर	सवत् 1852 की पाण्डुलिपि के आधार पर	सन् 1914 मे प्रकाशित दिगम्बर जैन डाइरेक्टरी के आधार पर
1	2	3	4	5	6
1.	गोलमिगार	गोलमिघारे	गोलमिघारे	गोलमिघाडा	गोलमिघारे
2.	गोलाराडा	गोलालारा	गोलालारे	गोलराडा	गोलालारे
3.	गोलापूरव	गोलापुरी	गोलापूरब	गोलापूर्व	गोलापूरव गोलापूर्व
4	बघेरवाल	बघेरवाल	बघेरवाल	बघेरवाल	बघेरवाल
5.	जैसवाल	जैसवाल	जैसवाल	जैसवाल	जैसवाल, (बीसा, दस्सा)
6.	श्रीमाल	श्रीमाल	श्रीमाल	श्रीमाल	श्रीमाल (दस्सा, बीसा)
7.	हूबड	हूबड	—	हूबड	हूबड (दस्सा, बीसा)
8.	मेडतवाल	—	मेडतवाल	—	—
9.	खण्डेलवाल	खण्डेलवाल	खण्डेलवाल	खण्डेलवाल	खण्डेलवाल
10.	अग्रवाल	अग्रवाल	अग्रवाल	अग्रवाल	अग्रवाल
11.	ओसवाल	वोसवाल	वोसवाल	वोसवाल	ओसवाल दस्सा बीसा
12.	सहस्त्रजाति	—	—	—	—
13.	पोरवाड	पौरवाड	—	पोरवाड	पोरवाड, पोरवाड जागडा बीसा

1	2	3	5	5	6
14.	चित्तौडा	चित्तौडा	चित्तोडा	चित्तौडा	चित्तोडा दस्सा बीसा
15.	पल्लीवाल	पल्लीवाल	पल्लीवाल	पल्लीवाल	—
16.	डेडूं	—	—	—	—
17.	नरसिंह बोहरा	—	नरसिंह घोडा	नरसिंघोडा	नरसिंहपुरा बीसा दस्सा
18.	लंबेचू	लंबेचू	लंबेचू	लंबेचू	लंबेचू
19.	हरसौरा	—	हरसूरा	हरसोरा	—
20.	देशवाल	देशवाल	—	—	—
21.	गूजरजाति	बडगूजर	गुजरवाल	गूजरवाल	गुर्जर
22.	छेहडवाल	—	—	—	—
23.	रायकवाल	—	—	रायकवाई	—
24.	गंगेडा	गंगेरवाल	गंगरीक	गांगरडा	गंगेरवाल
25.	बापडा (गुजरात)	—	—	—	—
26.	बंभेरा	—	—	—	—
27.	नागद्रहा	नागद्रवाल	नागद्रहा	नाग्रद्रहा	नागदा बीसा दस्सा
28.	बंधनोरा	बंधनोरा	—	बघणोरा	—
29.	नागर	—	—	—	—
30.	धाकड़	—	धकड़ा	धाकड़	धाकड़
31.	रोहिणीवाल	—	—	—	—
32.	नीवाकड रोहिणीवाल	—	—	—	—

1	2	3	4	5	6
33.	मोढ	—	—	—	—
34.	मेवाडा	मेवाडा	मेवाडा	मेवाडा	मेवाडा दस्सा बीसा
35.	सोरठवाल	सोरठवाल	सोरठिया परवार	—	—
36.	हरण	—	—	—	—
37.	कपोल	कपोल	—	—	—
38.	मालबडे	—	—	—	—
39.	गोहिलवाल	—	—	—	—
40.	सोहिडवाल	सोहिलबाल	सहिलवाल	सहिलवाल	सेतवाल
41.	लोहक	—	—	—	लोहिया
42.	विचावास	—	—	—	—
43.	राजाइल	—	—	—	—
44.	जैंसल	—	—	—	—
45.	गोरड	—	गोरावाड़	—	—
46.	सोरा	—	—	—	—
47.	महलवाल	—	—	—	—
48.	चौबीसी	—	—	—	—
49.	श्रीखंड	श्रीखंड	—	—	—
50.	जसमेरा	—	—	—	—
51.	गुणवाल	—	—	—	—

1	2	3	4	5	6
52.	राजुरा गोहिलवाल	—	—	—	—
53.	माथुर गोहिलबाल	—	—	—	--
54.	परवडा	—	—	—	—
55.	खेमावाल	—	—	—	—
56.	बिग्घूव	—	—	—	—
57.	मोहवड	—	—	—	—
58.	राजतवाल	—	—	—	—
59.	कठनेरा	—	कठनेरा	—	कठनेरा
60.	मीठ	—	—	—	—
61.	कंकोल	—	—	—	—
62.	श्रठवर्गी	वरगी	—	—	—
63.	खीरणा	—	—	—	—
64.	करडा	—	—	—	—
65.	वघुनरा	—	—	—	—
66.	उजण्या	—	—	—	—
67.	विध्या	—	—	—	—
68.	नतवाल	—	—	—	—
69.	जांगडा	—	—	—	—
70.	कवियावाल	—	—	—	—

1	2	3	4	5	6
71.	कविनीक	—	—	—	—
72.	धवलवाल	—	—	—	धवल
73.	सोहितवाल	—	—	—	—
74.	बोगार	—	—	—	बोगार, ठगर बोगार
75.	पंचम	पचम	पंचम	पंचम	—
76.	चतुर्थ	चतुर्थ	चतुर्थ	चतुर्थ	—
77.	वेस्य	—	—	—	वेस्य
78.	कोपटी	—	कमटी	कोमटी	—
79.	क्षत्रिय जैन	—	मड क्षत्रिय	क्षत्री	क्षत्रिय
80.	श्रावक	—	—	श्रावक	श्रावक
81.	नारायना	—	—	—	—
82.	स्वरूवा	—	—	—	—
83.	लोह	—	—	—	—
84.	खंडायीता	खडीयत	खथडवाल	खंथडवाल	खंडायता
85.	—	सहेलवाल	—	महेलवाल	—
86.	—	दिलीवाल	—	—	—
87.	—	अद्दीवाल	—	—	—
88.	—	बुढेलवाल	बुढेलिया	—	बुढेले
89.	—	पुष्करवाल	—	—	—

1	2	3	4	5	6
90.	—	चौसखा परवार	चौसखा परवार	—	चौसखा परवार एवं पुरवाल दस्सा
91.	—	पद्मावती पुरवाल	पद्मावती पुरवाल	पद्मावती पुरवाल	पद्मावती पुरवाल
92.	—	ढूसरवाल	—	ढूमर	—
93.	—	अठसखा परवार	अठसखा परवार	—	परवार
94.	—	पोरनवाल	—	—	—
95.	—	कुरट्ठवाल	—	—	—
96.	—	पच्चीवाल	—	—	—
97.	—	मढतीवाल	—	—	—
98.	—	खरहवाल	—	—	खरौवा
99.	—	दोहला	—	—	—
100.	—	बोरमाहुर	—	—	—
101.	—	महेसरी	—	—	—
102.	—	बंधुराल	—	—	—
103.	—	मागधी	—	—	—
104.	—	बीहड़	—	—	—
105.	—	जानराज	—	—	—
106.	—	ढूसर	ढूसर	—	—
107.	—	भूरवाल	—	—	—
108.	—	भूरवाल	—	—	—

1	2	3	4	5	6
109.	—	श्रीगोड	—	—	—
110.	—	भूडिया	—	—	—
111.	—	कूडीया	—	—	—
112.	—	अयोधिया	अयोध्यापुरी	अयोध्यापुरी	अयोध्यावासी, अयोध्यावासी (तारन पंथ)
113.	—	योधड़	—	—	—
114.	—	भट्टनेर	—	—	—
115.	—	नायक	—	—	—
116.	—	करनागर	—	—	—
117.	—	सुकत्थर	—	—	—
118.	—	पावड	—	—	—
119.	—	लाड	—	—	लाड जैन
120.	—	चोड	—	—	—
121.	—	मोड	—	—	—
122.	—	गोड	—	—	—
123.	—	सांभरवाल	—	—	—
124.	—	—	सहस्त्ररडा परवार	—	—
125.	—	—	दो सखा परवार	परवार दुसखा	—
126.	—	—	गांगड परवार	—	—

1	2	3	4	5	6
127.	—	—	बारहसैनी	बारहसैनी	—
128.	—	—	गहोई	—	—
129.	—	—	सचाणा	सचोणा	—
130.	—	—	वीडलसानी	—	—
131.	—	—	मसराहेरा	—	—
132.	—	—	माठाडा	—	—
133.	—	—	वेरवडा	—	—
134.	—	—	सेहरिया	सेहरिया	—
135.	—	—	निगम	नैगम	—
136.	—	—	गुजराती	गुजरात देव	—
137.	—	—	रासूयचा	—	—
138.	—	—	खरवा	—	—
139.	—	—	खंडवता	खंडायता	—
140.	—	—	बयानश्री	वायन श्रावक	—
141.	—	—	हरधरा	हरधरा	—
142.	—	—	सीवरा	सांवर	सावर (जैन)
143.	—	—	कुलया	—	—
144.	—	—	दहवडराम	—	—
145.	—	—	कडावण	—	—

1	2	3	4	5	6
146.	—	—	चंचल	—	—
147.	—	—	बलगोरा	—	—
148.	—	—	करमणीत	—	—
149.	—	—	चिड्डुकरा	—	—
150.	—	—	मदगुरा	—	—
151.	—	—	विवोरा	—	—
152.	—	—	बेवावली	—	—
153.	—	—	नुतपा	नुतपा	—
154.	—	—	तुलासिरी	तुलु	—
155.	—	—	कचगार	कंचगारा	—
156.	—	—	हयगार	हैवगारा	—
157.	—	—	ब्राह्मण	ब्राह्मण	ब्राह्मण जैन
158.	—	—	द्रावड	द्राविड	—
159.	—	—	सिखवाल	—	—
160.	—	—	काकडवाल	—	—
161.	—	—	सगवाल जैन	—	—
162.	—	—	कंघड	—	—
163.	—	—	जनडा	—	—
164.	—	—	कोरडवाल	—	—

1	2	3	4	5	6
165.	—	—	खडहूता	—	—
166.	—	—	अहिछत्रा	—	—
167.	—	—	लोगार	—	—
168.	—	—	दोहला	—	—
169.	—	—	सुडीदहा	—	—
170.	—	—	गोनवशी	—	—
171.	—	—	बलरी	—	—
172.	—	—	पोहकरवाल	—	—
173.	—	—	—	गुरूचार	—
174.	—	—	—	राल्नागरा	—
175.	—	—	—	काबारा	—
176.	—	—	—	बरहिया	बरैय्या
177.	—	—	—	गजमोही	—
178.	—	—	—	विष्णुमडा	—
179.	—	—	—	नीमा	—
180.	—	—	—	चोरवाड	—
181.	—	—	—	पटोवरा	—
182.	—	—	—	वाच	—
183.	—	—	—	हूंनर	—

1	2	3	4	5	6
184.	—	—	—	हुलचर	—
185	—	—	—	बचबलु	—
186.	—	—	—	बलगोरू	—
187.	—	—	—	कर्म्मे	—
188.	—	—	—	चिह्न कर्म्मे	—
189.	—	—	—	वेउ	—
190.	—	—	—	मुदवेउ	—
191.	—	—	—	बलारिगुलु	—
192.	—	—	—	गंगारिकार	—
193.	—	—	—	लौगारा	—
194.	—	—	—	श्रावण पईग	—
195.	—	—	—	नालवनोकुलु	—
196.	—	—	—	पन्नामिया	—
197.	—	—	—	जैन मालवी	—
198.	—	—	—	कोकिलवासी	—
199.	—	—	—	जैन सीपी	—
200.	—	—	—	जैन कल्लाल	—
201	—	—	—	परवाड, जागराडा	—
202.	—	—	—	परवाड, मनराडा	—

1	2	3	4	5	6
203.	—	—	—	पोरवाल, सोरठिया	—
204.	—	—	—	मुमवाई	—
205.	—	—	—	गूजरवाल	—
206.	—	—	—	वनोरा, दशिनदे	—
207.	—	—	—	धन्याति	—
208.	—	—	—	—	—
209.	—	—	—	—	विनैक्या
210.	—	—	—	—	नूतन जैन
211.	—	—	—	—	बडेले
212.	—	—	—	—	फतेहपुरिया
213.	—	—	—	—	दिगम्बर जैन
214.	—	—	—	—	चरनागरे
215.	—	—	—	—	पोरवाल
216.	—	—	—	—	कासार
217.	—	—	—	—	कृष्णपक्षी
218.	—	—	—	—	कम्मोज
219.	—	—	—	—	असाटी
220.	—	—	—	—	वढलेरे
221.	—	—	—	—	भवसागर
					अन्यधर्मी

1	2	3	4	5	6
222.	—	—	—	—	सेलवार
223.	—	—	—	—	इन्द्र (जैन)
224	—	—	—	—	पुरोहित
225.	—	—	—	—	तगर
226.	—	—	—	—	चौघले
227.	—	—	—	—	मिश्र (जैन)
228.	—	—	—	—	संकवाल
229.	—	—	—	—	खुरसाले
230.	—	—	—	—	हरदर
231.	—	—	—	—	उपाध्याय
232	—	—	—	—	गाधी
233.	—	—	—	—	नाई जैन
234.	—	—	—	—	बढई जैन
235.	—	—	—	—	पोकरा जैन
236.	—	—	—	—	सुकर जैन
237.	—	—	—	—	महथी

84 जातियों का उक्त विवरण हमने चार पाण्डुलिपियों एवं एक प्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर किया है। इस आधार पर यह तो कहा जा सकता है कि सभी विद्वानों ने दिगम्बर जातियों की संख्या 84 मानी है लेकिन उन जातियो के नामो मे कोई साम्यता नही है। और उनकी संख्या 84 के स्थान पर 237 तक पहुंच जाती है।

1. ब्रह्म जिनदास ने जिन 84 जातियों का नामोल्लेख किया है उनमें विनोदीलाल की सूची से केवल 28 जातियों के नाम मिलते हैं शेष 31 जातियो के नाम नये है जिनका उल्लेख ब्रह्म जिनदास ने नहीं किया है। इसके अतिरिक्त विनोदीलाल केवल 67 जातियो के नाम ही गिना सके है।

2. बख्तराम साह ने 84 जातियो के नाम पूरे गिनाये हैं लेकिन उनमे 49 जातियों के नाम तो ऐसे है जिसको न तो ब्रह्म जिनदास ने गिनाये है और न विनोदीलाल ही गिना सके है। इसके अतिरिक्त बख्तराम साह हूंबड जैसी प्रसिद्ध जाति का नाम भी छोड़ गये। उन्होने यह भी लिखा है कि इन नामो को उन्होंने 5-6 पोथियो को देखकर लिखा है। इसमें भी यदि कही भूल चूक हो तो पाठकगण सुधार लेवें। इससे लगता है कि वे स्वयं भी 84 सख्या के बारे में आश्वस्त नही थे।

पोथी पाच सात को देख, करि विचार यह कीनौ लेख।
या मे भूल्यो चूक्यो होय, ताहि सुधारी लेहु भवि लोय॥ (600)

3. संवत् 1852 की पाण्डुलिपि में पूरी 84 जातियों के नामो का उल्लेख किया है लेकिन ब्रह्म जिनदास के विवरण से 30 नाम मिलते हैं तथा विनोदीलालजी से 28 नामों में साम्यता मिलती है तथा बख्तराम की सूची से 43 नाम मिलते हैं। 35 जातियो के नाम तो ऐसे है जो किसी भी सूची मे नही मिलते है।

4. इसी तरह जो सन् 1914 मे जैन डाइरेक्टरी मे दिगम्बर जैन जातियो के 87 नाम प्रकाशित हुये है उनमे चारो पाण्डुलिपियों मे केवल 37 नामो का उल्लेख मिलता है। शेष 29 नाम तो ऐसे है जिनका उल्लेख किसी सूची मे नही मिलता जबकि उन जातियो के व्यक्ति अच्छी सख्या मे मिलते है। इसके अतिरिक्त 12 जातियाँ ऐसी हैं जिनको जाति के रूप मे मानना उचित नही है।

देश भर में संख्या

1. नूतन जैन	8
2. बडेले	16
3. धवल जैन	33
4. कृष्ण पक्ष	62
5. भवसागर	80
6. इन्द्र जैन	11
7. पुरोहित	15

8. क्षत्रिय जैन	87
9. तगर	8
10. मिश्र जैन	28
11. संकवाल	40
12. गाधी	20
13. अन्य धर्मी	14

उक्त 13 जातियों के अतिरिक्त निम्न जातियों को दस्सा बीसा कहकर एक ही जाति के स्थान पर दो जातियां लिख दी गई है ।

1. दस्सा हूंबड एवं बीसा हूबड
2. नरसिहपुरा दस्सा एव बीसा
3 मेवाडा दस्सा एव बीसा
4 नागदा दस्सा एव बीसा
5. चित्तौडा दस्सा एव बीसा
6. श्रीमाल दस्सा एव बीसा
7. पोरवाड जागडा एव पोरवाड जागडा बीसा

इसलिये 7 जातियो के नाम और कम हो गये । इसके अतिरिक्त नाई, वढई, पोकरा, सुकर एव महश्री ये सभी जैन जाति नही है इसलिये इन पाच जातियो को और निकाल दे । 87 जातियो के स्थान पर केवल 62 जातियो के नाम वर्तमान मे शेष बचते है उनमे से निम्न जातियो के नाम भी सही प्रतीत नही होते—

फतहपुरिया जैन जाति को सख्या 135 लिखी है । यह फतहपुरिया जाति अग्रवाल जैन जाति है जो फतहपुर मे आने के कारण अपने आपको फतहपुरिया कहने लगे है । पापडीवाल कोई जाति नही है यह तो खण्डेलवाल जाति का एक गोत्र है जिसको जाति गिना दी गई है । ठगर बोगार एव बोगार भी एक ही जाति होनी चाहिये ।

पाण्डुलिपि मे 84 नामो को गिना तो दिया है लेकिन 1. विनैक्या, 2. चरनागरे, कासार, असाटी, उपाध्याय जैसी जातियां का कही नामोल्लेख नही किया गया जबकि इन जातियो के व्यक्तियो की अच्छी सख्या पाई जाती है।

मेड़तवाल जाति का केवल ब्रह्म जिनदास एव बख्तराम साह ने ही उल्लेख किया है । बारां (राजस्थान) की नशियां मे जो प्राचीन मूर्तियाँ है उनमे सवत् 1224 की एक प्रतिमा किसी मेड़तवाल जाति के श्रावक ने विराजमान करवाई थी ऐसा लेख है । इसलिये मेड़तवाल जाति भी 84 जातियों मे एक जाति रही थी । हरसोरा जाति का तीन विद्वानो ने उल्लेख किया है केवल विनोदीलाल जी ने अपनी फूलमाला पच्चीसी मे उल्लेख नही किया है । डाइरेक्टरी के अनुसार यह जाति भी लुप्त हो चुकी है ।

पोरवार, पौरवाड एवं पोरवार नाम से जो जाति मिलती है वह संभवत: पोरवाल जाति का ही दूसरा नाम है। इसमे परवार जाति नही आती है। डाइरेक्टरी मे इसको पोरवाड, पोरवाड जोगडा एवं पोरवाड बीसा–तीन नामो से उल्लेख किया है। इसलिये आगे जो अठमखा परवार नाम से जिस जाति का उल्लेख हुआ है वही परवार जाति के लिये है। परवार जाति तो सम्पन्न एवं बहुसख्यक जाति है जो बुन्देलखंड मे पर्याप्त संख्या मे मिलती है। देशवाल जाति का भी दो कवियों ने उल्लेख किया है इसलिये यह भी कभी जाति रही होगी। वर्तमान में यह जाति नही मिलती है। धाकड जाति का विनोदीलाल को छोड़कर शेष तीन विद्वानों ने होना स्वीकार किया है। हरिषेण ने धम्मपरीक्षा में धक्कड कुल का उल्लेख किया है। धाकड जाति वर्तमान मे मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र में मिलती है।

कठनेरा जाति का उल्लेख यद्यपि तीन विवरणो मे ही हुआ है। किन्तु यह जाति बुन्देलखंड मे आज भी मिलती है। हमारे मित्र स्व. मानभद्र जी जाति से कठनेरा थे। दलीवाल जाति का उल्लेख यद्यपि विनोदीलाल ने ही किया है लेकिन इस जाति का अस्तित्व कभी अच्छा था। 84 जातियो के चित्र में दलीवाल जाति के श्रावक का भी चित्र दिया हुआ है। इसी तरह बुढेलिया जाति के परिवार लश्कर मे मिलते है यद्यपि उसका केवल 2 कवियों ने उल्लेख किया है। इसी तरह चौसखा परवार एवं अठसखा परवार, परवार जाति ही का दूसरा नाम है। यद्यपि ब्रह्म जिनदास ने उसका कोई उल्लेख नही किया है। बारहसैनी जाति भी दिगम्बर जैन जाति रही है। इस जाति के परिवार उत्तर प्रदेश में पाये जाते है।

हम यह कह सकते है कि दिगम्बर जैनों मे यद्यपि 84 जातियाँ मानने की परम्परा रही है किन्तु उनके नामों मे सादृश्यता नही रही। क्षेत्र एवं प्रदेश के अनुसार जातियां बनती बिगड़ती रही है। इसके अतिरिक्त और भी ऐसी बहुत सी जातियां थी जो कभी दिगम्बर जैन जाति थी लेकिन आज उनका कही अस्तित्व नही मिलता। दक्षिण भारत की केवल चतुर्थ एव पचम जाति का ही नामोल्लेख हुआ है जबकि वहा और भी कितनी ही जातिया है जो कट्टर दिगम्बर धर्मानुयायी है। इसमे उपाध्याय जाति का नाम लिया जा सकता है जिसका किसी भी चौरासा जाति माला में उल्लेख नही हुआ है। इन्ही जातियों की नामावली के साथ एक और जयमाल हमारे पास है। जिसमे भी कवि पूरे 84 नामो को नही गिना पाया है और कुछ जातियो के नाम ऐसे भी दिये हैं जो पूर्व में उल्लिखित नामों में नही आते।

भारत सरकार द्वारा प्रति 10 वर्ष मे एक बार जनगणना की जाती है लेकिन जैन धर्मावलम्बियों की सख्या कभी सही नही आती। वर्ष 1981 के

सरकारी आँकड़ों के अनुसार सारे देश में जैनों की संख्या 32 लाख के करीब है जबकि समाज के अनुसार वह एक करोड से कम नही है। सन् 1914 मे इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य हुआ था और उसके अनुसार विभिन्न दिगम्बर जैन जातियो की संख्या निम्न प्रकार प्रकाशित हुई थी .—

1. खण्डेलवाल	64726	26. काम्भोज	705
2. जैसवाल	11089	27 समैय्या	1107
3. अग्रवाल	67121	28. अमाटी	467
4. परवार[1]	54873	29 हूबड (दस्सा बीसा)	20634
5. पल्लीवाल	4272	30. पचम	32556
6 गोलालारे	5582	31 चतुर्थ	69285
7. विनैक्या	3685	32 बदनेरे	501
8 ओसवाल (दिगम्बर)	747	33 भवसागर	80
9. बरैय्या	1584	34 नेमा	263
10 गंगेरवाल	772	35 नरसिहपुरा (दस्सा बीसा)	7065
11. दिगम्बर जैन	1167	36 सेतवाल	20889
12 पोरवाल	115	37. मेवाडा	2160
13. बुढले	566	38 नागदा	3551
14. लोहिया	602	39. चित्तौडा (दस्सा बीसा)	857
15. गोलसिंघारे	629	40. श्रीमाल	780
16 खरौवा	1750	41. सेलवार	433
17 लमेचू	1977	42. श्रावक	8467
18 गोलापूर्व	10834	43. मादर (जैन)	11241
19. चरनागरे	1987	44. बोगार	2431
20. धाकड़	1272	45. जैन दिगम्बर	9772
21. कठनेरा	699	46. हरदर	236
22 पोरवाड	2581	47. उपाध्याय	1216
23. कासार	9987	48. ब्राह्मण जैन	704
24. बघेरवाल	4324	49. खुरमाले	240
25. अयोध्यावासी	592		

50 20 अन्य जैन जातियो की सख्या 100 से कम है और सब मिलाकर 706 है।

---

1. **इसमें परवार, पद्मावती, परवार, दो सखा, चार सखा एवं अठसखा परवार जाति की सख्या सम्मिलित है।**

अतः उक्त डिरेक्टरी में प्रकाशित संख्या 450584 थी। किन्तु पिछले 70-75 वर्षों मे जिस तरह देश की जन सख्या मे वृद्धि हुई है तथा जैन समाज की जनगणना में जो उपेक्षा की जाती है उसके आधार पर प्रत्येक जाति की संख्या 10 गुनी होने का अनुमान है। इस प्रकार पूरे दिगम्बर जैन समाज की सख्या 50 लाख से भी अधिक आकी जाती है जो सही प्रतीत होती हैं।

उक्त चौरासी जातियो मे खण्डेलवाल जाति का इतिहास तो आगे विस्तृत रूप से दिया जावेगा। यहाँ पर उत्तर भारत की कुछ प्रमुख जातियो का अति सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. अग्रवाल

उत्तर भारत मे अग्रवाल जैन जाति अत्यधिक प्रसिद्ध, समृद्ध एव विशाल सख्या वाली जाति मानी जाती है। हरियाणा, राजस्थान उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, देहली जैसे प्रदेश अग्रवाल दिगम्बर जैनो के प्रमुख केन्द्र है। जैनधर्म, साहित्य एव सस्कृति के विकास मे अग्रवाल जैनो का प्रमुख योगदान रहा है। अग्रवाल जाति जैन एवं वैष्णव दोनो धर्मों मे बटी हुई है तथा उन दोनो मे सामाजिक सम्बन्ध भी प्रगाढ बने हुये है। लेकिन अग्रवाल जैन समाज धर्म और संस्कृति के परिपालन मे अन्य किसी जैन जाति से पीछे नही है। मन्दिर निर्माण करवाने, साहित्य को सरक्षण देने, साधु जीवन अपनाने अथवा उनकी सेवा सुश्रुषा मे, तीर्थों की रक्षा जैसे कार्यो मे वह सदैव आगे रही है।

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति अग्रोहा से मानी जाती है। 14वी शताब्दी में होने वाले सधारू कवि ने भी उक्त मन्तव्य का ही समर्थन किया है।[1] अग्रोहा हरियाणा प्रदेश के हिसार प्रान्त मे स्थित है। प्राचीन काल मे यह एक ऐतिहासिक नगर था। सन् 1939-40 मे जब यहाँ के एक टीले की खुदाई हुई तो उसमे ताम्बे के सिक्को पर अंकित कर्ण, गज, वृषभ, मीन, सिह, चैत्य वृक्ष आदि के जो चिह्न प्राप्त हुये है उनको जैन मान्यता की ओर स्पष्ट संकेत माना जाना चाहिये। सिक्कों के पीछे ब्राह्मी अक्षरों में अगोद के अगच जनपदस अंकित है जिसका अर्थ अग्रोदक में अगद जनपद का सिक्का होता है। अग्रोहे का नाम अग्रोदक भी रहा है। एपिग्रापिका इंडिया जिल्द 2 पृष्ठ 244 और इंडियन एन्टीक्वेरी भाग 15 पृष्ठ 343 पर अग्रोहक वैश्यों का वर्णन किया हुआ है। जनश्रुति के अनुसार अग्रोहा में अग्रसेन राजा राज्य करता था इसी से अग्रवाल जाति का उद्‌भव हुआ लेकिन इसके अभी तक कोई प्रमाण नही मिल सके है। कविवर बुलाखीचन्द ने अग्रवाल जाति की

---

1. **अगरवाल की मेरी जात, पुर अगरोए महि उतपाति (694)**
प्रद्युम्न चरित–रचनाकाल सं. 1411.

उत्पत्ति अगर ऋषि द्वारा मानी है ।[1] तथा लोहाचार्य द्वारा अग्रवालो को जैनधर्म में दीक्षित करना माना है। अग्रवालो के 18 गोत्र रहे है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

1. गर्ग, गोयल, सिंघल, मु'गिल, तायल, तरल, कंमल, वछिल, एरन, ढालरण, चिन्तल, मित्तल, हिवल, किंधल, हरहरा, कछिल, पुखन्या ।

2. भट्टारक पट्टावली के अनुसार वि. स. 565 मे मुनि रत्नकीर्ति हुये जो अग्रवाल जाति के थे । देहली के तोमर वशीय शासक अनगपाल के शासन काल मे रचित पासणाहचरिउ के कवि श्रीधर स्वय अग्रवाल जेन थे तथा अपने लिये "अयरवाल कुल समवेन" लिखा है । पासणाहचरिउको लिखा ने वाले नट्टलसाहु स्वय जैन अग्रवाल थे । अलीगढ़ प्रदेश के निवासी साहू पारस के पुत्र टोडर अग्रवाल ने मथुरा मे 514 स्तूपो का निर्माण करवाकर प्रतिष्ठा करवाई थी । साहू पाँडे राजकमल ने सवत् 1642 मे जम्बूस्वामी चरित का निर्माण किया था । अपभ्रंश के महान् कवि रइधू के आश्रय दाता एव ग्रंथ निर्माता अधिकाश अग्रवाल श्रावक थे । आदित्यवार कथा के रचयिता भाउ कवि स्वयं अग्रवाल जैन थे । राजस्थान के जैन ग्रथ भण्डारो मे अग्रवाल श्रावकों द्वारा लिखवायी हुई हजारो पाण्डुलिपियाँ सग्रहित है ।

मन्दिरो एव मूर्तियों के निर्माण मे भी अग्रवाल जैन समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान है । ग्वालियर किले की अनेक सुन्दर मूर्तियो का निर्माण अग्रवाल जैनों ने कराया था । दिल्ली के राजा हरसुखराय सुगनचन्द ने देहली मे अनेक जिन मन्दिरो का निर्माण कराया था । इस प्रकार अग्रवाल जैन समाज दिगम्बर जैन समाज का प्रमुख अग है जो वर्तमान मे देश के प्रत्येक भाग मे बसा हुआ है । देश में अग्रवाल जैन समाज की 10 लाख से भी अधिक सख्या मानी जाती है।

2. परवार

दिगम्बर जैन परवार समाज का प्रमुख केन्द्र मध्यप्रदेश के सागर, जबलपुर, ललितपुर जिले माने जाते है। इस समाज के श्रावक एव श्राविकाये धर्मनिष्ठ, आचार-व्यवहार मे दृढ देखी जाती है तथा ये प्राचीन परम्परा के अनुयायी है। परवार जाति का उल्लेख पौरपट्टान्वय के रूप मे मूर्तिलेखो एव प्रशस्तियो मे मिलता है । लेकिन इस जाति के उत्पत्ति स्थान के सम्बन्ध मे अभी तक कोई निश्चित ग्राम/ नगर का नाम नही मिलता । पट्टावलियो मे परवार जाति का उल्लेख विक्रम संवत् 26 से मिलता है और मुनि गुप्तिगुप्त इस जाति मे उत्पन्न हुये थे ऐसा भी उल्लेख

1. कविवर बुलाखीचन्द, बुलाखीदास एवं हेमराज–पृष्ठ स. 107

उक्त पट्टावली में मिलता है। इसके पश्चात् सं. 40 में। सं. 765 में होने वाले पट्टाधीश एव सं. 1256, 1264 आचार्य भी परवार जाति मे उत्पन्न हुये थे।[1]

पं. फूलचन्द शास्त्री के मतानुसार परवार जाति को प्राचीन काल में प्रग्वाट नाम मे अभिहित किया जाता रहा है। लेकिन ब्रह्म जिनदास ने "चौरासी जाति जयमाल" मे पोरवाड़ शब्द से परवार जाति का उल्लेख किया है। अपभ्रंश ग्रन्थों मे परवार को पुरवाडा शब्द से अभिहित किया गया है। महाकवि धनपाल का बाहुबलि चरिउ, रइधू कवि का श्रीपाल सिद्धचक्र चरिउ, आचार्य श्रुतकीर्ति का हरिवंशपुराण एव प. श्रीधर का सुकुमाल चरिउ की ग्रन्थ प्रशस्तियो मे पुरवाड शब्द का ही प्रयोग किया गया है। लेकिन श्रावको की 72 जातियो वाली एक पाण्डुलिपि मे अष्टसखा पोरवाड, दुसखा पोरवाड, चोसखा पोरवाड, जांगडा पोरवाड पद्मावती परवार सोरठिया पोरवाड नामो के साथ परवार नाम को भी गिनाया है। ऐसा लगता है कि परवार जाति भेद एव प्रभेदो मे इतनी बट गई थी कि इनमे परस्पर मे रोटी व्यवहार एवं बेटी व्यवहार भी बन्द हो गया था। चौसखा समाज वर्तमान मे तारणपंथी समाज के नाम से जाना जाता है। कविवर बखतराम साह ने अपने बुद्धि विलास मे परवार जाति के सात खापो का उल्लेख किया है।[2]

पौरपट्ट अन्वय मे जो 12 गौत्र सुप्रसिद्ध है उनके नाम निम्न प्रकार है— गोइल्ल, वाछल्ल, ड्याडिम्म, वाभल्ल, कासिल्ल, कोइल्ल, लोइच्छ, कोछल्ल, मारिल्ल, माडिल्ल, गोहिल्ल और फागुल्ल। प्रत्येक गोत्र के अन्तर्गत 12 : 12 मूल गिनाये गये है जो सम्भवत· ग्रामो के नाम पर बने हुये है।

परवार जाति मे अनेक विद्वान एव भट्टारक हो गये है। संवत् 1371 मे कवि देल्ह ने चौबीसी गीत लिखा था। कवि का जन्म परवार जाति में हुआ था। 13वी शताब्दी मे पौरपट्टान्वयी महिचन्द साधु की प्रेरणा मे महा पं. आशाधर ने सागार धर्मामृत ग्रन्थ एवं उसकी टीका लिखी थी।

इस जाति के विस्तृत इतिहास लेखन की आवश्यकता है। देश मे परवार जाति मुख्यतः मध्य प्रदेश में मिलती है। जबलपुर, सागर, ललितपुर, कटनी, सिवनी आदि नगरो में बहु-संख्या मे मिलते है। सारे देश मे परवार जाति की संख्या 5–6 लाख से अधिक होगी।

---

1. देखिये पं. फूलचन्द शास्त्री अभिनन्दन ग्रंथ
2. सात खांप परवार कहायं, तिनके तुमको नाम सुनावं ।।686।।
   अठखा फुनि है चौसखा, सेहरदा फुनि है दो सखा।
   सोराठिया अरु गांगड जानौ, पद्मावत्यो सप्तमा मानो ।।687।।

3. बघेरवाल

बघेरवाल जाति राजस्थान की एक प्रमुख दिगम्बर जैन जाति है। प्रदेश के कोटा, बूंदी एवं टौंक जिले बघेरवाल समाज के प्रमुख केन्द्र है। राजस्थान के अतिरिक्त महाराष्ट्र मे भी बघेरवाल जाति अच्छी संख्या मे मिलती है। बघेरवाल जाति की उत्पत्ति संवत् 10। मे टोंक जिले के बघेरा गाव से मानी जाती है। कृष्णदत्त संवत् 1746 मे रचित बघेरवालरास मे उक्त मत की पुष्टि की है—

आदि बघेरे ऊपनो निश्चल उत्पत्ति नाम।
बड कुल जस तिरण बरणीए, बघेरवाल वरियाम ।।7।।

बघेरा राजस्थान मे केकड़ी से लगभग 16 कि० मी० दूरी पर स्थित है। वर्तमान मे वहां बघेरवालो का एक भी परिवार नहीं रहता। लेकिन बघेरवाल बन्धु अपनी पैतृक भूमि के दर्शन करन जब कभी अवश्य आते रहते है। यहा दो दिगम्बर जैन मन्दिर है जिनमे शातिनाथ स्वामी के मन्दिर मे 11वी मे 13वी शताब्दी की अनेक जिन प्रतिमाये है जिनमे शातिनाथ की मूर्ति अत्यधिक मनोहर, प्राचीन एवं कलापूर्ण है। यहा खुदाई मे अनेक मूर्तिया प्राप्त होती रहती है जिससे पता चलता है कि बघेरा कभी वैभवशाली विशाल नगर था तथा दिगम्बर जैन समाज यहा अच्छी सख्या मे रहता था। शातिनाथ स्वामी का मन्दिर अतिशय क्षेत्र के रूप में विख्यात है जिनके दर्शनार्थ जैन, अजैन सभी आते है। शातिनाथ स्वामी की प्रतिमा लगभग 9 फीट ऊँची है जो भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। जिसके लेख से पता चलता है कि सवत् 1254 मे इसकी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी। इस मन्दिर के निर्माण का बिजौलिया के शिलालेख मे उल्लेख आता है कि प्राग्वाट वश के वैश्रवण श्रेष्ठि ने व्याघेरक आदि स्थानो मे मन्दिरो का निर्माण करवाया था। यह शिलालेख संवत् 1226 का है। शिलालेख के अनुसार वैश्रवण श्रेष्ठि कोणार्क से 8 पीढी पूर्व हुआ था। यदि 25 वर्ष की एक पीढी मानी जावे तो वैश्रवण श्रेष्ठि 10वीं शताब्दी मे होना चाहिये और उसी समय बघेरा मे मन्दिर का निर्माण होना चाहिये। बघेरा ग्राम मे जितनी भी मूर्तिया निकली है वे सभी 12वी शताब्दी की है।[1]

बघेरवाल जाति के 52 गोत्र माने गये है जिनका वर्णन भी उक्त रास मे किया गया है।

बावन गोत उद्योतवर, अवनि हुआ अवतार।
विवधि तास जस विस्तरों, ए करणी अधिकार ।।8।।

---

1. त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र।

इन गोत्रों के नाम निम्न प्रकार हैं—

खडवड़, लाम्बावांस, साखूण्या, धानोत्या, समधरा, वावर्‌या, सीघड़तोड़, बागट्या, हरसोरा, साहुला, कोरिया, भंडार्‌या, कटार्‌या, बनावड्या, ठौल्या, पगास्या, बोरखड़्या, दीवड्या, बडमूडी, तातहडस्या, मंडाया, बदलचढ, पीतल्या, दगोर्‌या, भूरया, दहलोडा, निठाणीवाल, मथुर्‌या, जोग्या, अर्भपुर्‌या, निगोत्या, कावरिया, टाहिया, कुचाल्या, माहुलिया, मुहीवाल, साखूण्या, सरवाड्या, पापल्या, डूगरवाल, ठग, वहरिसा, सेठिया, चमार्‌या, सांभर्‌या, सुरलाया, घोटापा, सीलौर्‌या, मवुण्या, गवाल, केतगुया, खरड्या ।

बघेरवालो के ठोल्या, साखूण्या, पीतल्या, निगोत्या, पापल्या, कटार्‌या जैसे गोत्र खण्डेलवाल जैनो के गोत्रो से मिलते जुलते हैं ।

इन गोत्रो में 25 गोत्र काष्ठासंघ के एवं शेष 27 गोत्र मूलसंघी माने जाते है । चित्तौड किले पर जैन कीर्ति स्तम्भ साह जीजा द्वारा बनवाया गया था । ये बघेरवाल जाति के श्रावक थे । नैनवा, कोटा, बूंदी में बघेरवालों के विशाल मन्दिर बने हुये है । चादखेडी क्षेत्र की स्थापना, मन्दिर का निर्माण एवं संवत् 1746 मे विशाल पच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव किशनदास बघेरवाल द्वारा किया गया था । महापण्डित आशाधर बघेरवाल जाति के भूषण थे । देश में बघेरवालों की संख्या 1 लाख से ऊपर गिनी जाती है ।

4. जैसवाल

17वी शताब्दी के कवि बुलाखीचन्द जैसवाल जाति के थे । उन्होंने अपने वचन कोश (सवत् 1737) में जैसवाल जाति की उत्पत्ति जैसलमेर नगर से मानी है ।[1] यह जाति भगवान महावीर के उपदेश से जैन धर्म में दीक्षित हुई । जैसवाल दो उपजातियों मे विभक्त हैं—एक तिरोतिया एवं दूसरा उपरोतिया । उपरोतिया जैसवाल काष्ठासंघी एव तिरोतिया मूलसंघी जैन धर्मावलम्बी है । उपरोतया शाखा के 36 गोत्र एवं तिरोतिया शाखा के 46 गोत्र हैं । (उपरोतिया गोत्र छत्तीस, तिरोतिया गनि छहयालीस) जैसवाल इक्ष्वाकु कुल के क्षत्रिय थे जो वैश्य कुल में परिवर्तित हो गये थे ।[2]

जैसवाल जाति मे अनेक राजा, राजश्रेष्ठी, महामात्य और राजमान्य महापुरुष हो गये है । सवत् 1190 मे जैसवाल वंशी साहू नेमिचन्द ने कवि श्रीधर से वर्धमान चरित की रचना कराई थी । जैसवाल कवि माणिक्यराज ने अमरसेन

1. **विस्तृत वर्णन के लिए देखिए–कविवर बुलाकीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज, पृष्ठ सख्या, 108–114 ।**
2. **जैसवाल इक्ष्वाकु कुल तिनि को सुना प्रबन्ध ।**

चरित एव नागकुमार चरित की रचना की थी । तोमर वंशी राजा वीरमदेव के महामात्य जैसवाल कुशराज ने ग्वालियर मे चन्द्रप्रभ का मन्दिर बनवाया था। सवत् 1475 में एक यन्त्र की प्रतिष्ठा करवाई थी जो आजकल नरवर के मन्दिर में विराजमान है। जैसवाल कुलोत्पन्न कविवर लक्ष्मणदेव ने संवत् 1275 मे जिणयत्त चरिउ की रचना की थी । संवत् 1354 मे जैसवाल कुलोत्पन्न देल्ह कवि ने जिनदत्त चरित की रचना समाप्त की थी ।[1]

जैसवाल जैन समाज के आगरा, ग्वालियर, फिरोजाबाद, झालावाड आदि नगर प्रमुख केन्द्र माने जाते है । देश में जैसवाल जैन समाज की सख्या एक लाख से अधिक होगी । जैसवाल जैन समाज का विस्तृत इतिहास इसी 31 मार्च, 1988 को श्री रणजीत जैन एडवोकेट ने लिख कर प्रकाशित कराया है ।[2]

5. पल्लीवाल

पल्लीवाल प्रारम्भ मे दिगम्बर जैन जाति थी लेकिन विगत 300-400 वर्षों से इस जाति मे कुछ परिवार श्वेताम्बर धर्म मानने वाले भी हो गये । लेकिन वर्तमान मे भी यह जाति मुख्यत. दिगम्बर धर्मानुयायी ही है । खडेला से खडेलवाल, अग्रोटा से अग्रवाल, जाति के समान पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति राजस्थान के पाली नगर से मानी जाती थी लेकिन डा. अनिलकुमार जैन ने नयी खोज के आधार पर यह सिद्ध किया है कि पल्लीवाल जाति दक्षिण भारत के पल्ली नगर मे हुई थी। उनके अनुसार यदि पाली नगर मे पल्लीवाल जाति का उद्भव हुआ होता तो यह जाति पल्लीवाल के स्थान पर पालीवाल कहलाती । क्योंकि आ के स्थान अ के प्रयोग का कोई औचित्य प्रतीत नही होता। आचार्य कुन्दकुन्द भी पल्लीवाल जाति में उत्पन्न हुये थे ऐसा पट्टावलियो मे उल्लेख मिलता है ।

फिरोजाबाद के निकट चन्द्रवाड़ नामक नगर था जिसकी स्थापना सवत् 1052 में चन्द्रपाल नामक जैन राजा की स्मृति मे करवाई गई थी । चन्द्रवाड़ म 13वी शताब्दी से लेकर 16वी शताब्दी तक चौहानवशी राजाओं का राज्य रहा । इन राजाओ के अधिकाश मन्त्री पल्लीवाल जैन थे ।

पल्लीवाल जाति मे कुछ कवि भी हुये है जिनमे बजरगलाल दौलतराम आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

वर्तमान मे पल्लीवाल आगरा, फिरोजाबाद, कन्नोज, अलीगढ क्षेत्र एव ग्वालियर, उज्जैन आदि नगरो मे मिलते हैं । आगरा क्षेत्र के पल्लीवालों के गोत्रो एव कन्नोज,

---

1. जिणदत्त चरित–सम्पादक डा. माताप्रसाद गुप्त
2. जैसवाल जैन इतिहास–रणजीत जैन एडवोकेट, प्रकाशन जैसवाल जैन समाज, लश्कर

अलीगढ फिरोजाबाद के पल्लीवालों के गोत्रों में थोड़ा अन्तर है। मुरैना तथा ग्वालियर क्षेत्र के पल्लीवालों के 35 गौत्र हैं। जबकि नागपुर क्षेत्र के पल्लीवालों के 12 गोत्र ही हैं।

6. नरसिंहपुरा

नरसिंहपुरा जाति के प्रमुख केन्द्र हैं राजस्थान में मेवाड़ एवं बागड़ा प्रदेश। वैसे इस जाति की उत्पत्ति भी मेवाड प्रदेश का नरसिंहपुरा नगर से मानी जाती है। इसी नगर मे भाहड श्रावक सेठ रहते थे जो श्रावक धर्म पालन करते थे। भट्टारक रामसेन ने सभी क्षत्रियो को जैनागम में दीक्षित किया तथा नरसिंहपुरा जाति का का उद्‌भव किया।[1] इस जाति की उत्पत्ति संवत् 102 में मानी जाती है तथा यह जाति के 27 गोत्रों में विभाजित है।

प्रतापगढ मे नरसिंहपुरा जाति के भट्टारकों की गादी थी। भट्टारक रामसेन के पश्चात् विजयसेन, यश.कीर्ति, उदयसेन, त्रिभुवनकीर्ति, रत्नभूषण, जयकीर्ति आदि भट्टारक हुये। ये सभी भट्टारक तपस्वी एव साहित्य प्रेमी थे। प्रदेश मे विहार करते हुये समाज मे धार्मिक क्रियाओ को सम्पादित कराया करते थे। काष्ठासंघ नदीतट गच्छ विद्यागण नरसिंहपुरा लघु शाखा आम्नाय में सूरत आदि के भट्टारकों की संख्या 110 मानी जाती है। अन्तिम भट्टारक यशःकीर्ति थे। यह जाति भी दस्सा बीसा उप जातियो मे विभक्त है। सिंहपुरा जाति भी एक दिगम्बर जाति थी जो संवत् 1404 मे नरसिंहपुरा जाति में विलीन हो गई।[2]

7. ओसवाल

ओसवाल दिगम्बर समाज की भी एक जाति रही है। ओसवाल जाति का उद्गम स्थान ओसिया से माना जाता है। ओसवालों मे दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनो ही धर्मो को मानने वाले पाये जाते हैं। मुलतान से आये हुये मुलतानी ओसवालों मे अधिकांश दिगम्बर धर्म को मानने वाले हैं। मुलतानी ओसवाल वर्तमान समय में जयपुर एव दिल्ली में बसे हुये है जिनकी घरो की संख्या करीब 400 होगी। ऐसा लगता है कि ओसिया से जब ओसवाल जाति देश के विभिन्न भागों में कमाने-खाने के लिये निकली तथा पजाब की ओर बसने के लिये आगे बढ़ी तो उसमें दिगम्बर धर्मानुयायी भी थे। उनमे से अधिकांश मुलतान डेरागाजी खान लैय्या

---

1. तत्पट्टमडने दक्षो, ज्ञान-विज्ञान-भूषितः।
   रामसेनोऽति विदितः प्रतिबोधन पंडितः।
   स्थापिता येन सज्जाति नगरसिंहाभिधा भुविः॥
2. माणिकचन्द ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या 55

एवं उत्तरी पंजाब के अन्य नगरों में बस गये और वही व्यापार करने लगे। ओसवाल दिगम्बर समाज अत्यधिक समृद्ध एव धर्म के प्रति दृढ़ आस्था वाली जाति है।

दिगम्बर जैन ओसवाल जाति मे वर्धमान नवलखा, अमोलका बाई, लुहिन्दामल, दौलतराम ओसवाल जैसे अनेक विद्वान एवं श्रेष्ठीगण हुये है।[1]

8. लमेचू

यह भी 84 जातियो मे एक जाति है जो मूर्ति लेखो और ग्रंथ प्रशस्तियो में "लम्ब कंचुकान्वय" के नाम से प्रसिद्ध है। मूर्ति लेखो में लम्बकंचुकान्वय के साथ यदुवशी लिखा हुआ मिलता है। जिसमे यह एक क्षत्रीय जाति ज्ञात होती है। इस जाति का विकास किसी लम्बकाचन नामक नगर से हुआ जान पडता है। इसमे खरिया, रावत, ककौआ और पचोले गोत्रो का भी उल्लेख मिलता है। इस जाति में अनेक प्रतिष्ठित और परोपकारी पुरुष हुये हैं। जिन्होने जिन मन्दिरो और मूर्तियो का निर्माण कराया है, अनेक ग्रथ लिखवाये है। इनमे बुढले और लमूचू ये दो भेद पाये जाते हैं, जो प्राचीन नही है। बाबू कामताप्रसाद जी ने "प्रतिमा लेख संग्रह" मे लिखा है कि "बुढेले लंबेचू अथवा लम्बकंचुक जाति का एक गोत्र था, किन्तु किसी सामाजिक अनबन के कारण सं. 1590 और 1670 के मध्य किसी समय यह पृथक् जाति बन गई।" बुढेले जाति के साथ रावत संघई आदि गोत्रो का उल्लेख मिलता है। इससे प्रकट है कि इस गौत्र के साथ अन्य लोग भी लबेचुओ से अलग होकर एक अन्य जाति बनाकर बैठ गये। इन जातियो के इतिवृत्त के लिये अन्वेषण की आवश्यकता है। चन्द्रवाड के चौहान वशी राजा आहवमल के राज्य काल मे लबकचुक कुल के मणि साहू सेठ के द्वितीय पुत्र जो मल्हादेवी की कुक्षी से जन्मे थे, बड़े बुद्धिमान और राजनीति में दक्ष थे। इनका नाम कण्ह या कृष्णादित्य था, आहवमल प्रधानमंत्री थे। जो बडे धर्मात्मा थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम "सुलक्षणा" था जो उदार धर्मात्मा पतिभक्त और रूपवती थी। इनके दो पुत्र थे। हरिदेव और द्विजराज। इन्ही कण्ह की प्रार्थना से कवि लक्ष्मण ने वि. स. 1313 मे अणुवय रयम-पईव नाम का ग्रन्थ बनाया था।

कवि धनपाल ने अपने "बाहुबलि चरित" की प्रशस्ति में चन्द्रवाड मे चौहानवशी राजा अभयचन्द्र के और उनके पुत्र जयचन्द के राज्यकाल मे लम्बकचुक वश के साहू सोमदेव मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित थे और उनके द्वितीय पुत्र रामचन्द्र के समय सोमदेव के पुत्र वासाधर राज्य के मन्त्री थे, जो सम्यक्त्वी जिन चरणो के

---

1. नोटः—विस्तृत जानकारी के लिये देखिये—"मुलतान जैन समाज—इतिहास के आलोक में"—लेखक एवं सम्पादक डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल।

भक्त, जैन धर्म के पालन में तत्पर, दयालु, मिथ्यात्व रहित, बहुलोक मित्र और शुद्ध चित्त के धारक थे। इनके आठ पुत्र थे। जसपाल, रतपाल, चन्द्रपाल, विहराज, पुष्पपाल, बाहड़ और रूपदेव। ये आठो ही पुत्र अपने पिता के समान धर्मज्ञ और सुयोग्य थे। भ० प्रभाचन्द्र ने सम्वत् 1454 मे वासाधर की प्रेरणा से बाहुबलि चरित की रचना की थी। इन्होंने चन्द्रवाड़ मे एक मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा की थी। इन सब उल्लेखो से स्पष्ट है कि लम्बकंचुक आम्नायी भी अच्छे सम्पन्न और राज मान्य रहे है। वर्तमान मे भी वे अच्छे धनी और प्रतिष्ठित है।

9. हुंबड या हूमड

यह जाति भी उन चौरासी जातियो मे से एक है। यह जाति विनयसेन आचार्य के शिष्य कुमारसेन द्वारा सवत् 800 के अनुमानतः बागड देश मे स्थापित की गई थी। यह जाति सम्पन्न और वैभवशालिनी रही है। इस जाति का निवास स्थान गुजरात, बम्बई प्रान्त और बागड प्रान्त मे रहा है। यह दस्सा और बीसा दो भागो मे बटी हुई है। इस जाति मे उत्पन्न श्रावक अनेक राज्य मन्त्री और कोषाध्यक्ष आदि सम्माननीय पदो पर प्रतिष्ठित रहे है। इनके द्वारा निर्मित अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ पाई जाती है। ग्रन्थ निर्माण मे भी यह प्रेरक रहे है। इनके द्वारा लिखाये हुये ग्रन्थ अनेक शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होते है। वर्तमान मे भी वे समृद्ध देखे जाते है। इनमे 18 गौत्र प्रचलित है। खैरजू, कमलेश्वर, काकड़ेश्वर, उत्तरेश्वर, मन्त्रेश्वर, भीमेश्वर, भद्रेश्वर, गणेश्वर, विश्वेश्वर, संखेश्वर, आम्बेश्वर, वाचनेश्वर, सोमेश्वर, राजियानो, ललितेश्वर, काश्वेश्वर, बुद्धेश्वर और सघेश्वर। इसके अतिरिक्त इस जाति के द्वारा निर्मित मन्दिरो मे सबसे प्राचीन मन्दिर झालरापाटन मे शान्तिनाथ स्वामी का है। जिसकी प्रतिष्ठा हूमडवशी शाह पीपा ने वि० स० 1103 मे करवाई थी। इस जाति मे अनेक विद्वान भट्टारक भी हुये है।

भट्टारक सकलकीर्ति और ब्रह्मजिनदास इसी जाति के भूषण थे, जिनकी परम्परा 2–3 सौ वर्षों तक चली। इस जाति मे जैन धर्म परम्परा का बराबर पालन होता रहा है। वर्तमान मे हूंमड समाज की जनसंख्या 2–3 लाख होगी। बम्बई, उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, सागवाड़ा जैसे नगर इस समाज के प्रमुख केन्द्र हैं।

10. गोलापूर्व

जैन समाज की 84 जातियों में गोलापूर्व भी एक सम्पन्न जाति रही है। इस जाति का वर्तमान मे अधिकतर निवास बुन्देलखण्ड में पाया जाता है। साथ ही सागर जिला, दमोह, छतरपुर, पन्ना, सतना, रीवा, आहार, जबलपुर, शिवपुरी और ग्वालियर के आस-पास के स्थानो में निवास रहा है, 12वी और 13वीं शताब्दी के

मूर्ति लेखों से इसकी समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है । इस जाति का निवास गोल्लागढ़ (गोलाकोट) की पूर्व दिशा से हुआ है । उसकी पूर्व दिशा मे रहने वाले गोलापूर्व कहलाते है । यह जाति किसी समय इक्ष्वाकु, वशी क्षत्रीय थी किन्तु व्यापार आदि करने के कारण वणिक समाज मे इसकी गणना होने लगी । मूर्ति लेखो और मन्दिरों की विशालता से गोलापूर्वान्वय गौरवान्वित है । वर्तमान मे भी इस जाति द्वारा निर्मित अनेक शिखरबन्द मन्दिर शोभा बढा रहे है ।

11. गोलालारे

गोलागढ़ ग्वालियर/गोपाचल का ही दूसरा नाम है । इसके समीप रहने वाले गोलालारे कहलाते है । यह उपजाति यद्यपि सख्या मे अल्प रही है, परन्तु फिर भी धार्मिक दृष्टि से बडी कट्टर रही है । इस जाति के द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ देखने मे आती हैं । अनेक विद्वान तथा लक्ष्मी पुत्र भी इसमे होते रहे है और आज भी उनकी अच्छी सख्या है । इसके निकास का स्थान गोलागढ है ।

इनके गोत्रो की सख्या कितनी और उनके क्या-क्या नाम है । इसके बारे मे पूरी जानकारी नही मिलती ।

12. गोलसिंघारे (गोल शृगार)

गोलागढ मे सामूहिक रूप से निवास करने वाले श्रावकगण गोलसिगारे कहे जाते है । शृगार का अर्थ यहा भूषण है जिसका अर्थ हुआ गोलागढ के भूषण । इस जाति का कोई विशेष इतिहास नहीं मिलता । 17वी शताब्दी के कितने ही ग्र थ प्रशस्तियो मे इस जाति के श्रावको का उल्लेख मिलता है । पर सिघारे का अर्थ सहज अभिप्राय को व्यक्त करता है । इसके उदय अभ्युदय और ह्रास आदि का विशेष इतिवृत्त ज्ञात नही हो सका और न इसके ग्रन्थकर्ता विद्वान कवियो का ही परिचय ज्ञात हो सका । कुछ मूर्ति लेख हमारे देखने मे अवश्य आये है । एक यंत्र लेख अवश्य मिला जो सवत् 1754 का है, उसमे उसके "जयसवाल" गोत्र का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है । जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि उपजाति मे भी गोत्रो की मान्यता है । सम्भवत लम्बकचुक, गोलाराडान्वय और गोलसिगारान्वय मे तीनो गोला-कारीय जातीय के अभिसूचक है ।

13. पद्मावती पोरवाल

इस जाति को परवार जाति का ही एक अग माना जाता है जिसका समर्थन बख्तराम साह के बुद्धि विलास मे होता है । इस उपजाति का निकास "पोमावइ" (पद्मावती) नाम की नगरी से हुआ है । यह नगरी पूर्वकाल मे अत्यन्त समृद्ध थी । इसकी समृद्धि का उल्लेख खजुराहो के सवत 1052 के शिलालेख मे पाया जाता है । इस नगरी मे गगनचुम्बी अनेक विशाल भवन बने हुये थे । यह नाग राजाओ की राजधानी थी । इसकी खुदाई मे अनेक नाग राजाओ के सिक्के

आदि प्राप्त हुये है । इस जाति मे अनेक विद्वान्, त्यागी, ब्रह्मचारी और साधु पुरुष हुये है और वर्तमान मे भी उनके धार्मिक, श्रद्धावान एवं व्रतों के परिपालन में दृढता देखी जाती है । महाकवि रइधू इस जाति में उत्पन्न हुये थे । कविवर छत्रपति एवं ब्रह्मगुलाल भी इसी जाति के अंग थे । इनके द्वारा अनेक मन्दिर और मूर्तियो का निर्माण भी हुआ है ।

14. चित्तोड़ा

दिगम्बर जैन चित्तौड़ा समाज राजस्थान के मेवाड प्रदेश मे अधिक संख्या में निवास करता है । अकेले उदयपुर मे इस समाज के 100 से भी अधिक घर है । यद्यपि चित्तौडा जाति का उद्गम स्वय चित्तौड नगर है लेकिन वर्तमान मे वहाँ इस समाज का एक भी घर नही है । चित्तौडा समाज भी दस्सा एव बीसा मे बटी हुई है । समाज मे गोत्रो का अस्तित्व है । विवाह के अवसर पर केवल स्वय का गोत्र ही टाला जाता है । सारे देश मे चित्तौडा समाज की जनसंख्या 50 हजार के करीब होगी ।

15. नागदा

डूगरपुर में ऊँडा मन्दिर नागदों एव हूवडो दोनो का कहलाता है । नागदा समाज का मुख्य केन्द्र राजस्थान का बागड एव मेवाड प्रदेश है । यह समाज भी दस्सा एव बीसा मे बंटी हुई है । उदयपुर में सम्भवनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर नागदा समाज द्वारा निर्मित है । नागदा समाज के उदयपुर मे ही 150–200 परिवार रहते है । सलुम्बर मे भी इस समाज के 150 से अधिक घर है । यह पूरा समाज अपनी प्राचीन परम्पराओ से बधा हुआ है । यहाँ पर भी एक मन्दिर इसी जाति का है जिसमे 15वी एवं 16वीं शताब्दी मे प्रतिष्ठित प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान है ।

16. वरैय्या

वरैय्या जाति भी 84 जातियो मे एक उल्लेखनीय जाति है है । इस जाति का मुख्य केन्द्र ग्वालियर, इन्दौर जैसे नगर है । ग्वालियर मे 250 से अधिक परिवार रहते है । पं० गोपालदास जी वरैय्या इस जाति मे उत्पन्न हुये थे । वे अपने समय के सबसे सम्मानित पण्डित थे । ग्वालियर मे इस समाज के कई मन्दिर है । प्राचीन 84 जातियो की नामावली मे इस जाति का उल्लेख नही मिलता । ब्र. जिनदास, बख्तराम एवं विनोदीलाल ने भी 84 जातियों मे इस जाति का उल्लेख नही किया । ऐसा लगता है पहिले यह जाति किसी दूसरी जाति का ही एक अंग थी । लेकिन कालान्तर में इसने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम कर दिया । वरैय्या समाज का

एक इतिहास श्री रणजीत जैन एडवोकेट लश्कर ने लिखा है । इस जाति की विस्तृत जानकारी के लिये उसे देखा जाना चाहिए ।

17-18. खरौआ-मिठौआ

खरौआ जाति पहिले गोलालारे जाति का ही एक अंग थी लेकिन कालान्तर में खरौवा जाति एक अलग जाति बन गई । मिठौआ भी इसी जाति में से निकली हुई एक जाति है । यह कहा जाता है कि नगर में कुवें का मीठा पानी होने से वह मिठौआ जाति कहलाने लगी ।

19. रायकवाल

रायकवाल जाति का उल्लेख 15वीं शताब्दी के विद्वान ब्रह्म जिनदास ने किया है । लेकिन सन् 1914 में प्रकाशित डिरेक्टरी में इस जाति की संख्या का कोई उल्लेख नहीं किया । लेकिन यह जाति पहिले गुजरात प्रान्त के सूरत जिले में पाई जाती थी । सूरत से 15 मील बारडोली में 200 वर्ष पहिले इस जाति के 200 घर थे । अब यह जाति और भी कम संख्या में सिमट गई है । वर्तमान में कारा तथा महुआ में कुछ परिवार मिलते हैं ।

20. मेवाड़ा

मेवाड प्रदेश से निकास होने के कारण यह जाति मेवाडा कहलाने लगी । मेवाड़ा जाति का सभी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है । यह जाति भी दस्सा बीसा में बटी हुई है । मेवाडा समाज सबसे अधिक महाराष्ट्र में मिलती है । यह जाति काष्ठासघी रही है । सूरत के मन्दिर में शीतलनाथ स्वामी की सम्वत् 1892 में प्रतिष्ठित प्रतिमा है जो मेवाडा जाति की लघु शाखा के सनाथा विशनदास आदि श्रावकों को भट्टारक विजय कीर्ति के सानिध्य में प्रतिष्ठित करायी गयी थी । सन् 1914 की जनगणना में इस जाति की संख्या 2160 थी ।

21. चरनागरे

यह भी 84 जातियों में से एक जाति है । मध्य प्रदेश में चरनागरे समाज प्रमुख रूप में निवास करता है । सन् 1914 की जनगणना में इस समाज की जन-संख्या 1987 थी ।

22. कठनेरा

यह भी 84 जातियों में एक छोटी जाति है । कठनेरा समाज की जनसंख्या सन् 1914 में केवल 711 थी जो अब कितनी हो गयी होगी इसका अनुमान लगाना कठिन है । फिर भी यह जीवित जाति है ।

23. श्रीमाल

यह जाति भी दिगम्बर समाज की जीवित जाति मानी जाती है । श्रीमाल यद्यपि दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में मिलते है लेकिन अधिकांश जाति

दिगम्बर धर्म को मानने वाली है । राजस्थान मे दिगम्बर धर्मानुयायी श्रीमालों की अच्छी संख्या में परिवार है । जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के बहरे में सम्वत् 1394 की पार्श्वनाथ की प्रतिमा है जो श्रीमाल जातीय श्रावको द्वारा प्रतिष्ठित है । 18वी शताब्दी मे अखयराज श्रीमाल हिन्दी गद्य के अच्छे विद्वान हो गये है जिन्होने चौदह गुणस्थान चर्चा लिखी थी—

चौदह गुणस्थानक कथन भाषा सुनि सुख होई ।
अखेराज श्रीमाल ने करी जथा मति जोह ।।

24. विनैक्या

यह जाति भी दिगम्बर जैन समाज का एक अग रही है लेकिन यह बिखरी हुई समाज है । जैन धर्म एव सस्कृति के रख-रखाव मे इस जाति का विशेष योगदान नहीं मिलता है ।

25. समैय्या

किसी भी इतिहासकार ने इस जाति का नामोल्लेख नही किया क्योकि यह परवार जाति का ही एक अंग थी लेकिन जब से तारण समाज की स्थापना हुई तथा मूर्ति पूजा के स्थान पर शास्त्र पूजा की जाने लगी तब से इस जाति का समैय्या नामकरण हो गया । यह जाति भी सागर जिले मे मुख्य रूप से मिलती है । सन् 1914 की जनसख्या मे समैय्या जाति की सख्या 1,107 थी लेकिन आज तारण पथियो की अच्छी सख्या होनी चाहिए । ससद मदस्य सागर के श्री डालचंद जी जैन समैय्या जाति के सदस्य है । प्रारम्भ मे तारण पथ का अवश्य विरोध हुआ होगा लेकिन वर्तमान मे तारण पंथी भी दिगम्बर जैन समाज के ही अंग है ।

26. गगेरवाल

गगेरवाल भी चौरासी जातियो मे एक जाति है । इसका गगेडा, गगेरवाल, गगरीक, गोगरज एव गगेरवाल आदि विभिन्न नामो से उल्लेख मिलता है । रविव्रत कथा प० ऋषभराय ने सम्वत् 1833 मे रविव्रत कथा की रचना की थी । वे स्वयं गंगेरवाल श्रावक थे ।

27–30. दक्षिण भारत की दिगम्बर जैन जातियाँ

दक्षिण भारत के महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु एवं कर्नाटक आदि प्रान्तों मे दिगम्बर जैनो की केवल चार जातियाँ है । पचम, चतुर्थ, कासार बोगार और सेतवाल । पहले ये चारों जातियाँ एक थी और पचम कहलाती थी । पचम यह नाम वर्णाश्रमी ब्राह्मणो का दिया हुआ जान पड़ता है । जैनधर्म वर्ण व्यवस्था का विरोधी था इसलिये उसके अनुयायियो को चातुवर्ण से बाहर पांचवे वर्ण का अर्थात् पंचम कहते थे लेकिन जब जैनधर्म का प्रभाव कम हुआ तो यह नाम रूढ हो गया और अन्ततः जैनों ने भी इसे स्वीकार कर लिया । दक्षिण मे जब वीर शैव

या लिंगायत सम्प्रदाय का उदय हुआ तो उसने इन पंचम जैनों को अपने धर्म में दीक्षित करना शुरू कर दिया और वे भी पंचम लिंगायत कहलाने लगे। 12वी शताब्दी तक सारे दक्षिणात्य जैन पंचम ही कहलाते थे। पहिले दक्षिण के तमाम जैनों में रोटी-बेटी व्यवहार होता था।

16वी शताब्दी के लगभग सभी भट्टारकों ने अपने प्रान्तीय अथवा प्रादेशिक संघ तोड़कर जातिगत सघ बनाये और उसी समय मठों के अनुयायियो को चतुर्थ, शेतवाल, बोगार अथवा कासार नाम प्राप्त हुये। साधारण तौर से खेती और जमींदारी करने वालो को चतुर्थ, कासे पीतल के बर्तन बनाने वालो को कामार या बोगार और केवल खेती तथा कपडे का व्यापार करने वालो को सेतवाल कहा जाता है। हिन्दी मे जिन्हे कसेरे या तमेरे कहते है वे ही दक्षिण मे कामार कहलाते है। पंचम मे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो वर्णों के धन्धे करने वालो के नाम समान रूप से मिलते है। जिनमेन मठ (कोल्हापुर) के अनुयायियो को छोडकर और किसी मठ के अनुयायी चतुर्थ नही कहलाते।

पचम, चतुर्थ, सेतवाल और बोगार या कामारो मे परस्पर रोटी व्यवहार होता हैं।

सन् 1914 मे प्रकाशित दिगम्बर जैन डाइरेक्टरी के अनुसार दिगम्बर जैन जातियो में सबसे अधिक सख्या चतुर्थ जाति की थी जो उस समय 69285 थी जिसके आधार पर वर्तमान मे इस जाति की सख्या 10 लाख मे कम नही होनी चाहिये। इसी तरह पचम जाति के श्रावको की संख्या 32559, सेतवालो की सख्या 20889, बोगारो की संख्या 2439 तथा कामारो की सख्या 9987 थी। यदि हम दक्षिण भारत की दिगम्बर जैन जातियो के श्रावको की ओर ध्यान दे तो हमे मालूम होगा कि इन जातियों की सख्या लाखो मे होगी किन्तु भाषा, रीति-रिवाज की भिन्नता के कारण उनमें सामजस्य स्थापित नही होता।

□□□

अध्याय 3

उद्‌भव की कहानी

खण्डेलवाल जैन समाज समस्त दिगम्बर जैन समाज का एक प्रमुख अंग है। इस समाज ने अपने उद्‌भव काल से लेकर आज तक धर्म, संस्कृति एव समाज की अभूतपूर्व सेवा की है इसलिए इस समाज का जितना अतीत उज्ज्वल है उतना ही वर्तमान शानदार है। उत्तर भारत मे खण्डेलवाल जैन समाज का सभी क्षेत्रो मे पूरा वर्चस्व रहा है। उसके लाडले सपूत समाज की सभी गतिविधियो में भाग लेते रहे हैं और उसी गौरव को आज भी बनाये हुये है।

खडेलवाल जैन समाज राजस्थान, मालवा, आसाम, बिहार, बंगाल, नागालैड, मणीपुर, उत्तरप्रदेश के कुछ जिलो एवं महाराष्ट्र मे बहुसंख्यक समाज रहा है और आज भी बम्बई, कलकत्ता, जयपुर, इन्दौर, अजमेर जैसे नगर उसके केन्द्र माने जाते हैं जहाँ खण्डेलवाल जैन समाज बहुसंख्यक समाज है। इस समाज में अनेक आचार्य, मुनि, भट्टारक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी हुये जिन्होने देश एवं समाज को प्रभावशाली मार्ग-दर्शन दिया। सैकडो हजारो मन्दिरो के निर्माणकर्त्ता, प्रतिष्ठाकारक, मूर्ति प्रतिष्ठा कराने वालो को उत्पन्न करने का इसी समाज को श्रेय है। इसी समाज में पचासो दीवान अथवा प्रमुख राज्य संचालक, उच्च पदस्थ राज्याधिकारी हुये जिन्होने सैकड़ों वर्षो तक जयपुर राज्य की अभूतपूर्व सेवा की एव युद्ध भूमि में विजय प्राप्त की। राजस्थान के सैकड़ों मन्दिर इसी समाज के द्वारा निर्मित है। अकेले जयपुर नगर मे 200 से अधिक मन्दिरो का निर्माण इस समाज की धार्मिक निष्ठा के प्रतीक है। सांगानेर, मोजमाबाद, टोडारायसिह, लाडनूं, सुजानगढ़, सीकर के मन्दिरो के उन्नत शिखरो की शोभा देखते ही बनती है।

इस समाज की धार्मिक आस्था तथा व्रत उपवास, पूजा एवं भक्ति आदि कार्यों मे रुचि से सारा दिगम्बर जैन समाज अनुप्राणित है। उसके प्रत्येक रीति-रिवाजों में श्रमण सस्कृति की झलक दिखाई देती है तथा उसका प्रत्येक सदस्य जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप मे अपने आपको प्रस्तुत करता है। सारे देश मे फैले हुए खण्डेलवाल जैन समाज संख्या की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है जो दस लाख के

करीब है अर्थात् पूरे दिगम्बर जैन समाज का पाचवा हिस्सा है। खण्डेलवाल जाति का नामकरण खण्डेला नगर के कारण हुआ। खण्डेला नगर राजस्थान के सीकर जिले में स्थित है जो सीकर से 45 कि० मी० दूर है। खण्डेला के इतिहास की अभी पूरी खोज नही हो सकी है लेकिन श्री हर्ष की पहाडी पर जो जैन अवशेष मिलते हैं उससे पता चलता है कि शैव पशुपतो का केन्द्र बनने के पहिले यह खण्डेला नगर जैनो का प्रमुख केन्द्र था। इसका पुराना नाम खडिल्लकपत्तन अथवा खण्डेलगिरि था। भगवान महावीर के 10वे गणधर मेदार्य ने खण्डिल्लकपत्तन मे आकर कठोर तपस्या की थी ऐसा उल्लेख आचार्य जयसेन ने अपने ग्रन्थ धर्मरत्नाकर की प्रशस्ति मे किया है आचार्य जयसेन 11वी शताब्दी के महान् सन्त थे अमृतचन्द्र एव सोमदेव बाद के आचार्य थे।

श्रीवर्धमाननाथस्य मेदार्यो दशमोऽजनि।
गणभृद्दशधा धर्मो यो मूर्तो वा व्यवस्थितः॥
मेदार्येण महर्षिभिर्विहरता, तेपे तपो दुश्चर।
श्रीखडिल्लकपत्तनान्ति करणाभ्यर्द्धिप्रभावात्तदा॥1॥

खण्डेला का पूरा क्षेत्र ही अत्यधिक प्राचीन क्षेत्र रहा है। यहाँ पर ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का जो लेख मिला है उसमे लिखा है कि मूला द्वारा किसी व्यक्ति की विषैले तीर से हत्या हुई थी जिसका स्मारक उसी के एक शिष्य महीम द्वारा स्थापित किया था।

खण्डेला का इतिहास

खण्डेला का राजनैतिक इतिहास अधिकाश रूप मे तो अन्धकारपूर्ण है। प्रारम्भ मे यहाँ निर्वाण चौहान राजाओ का राज्य रहा। हम्मीर महाकाव्य मे भी खण्डेला का नामोल्लेख हुआ है। महाराणा कुम्भा ने भी खण्डेला पर अपनी विशाल सेना को लेकर आक्रमण किया था तथा नगर की खूब लूट-खसौट की थी। सन् 1467 मे यहाँ उदयकरण का शासन था ऐसा वर्धमान चरित की प्रशस्ति मे उल्लेख मिलता है।

रायमल खण्डेला के प्रसिद्ध शासक रहे तथा जो अपने मन्त्री देवीदास के परामर्श से मुगल सेना मे भर्ती हुये और अपनी वीरता एव स्वामी भक्ति के सहारे मुगल बादशाह अकबर के कृपा पात्र बन गये और खण्डेला एव अन्य नगरो की जागीरी प्राप्त की। वे बराबर आगे बढते रहे। रायसल जी के समय मे ही खडेला चौहानो के हाथो मे से निकल कर शेखावतो के हाथो मे आया।

खण्डेला नगर का वैभव

विक्रम की प्रथम शताब्दी के आरम्भ मे जब महाराज खण्डेलगिरि खण्डेला के शासक थे तब खण्डेला नगर अपने पूर्ण वैभव पर था। नगर मे 900 जिन

मन्दिर थे। हजारों परिवार तो कोटिध्वज थे। नगर के शेष निवासियों के वैभव एवं समृद्धि का तो कहना ही क्या। उत्तर भारत मे खण्डेला जैनों का प्रधान केन्द्र था। लेकिन स्वयं महाराज खण्डेलगिरि जैन होते हुये भी शैव धर्म की ओर झुके हुए थे। उनके सभी मन्त्री एवं पुरोहित शैव थे और उनका यज्ञों में पूरा विश्वास था।

खण्डेला में महामारी रोग

इसी समय नगर में मलवाई का रोग फैलने लगा। महामारी से प्रजाजन मरने लगे। लोग नगर छोड़ कर भागने लगे। जब खण्डेलगिरि महाराजा को रोग के बारे में जानकारी मिली तो उन्होने तत्काल अपने मन्त्रियों एवं पण्डितो से परामर्श किया और रोग मुक्ति का कारण जानना चाहा। पण्डितों ने बहुत सोच-विचार कर कहा कि यदि यज्ञ मे जीवित व्यक्तियों को होम दिया जावे तो अवश्य ही रोग से शाति मिल सकती है। लेकिन महाराजा खण्डेलगिरि ने ऐसा जघन्य कार्य करने के लिए स्पष्ट मना कर दिया।

मुनि संघ का आगमन

इसी बीच नगर के बाहर एक मुनि संघ का आगमन हुआ। संघ में 500 मुनिराज थे। वे सभी नगर के बाहर एक उद्यान में ठहर गये और संध्या होते ही सब ध्यानस्थ हो गये। यज्ञ करने वाले पण्डितो को तो ऐसे ही अवसर की तलाश थी। वे रात्रि को उद्यान मे आये और चुपचाप कुछ मुनियों को उठा कर यज्ञ मे होम दिया। मुनियो ने कोई विरोध नहीं किया और अपने ऊपर आये हुये उपसर्ग को स्वीकार कर लिया। लेकिन इस कार्य से नगर में शांति के स्थान पर मलवायी (प्लेग) ने और भी जोर पकड लिया। चारों ओर हाहाकार मचने लगा और सबने अपने जीवन की आशा छोड़ दी।

आचार्य जिनसेन को खण्डेला भेजना

नरमेध यज्ञ के समाचार धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगे। आचार्य अपराजित मुनि अपर नाम यशोभद्राचार्य का संघ भी उन दिनों भाग नगर में ठहरा हुआ था। जब उनको मुनियों पर आये हुये उपसर्ग की जानकारी मिली तो उन्होने अपने पूरे संघ को एकत्रित किया और सबको खण्डेला में जैन मुनि संघ पर आये हुये उपसर्ग के बारे में जानकारी दी तथा वहाँ जाकर उपसर्ग दूर करने की बात कही। सभी साधुओं ने जैसा भी आदेश होगा वही किया जावेगा ऐसा अपना निवेदन किया। अन्त में सबकी सम्मति से यशोभद्राचार्य ने आचार्य जिनसेन को खण्डेला जाकर पापयुक्त कार्यों को समाप्त करने के लिए अपना आदेश दिया।

आचार्य जिनसेन का खण्डेला आगमन

आचार्य जिनसेन कुछ साधुओं के साथ खण्डेला आये तथा नगर के बाहर उद्यान में ठहर गये। उन्होंने नगर मे रहने वाले श्रावकों को बुलाया और कहा कि महामारी जैसे भयंकर रोग से बचने के लिए यही उपाय है कि सभी नगर निवासी नगर को खाली कर दें और नगर के बाहर एक गुढ़े (उपनगर) मे आकर रहें। सभी श्रावको ने आचार्य जिनसेन के आदेश को स्वीकार कर लिया। आचार्य जिनसेन चक्रेश्वरी देवी की आराधना करने मे लग गये और जब देवी प्रकट हुई तो आचार्य श्री ने उससे प्रार्थना की जो भी उपनगर मे आकर रहे है उनकी सब प्रकार से रक्षा करो। चक्रेश्वरी देवी ने प्रसन्न होकर आचार्य श्री की बात मानली और इससे वहाँ आकर रहने वाले सभी को महामारी रोग से मुक्ति मिल गयी। इसी बीच स्वयं महाराजा खण्डेलगिरि भी मलवाई रोग से ग्रसित होकर मरणासन्न हो गये। कितने ही उपाय किये गये लेकिन कुछ भी लाभ नही हुआ।

खण्डेलगिरि आचार्य जिनसेन की शरण में

महाराजा खण्डेलगिरि जब दिन प्रतिदिन महामारी रोग से उलझने लगे और बचने का कोई उपाय नही दिखायी दिया तो अन्त मे उन्हे भी उसी गुढे (उपनगर) मे ले गये जहां आचार्य जिनसेन श्रावको के साथ विराज रहे थे। खण्डेलगिरि ने आचार्य श्री को नमोस्तु किया और उनके चरणों के पास बैठ गये। आचार्य श्री ने राजा को धर्म वृद्धि का आशीर्वाद दिया और अपनी पिच्छिका को उसके सिर पर रख दी और मुस्कराने लगे।

खण्डेलगिरि—महाराज-मैं असाध्य रोग से पीडित हूं। सभी निदान करा चुका हूं। लेकिन किसी से कुछ लाभ नही हुआ। इसलिये अब "अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम" कह कर फिर प्रणाम किया।

आचार्य— राजन्! घबराइये मत। भगवान जिनेन्द्र देव को याद रखिये। सब कुशल मंगल होगा। आप अब जब तक स्वस्थ नही होंगे यहा ही रहेंगे और जिनेन्द्र देव का स्मरण करते रहेंगे।

खण्डेलगिरि—आचार्यश्री! आप परम कृपालु है। परम तपस्वी हैं, वीतरागी है, रागद्वेष रहित हैं। लेकिन मुझे तो शरण देनी ही पड़ेगी। मेरी आप मे पूर्ण श्रद्धा है इसलिये जैसा आप कहेंगे वैसा ही मैं करने को तैयार रहूंगा। महाराज श्री! मेरी सम्पूर्ण प्रजा इस महामारी रोग से पीड़ित है। प्रतिदिन सैकड़ो व्यक्ति काल के मुंह मे जा रहे है।

आचार्य श्री— आप अभी एक सप्ताह इसी गुढे मे ठहरिये। जिनेन्द्रदेव की आराधना कीजिये। पूर्ण शाकाहारी एवं सात्विक जीवन व्यतीत कीजिये।

जीव मात्र को भी कष्ट देने का भाव मत लाइये। तभी आपको रोग मुक्ति मिल सकेगी। हमारे पास कोई दवा देने के लिये नहीं है। निर्ग्रन्थ साधु के पास पिच्छी कमण्डलु के अतिरिक्त और कुछ भी नही होता। फिर भी जिनेन्द्र देव के नाम स्मरण से आप रोग मुक्त हो सकेंगे ऐसा मेरा आशीर्वाद है। महाराज श्री ने फिर अपनी पिच्छी उठायी और राजा को रोगमुक्त होने का आशीर्वाद दिया।

महाराजा खण्डेलगिरि गुफा में रहने लगे। उनके जीवन में बदलाव आने लगा। रोग मे शान्ति के साथ शरीर मे दिव्यता आने लगी। उन्हें स्वयं को अनुभव होने लगा जैसे उनका शरीर स्वस्थ होने के साथ-साथ दिव्य एवं आकर्षक भी बन रहा है। एक-एक करते-करते सात दिन निकल गये। एक ओर आचार्य जिनसेन चक्रेश्वरी देवी की आराधना में खोये हुए थे तो दूसरी ओर महाराजा खण्डेलगिरि निरोगता की ओर बढ रहे थे। सात दिन के पश्चात् आचार्य श्री जिनसेन के दर्शनार्थ महाराजा खण्डेलगिरि फिर पहुंचे और नमोस्तु कह कर उन्ही के चरणों में बैठ गये।

खण्डेलगिरि—आचार्यश्री आप धन्य है। आप तो साक्षात् महाप्रभु हैं जिनके आशीर्वाद मात्र से मेरा भयकर रोग स्वतः दूर हो गया। आप तो चमत्कारिक आचार्य हैं जिन्होने मेरी ही नहीं किन्तु हजारो श्रावको के जीवन की रक्षा की है।

आचार्य जिनसेन—राजन्! भगवान जिनेन्द्र देव की आराधना तथा चक्रेश्वरी देवी की कृपा से तुम बच गये। अब तुम्हारा नया जीवन प्रारम्भ होने वाला है।

खण्डेलगिरि—आचार्य श्री को नमोस्तु करता हुआ राजा खण्डेलगिरि पुनः हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहने लगा कि मेरा समस्त जीवन आचार्य श्री के चरणो में समर्पित है। मेरा अहोभाग्य होगा यदि आपका मुझे आशीर्वाद प्राप्त होगा।

आचार्य जिनसेन—पुनः अपनी पिच्छिका से आशीर्वाद देते हुए—राजन् तुम आज से जिनेन्द्र देव की शरण में आ गये हो। अब भगवान जिनेन्द्र देव ही तुम्हारे आराध्य देव हैं। आज से तुम्हारा नया जीवन प्रारम्भ होगा। भादवा सुदी 13 को तुम्हें सार्वजनिक रूप से भगवान महावीर का धर्म स्वीकार करना है। यह कह आचार्य जिनसेन चुप हो गये।

खण्डेलगिरि—आचार्यश्री! मुझे आपका आशीर्वाद मिल गया—यही मेरे जीवन की अनुपम निधि है और इस निधि को प्राप्त कर मैं स्वयं गौरवा-

न्वित हूं। यह कह कर वह पुनः उनके चरणों में गिर गये। कुछ देर शांत चित्त रहने के पश्चात् महाराजा खण्डेलगिरि ने आचार्य श्री से निवेदन किया—आचार्य श्री इस महामारी का कारण जानना चाहता हूं। क्या हमारे कोई पाप का उदय है? अथवा खण्डेला के नागरिकों को सामूहिक पाप का फल मिल रहा है। आचार्य श्री कुछ क्षण शान्त रहे और इसके बाद उन्होंने कहा कि महामारी से बचने के लिये तुम्हारी ओर से जो यज्ञ किया गया था उसमें ध्यानस्थ मुनियों को होम दिया गया। इस घोर पाप का ही फल है कि महामारी ने सारे नगर को अपने पंजो में जकड लिया और हजारों नागरिकों को काल कवलित होना पडा। हिंसा से कभी सुख नहीं मिलता। हिंसा तो दुःखों की जननी है। यज्ञ में जीवित मुनियों को होम देना कितना बडा पाप है जिसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती।

राजा ने जब मुनियों को यज्ञ में होम दिये जाने की घटना सुनी तो वह एक बार तो बेहोश हो गया तथा कुछ देर पश्चात् हाथ जोडकर कहने लगा कि आचार्यश्री इसके लिये मैं दोषी हूं; अपराधी हूं। ओहः इतना बडा अनर्थ कर डाला यज्ञ के आयोजकों ने! यह महामारी सब उसी का फल है। इतना कह कर वे फिर अचेत से हो गये।

आचार्यश्री —लेकिन राजन् इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम्हें तो इस जघन्य कार्य का मालूम भी नहीं है। यह सब अनर्थ तुम्हारी बिना आज्ञा के चोरी छिपे किया गया। राजन् अहिंसा धर्म के पालन की प्रतीक्षा ही सुख शान्ति का एकमात्र उपाय है।

इसके पश्चात् भादवा सुदी 13 रविवार विक्रम सवत् 101 के शुभ दिन खण्डेला मे विशेष दरबार लगाया गया। सभी सामन्तो एवं दरबारियो को आमन्त्रित किया गया। आचार्य श्री जिनसेन अपने सघ के कुछ साधुओं के साथ दरबार हाल मे गये। सारा दरबार हाल भगवान महावीर की जय! आचार्य जिनसेन की जय के नारों से गूंजने लगा। महाराजा खण्डेलगिरि को उनके पूरे परिवार के साथ जैन धर्म में दीक्षित किया गया तथा अहिंसा धर्म का कट्टरता से पालन करने का नियम दिलाया गया। महाराजा खण्डेलगिरि के साथ 13 अन्य चौहान परिवार वाले सामन्त गणो को भी जैन धर्म मे दीक्षित किया गया। (1) महाराजा खण्डेलगिरि (2) राजा श्री

भावस्यंध जी (3) राजा श्री पूरणचन्द्र जी (4) राजा श्री योमसिंहजी (5) राजाश्री अजबसिंह जी (6) राजाश्री अमैराम जी (7) राजा श्री नरोत्तम जी (8) राजा श्री भांभाराम जी (9) राजा श्री जसोरामजी (10) राजा दमतारिजी (11) राजा श्रीभूधरमल जी (12) राजा श्री रामसिंह जी (13) राजा श्री दुरजनसिंहजी (14) राजा श्री साहिमल जी। ये सब महाराजा खण्डेलगिरि के परिवार के होने के कारण इन्हें भी राजा की उपाधि प्राप्त थी। इन सबको जैन धर्म में एक साथ दीक्षित किया गया।[1]

सवत् 1779 फागुन सुदी 14 को लिपिबद्ध एक गुटके मे श्रावकोत्पत्ति के नाम से खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति की कथा निम्न प्रकार दी है।

श्री महावीर वर्धमान जी मुक्ति पधारया 630 बरस पाछै अपराजित के वारै श्री जिनसेनाचार्य जी खण्डेलगिरि नाम राजा छौ तिनै खडेला माहै संबोध्या/जदिघो खण्डेलवाल श्रावक हुवा जो कौ ब्योरो—

मनुष्या नै कष्ट उपज तो जाण्यौ मलबाई कों। जब पुरोहित ब्राह्मण आप ही स्यु जैन का मुनीश्वरा स्यु दोष करि अर नरमेघ यज्ञ स्थापित कीयौ सौ वां मुनीश्वरा ब्राह्मणानै वाद करि जीत्या छा ति दोष करि वा ब्राह्मण यज्ञ का कुंड में एक मुनीश्वर होम्या। तब प्रजा मलवाई सु बहुत छीजिवा लागी छौ। ए ताही मैं जिनसेनाचार्य जी पधारया। ज्याहं गुढा माहांस्यौ काठि एक गुढों जैन का श्रावकां कौ दीयौ। बैठे चक्रेश्वरी देवी को आराध कीयौ जब वै गुढै शांतता हुई। जब या बात राजा मुणि दर्शन आयो अरज करी जु या प्रजा छीजै बहुत है।। वर्ष द्वादश प्रजानै छीतता हुवा सु कौण पाप करि छीजी सो कहो स्वामी जी। तब जिनसेनाचार्य जी आज्ञा करी जु राजा थाका पुरोहिता म्हाका मुनीश्वर तप करे छा स्यानै यज्ञ का कुंडा मै होम्यां। जि पापस्यु या प्रजा छीजी। तदि राजा सुणि अर बहुत दुख कीयौ। तदि राजानै बहुत संबोध्या। थे इ काम लू वाकिव नहीं। थांके छानै यो अपराध हूवो छै। थे इ बात कौ दुःख मति करो। राजा स्वामी स्यु अरज करी। आप उपकार करौ जि भांति इ नगर कौ पाप मिटै। और सेती यो पाप अनर्थ मिटै नही। जदी आचार्य कह्यो जु आतमीक धर्म पकडो तौ बचाव होइ नही तो बचाव होई नही।"

---

1. सिधाडे के जिनसेन अपराजित मुनि राब।
राजकुली चौबीसी धरि, प्रतिबोध्या पुनि आब।
संवत एक सौ एक नगर खण्डेले जाब।
चौरासी श्रावक कुली जैन धरम उपजाय।।
भादवा सुदी 13 रविवार खण्डेलवाल थाप्या।।

इसी से मिलता जुलता वर्णन अन्य प्रतियों में भी मिलता है लेकिन बख्तराम साह ने बुद्धि-विलास में जो खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति का वर्णन दिया है वह इससे कुछ भिन्न है जो निम्न प्रकार है—

खण्डेला में जब मुनि गये तो उनका वहां ब्राह्मण पंडितों से वाद विवाद हो गया जिसमें जैन मुनियों की जीत हुई और पंडितों को पराजय का मुख देखना पड़ा। उसी समय नगर में मलवाई का रोग फैलने लगा तो उसकी शान्ति के लिये विशाल यज्ञ किया गया और इसमें वेद मंत्र उच्चारण करते हुए पंडितों ने मुनियों को होम दिया। इससे मलवाई रोग ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया। नगर खाली हो गया और नागरिक छोटे-छोटे गुढे उप नगरों मे रहने लगे। यशोभद्राचार्य ने जिनसेन को वहां शांति के लिये भेजा।

जिनसेन स्वामी खण्डेला आये और श्रावको को बुलाकर उनका अलग ही गुढा (गांव) बसाया तथा सबसे जिन भक्ति में लगने के लिये कहा। स्वय जिनसेन ने चक्रेश्वरी देवी का आराधना की तथा उससे प्रार्थना की कि जितने भी जैन परिवार है उन सबकी रक्षा करो तथा रोग शोक आदि व्याधि दूर करो। चक्रेश्वरी देवी ने मुनि की आज्ञा अनुसार सभी जैनों को रोग मुक्त कर दिया। तथा वे सुख शांतिपूर्वक रहने लगे। शेष वही कथा है जो अन्य प्रतियो मे मिलती है।

इस प्रकार राजा खण्डेलगिरि एवं उसके परिवार के सामन्तो द्वारा जैनधर्म स्वीकार करते ही चारो ओर यह प्रसिद्धि हो गयी कि जो जैन बन जावेगा वह रोग मुक्त हो सकेगा। इसीलिये हजारों नगर निवासियो ने भगवान महावीर को अपना लिया।

बख्तराम साह के बुद्धि विलास मे खण्डेलवाल जैनो की उत्पत्ति का प्रमुख वर्णन निम्न प्रकार किया है—

> नगर खण्डेला यक अभिरांम भूपति तसु खंडेल गिरनांम ।।703।
> बसं सोम कुल है चौहांन, सोभित तासु तेज जिम भांन।
> तहां मुनीस्वर गये किसेक, बिप्रनु तें किय वाद अनेक ।।704।।
> जीते वाद रहे मुनि जहां, बिप्रनु कोप कियो तब तहां।
> पुर में मलवाई को रोग, उपउयो काहू पाप संजोग ।।705।।
> छीजन लगे बहुत नर नारि, प्रोहित बिप्रनु तबै विचारि।
> जग्य सथापो जब नरमेव, तामें होमें मुनि पढि वेव ।।706।।
> तब तें विथा अधिक ऊपनी, मरन लगी पिरजा पुरतनी।
> फुनि सब देस मांही बिन नीति, भगस्यौ रोग महा विपरीत ।। 707।।
> तबै उपद्रव लखि पुर मांहि, नर नारी सबही निकसांहि।
> नगरि नजीक गुढे करवाय, बसे तहां सब पुर के आय ।।708।।

ग्रंसं होमें सुनि मुनिराय, यसोभद्र तब कियो उपाय ।
सिष्य हुतौ जिनसेनि मुनि साहु, ताकों कही खंडेलै जाहु ।।709।।
थापो श्री जिन-धर्म प्रवीन, जैसे चलि ग्रायो प्राचीन ।
काहू भांति संक मति करो, प्रभु कौ नाम हिये मधि धरौ ।।710।।
तब जिनसेन खंडेलै ग्राय, श्रावक श्रेष्टो लये बुलाय ।
तिनको बुढो बसायों गुढ़ढो, सब कौं कही नांम जिन पढो ।।711।।
दैव्य ग्रराधो चक्रेश्वरी, ताकौ मुनि यह ग्राग्या करी ।
सब जैनिनु को रक्षा करो, रोग व्याधि इनको सब हरो ।।712।।
देवी मुनि को ग्राग्या पाय, जैनिनु कौ दुख दयो मिटाय ।
तबं सुखी सब श्रावक भये, समाचार नृपहू पं गये ।।713।।
सुनि ग्रायो खंडेलगिरि भूप, बंदे मुनि के चरन ग्रनूप ।
विनती करी ग्रहो मुनिराज, तुम हो पर भव जलधि जिहाज ।।714।।
कौन पाप पिरजा छीजत, सो मोकौ कहिए विरत्तंत ।
छीजत भये वरष दस दोय, काहू भांति सांति नहि होय ।।715।।
तब मुनि भाषो ग्रहो महीस, जिनमत धारी महा मुनीस ।
तप करते या नगर ढिगारि, विप्रनु होमे जाय मझारि ।।716।।
घोर पाप उपज्यों पुर मांहि, तातं सब नर नारि छिजांहि ।
यह विरतांत सुण्यो नृप सबं, दुखी भयो मन मे ग्रति तबै ।।717।।
विप्रनु तै भूपति ग्रनखांहि, क्रोध करन लागे मन मांहि ।
तब मुनि कही ग्रहो नर ईस, सोच फिकर मति करहू नरीस ।।718।।
विप्र प्रोहितनु सांमिल होय तुम तें तौ यह राखी गोय ।
कियो जाय होमें मुनि धनं, तातें तुम्हें दोष नहि बनें ।।719।।
तब नृप कही ग्रहो रिखराय, दोष मिटं सो कहौ उपाय ।
ग्रौरनि तें यह मिटं न पाप, तुमही मेटो जब संताप 720।।
ग्राचारिज बोले नृप ग्रहो, श्री जिनधर्म मर्म तुम गहो ।
ग्रौर सबं त्यागौ मत जाल, तौ बचाव ह्वं है तत्काल ।।721।।
भूपति हाथ जोरि सिर नाय, सबं कबूली मन बच काय ।
तब तें चौकी दे ईश्वरी, व्याधि सबं पुनजन की हरी ।।722।।
पिरजा सुखी भई सब जानि, भूपति हरख ग्रधिक मन मांनि ।
बोले तुमहि धन्य मुनि नाथ, जग बूड़त राख्यौ गहि हाथ ।।723।।
ग्रब जो ग्राग्या ह्वं सो करं, तुम प्रसाद हम भव दधि तरं ।
मुनि भाषी करिए नृप सार, श्रावक के व्रत ग्रंगीकार ।।724।।

जगत माँहि हैं जन बहू रूप, तीन में होहु महाजन भूप ।
और ग्राम हूं तैं नरनारि, आए तिन्है बुलाय विचारि ।।725।।
सबको थाप सु खंडेलवाल, ठहराई समेति भूपाल ।
अंसे मुनि इष्ट कै जोरि, सबकों श्रावग किये बहोरि ।।726।।

खण्डेलवाल जाति के उद्भव का समय

खण्डेलवाल जाति के उद्भव के समय के सम्बन्ध में न तो प्राचीन पाण्डुलिपियों में इतिहास लिखने वाले इतिहासज्ञ एक मत है और न वर्तमान युग के इतिहासज्ञ । अब तक देखी गयी पाण्डुलिपियों मे खण्डेलवाल जैन जाति (सरावगी समाज) के उद्भव काल के सम्बन्ध में निम्न वर्णन मिलता है—

1. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत एक गुटके में है । इस गुटके में विभिन्न पाठो का संग्रह है । गुटका का लिपि-काल सम्वत् 1773 फागुण बदि 14 है । इसमें भगवान महावीर के 630 वर्ष पश्चात् विक्रम सम्वत् 101 भादवा सुदी 13 रविवार के दिन खण्डेलवाल जाति का उद्भव काल माना है ।

2. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर जोबनेर की है । पाण्डुलिपि मे लेखनकाल नही दिया हुआ है लेकिन पाण्डुलिपि 18वी शताब्दी की लगती है । इस पाण्डुलिपि मे कुल 32 पत्र है जिनमें 8 पत्रो में खण्डेलवाल जाति के उद्भव एवं वंश तथा गोत्रों का इतिहास दिया हुआ है । इस पाण्डुलिपि के अनुसार महावीर के 490 वर्ष पीछे यशोभद्र के लघु शिष्य जिनसेनाचार्य हुये और सर्वप्रथम साह गोत्र की स्थापना हुई ।

3. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार की है । यह भी गुटका रूप में है । इसमें खण्डेलवाल जाति का प्रथम साह गोत्र विक्रम संवत् 1 में स्थापित होना लिखा है तथा यह भी लिखा है कि यशोभद्र का लघु शिष्य जिनसेन भगवान महावीर के 490 वर्ष पश्चात् खण्डेले आये और 14 गोत्र एक ही समय स्थापित किये ।

4. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि एक गुटके में संग्रहीत है जिसका लेखनकाल सम्वत् 1822 श्रावण सुदी 14 मगलवार है । इसमे 169 पृष्ठ है तथा खण्डेलवाल जाति का 12 पत्रो में इतिहास लिखा हुआ है । पाण्डुलिपि के अनुसार जिनसेनाचार्य वर्द्धमान

स्वामी के निर्वाण जाने के 683 वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् 1 में माघ सुदी 5 जिनसेनाचार्य जी पाच सौ मुनियों का संघ विहार करता हुआ खण्डेला के वन में आये थे।

5. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांड्या जयपुर के शास्त्र भण्डार के 112 संख्या के गुटके में संग्रहित है। इसमे वीर निर्वाण सम्वत् 683 के पीछे अपराजित मुनि के संघ में जिनसेनाचार्य का होना तथा खण्डेला के वन में आना लिखा है। पाण्डुलिपि के 42वें पत्र पर सम्वत् 1854 आषाढ़ वदि 4 मगलवार दिया हुआ है जो इसका लिपिकाल है।

6. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि भी श्री दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांड्या जयपुर में गुटके के रूप मे है। पत्र संख्या 59 से 63 तक "सरावगी गोत की उत्पत्ति" दी हुई है। इसमे भी वीर निर्वाण सं. 683 दिया हुआ है जो "च" पाण्डुलिपि में दिया हुआ है। गुटके में लिपि सम्वत् नही दिया गया है।

7. पाण्डुलिपि

यह पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर सोनियान जयपुर की है। गुटके की साइज मे लिपिबद्ध इसमे 8 पत्र है। जिनमे श्रावक समाज की उत्पत्ति लिखी हुई है। इसमे भी छ: पाण्डुलिपि के समान सरावगी समाज की उत्पत्ति महावीर निर्वाण के 683 वर्ष पश्चात् मानी है। शेष वही वर्णन है जो अन्य पाण्डुलिपियो में मिलता है।

8. पाण्डुलिपि

इस पाण्डुलिपि में कवि ने अपना नाम भगवान दिया है तथा सम्वत् 1636 मे चौरासी गोत्रों के वर्णन लिखने की बात लिखी है। केवल 84 गोत्रों की उत्पत्ति का इतिहास लिखा है। इसमें सम्वत् नही लिखा है। लेकिन अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियों में यह सबसे प्राचीन रचना बिना सम्वत् वाली पाण्डुलिपि है। यह पाण्डुलिपि मारोठ के शास्त्र भण्डार की है।

9. पाण्डुलिपि

पत्र संख्या 9 यह पाण्डुलिपि की फोटोस्टेट कापी श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा से प्राप्त हुई है। इसमें वीर निर्वाण सम्वत् 683 का उल्लेख है। अन्त में सम्वत् 1726 में गोधा गोत्र से ठोल्या गोत का विकास लिखा है।

---

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित।

गोत चौरासी बरनऊ ग्रखरँघो मल मावँ ।
सवतँ सौलसि समै छतीस वीर मारँ कीयौ ।
तौ गुण सा मोद मे कीरती करी वीसतारँ ।।

10. पाण्डुलिपि

गुटका दि० जैन मन्दिर मारोठ (राजस्थान)। इसमे भगवान महावीर के 300 वर्ष पश्चात् खण्डेले मे खण्डेलगिरि राजा का होना लिखा है तथा खण्डेलवालो की 84 न्याति गोत्र स्थापित करने का उल्लेख है । पूरा वर्णन ग्रति सक्षिप्त है ।

11. पाण्डुलिपि

इस पाण्डुलिपि मे 15 पत्र है जिनमे 84 गोत्रो की उत्पत्ति का इतिहास दिया हुग्रा है । प्रथम साह गोत्र विक्रम सम्वत् 2 मे भगवान महावीर के 490 वर्ष पश्चात् होना लिखा है । यह पाण्डुलिपि दिगम्बर जैन मन्दिर चन्द्रप्रभ स्वामी, जयपुर की है ।

12. पाण्डुलिपि

बुद्धि विलास । रचयिता बख्तराम साह । रचनाकाल सम्वत् 1827 मगसिर शुक्ला 12 है । इसमे खण्डेलवाल जाति का उत्पत्ति वर्णन पत्र सख्या 702 से 775 तक ग्रर्थात् 74 पद्यो मे विस्तृत वर्णन दिया हुग्रा है । यशोभद्राचार्य के शिष्य जिनसेनाचार्य द्वारा खण्डेला जाकर खण्डेलवाल जैन जाति की स्थापना करना लिखा है ।

13. पाण्डुलिपि

इस पाण्डुलिपि मे 36 मे ग्रधिक पत्र है लेकिन प्रारम्भ के 27 तथा 33, 34 एव 36 से ग्रागे के पत्र नही है । इसमे महावीर निर्वाण के 490 वर्ष पश्चात् विक्रम सम्वत् 2 मे प्रथम साह गोत्र की स्थापना के बारे मे लिखा है ।

उक्त 13 पाण्डुलिपियो के ग्रध्ययन के पश्चात् निम्न निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

पाण्डुलिपि सख्या 4, 5, 6, 7, 9 मे भगवान महावीर के निर्वाण के 683 वर्ष पश्चात् यशोभद्राचार्य के शिष्य जिनसेनाचार्य द्वारा खण्डेलवाल जैन जाति (सरावगी समाज) का प्रादुर्भाव माना है । 1 पाण्डुलिपि मे सम्वत् 683 के स्थान पर जाति की उत्पत्ति का समय सम्वत् 630 माना है । इस पाण्डुलिपि मे तो उसके प्रादुर्भाव का विक्रम सम्वत् 101 भादवा सुदी 13 रविवार की निश्चित तिथि दी है ।

2 एव 11 तथा 13 नामाकित पाण्डुलिपियो में वीर निर्वाण सम्वत् 490 पश्चात् खण्डेला मे इस जाति की उत्पत्ति हुई थी ऐसा लिखा है । सम्वत् भेद के

अतिरिक्त इनके अनुसार भी यशोभद्र के लघु शिष्य जिनसेन ने ही इस जाति की स्थापना की थी । इसी तरह प्रति मे 13 सम्वत् 490 के साथ विक्रम सम्वत् 2वां उद्‌भव काल स्वीकार किया है ।

लेकिन सभी इतिहासकार इस बात पर एक मत है कि यशोभद्राचार्य के लघु शिष्य आचार्य जिनसेन ने खण्डेला जाकर वहां के राजा खण्डेलगिरि को जैन धर्म मे दीक्षित किया तथा राजा के कुटुम्ब को प्रथम साह गोत्र घोषित किया तथा उसके सामन्तो को भी उसी के साथ जैन धर्मानुयायी बनाया । आचार्य जिनसेन द्वारा 14 गोत्रो की स्थापना की गयी । विक्रम सम्वत् के सम्बन्ध मे कुछ मतभेद अवश्य है । कुछ इतिहासकार विक्रम सम्वत् 2 मानते है तथा कुछ सम्वत् 101 ही मानते है ।

वर्तमान विद्वानों का मत

उक्त पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त जब हम वर्तमान विद्वानो की ओर देखते है तो हम निम्न निष्कर्ष पर पहुचते है ।

1 प० परमानन्द जी शास्त्री के अनुसार उपजातियां कब और कैसे बनी इसका कोई सामाजिक इतिहास नही लिखा गया । पर ग्राम, नगर या व्यवसाय के नाम पर अनेक जातियो का नामकरण और गोत्रो का निर्माण किया गया है । उप-जातियो का इतिहास 10वी शताब्दी पूर्व का नही मिलता किन्तु सम्भव है उससे पूर्व भी उनका अस्तित्व रहा हो ।

2 डॉ० कैलाशचन्द जी जैन उज्जैन की मान्यता है कि खण्डेलवाल जाति का उद्‌भव सम्भवत. 8वी शताब्दी में हुआ हो क्योकि इससे पूर्व का अभी तक कोई इतिहास नही मिल सका है । जब खण्डेलवाल जाति अधिक सख्या मे हो गई तो उसने गाँवो के नाम से गोत्र स्थापित कर लिये । धर्मरत्नाकर (10वीं शताब्दी) के अनुसार जयसेन ने खण्डेला नगर की ओर विहार किया था ।

3. पं. फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री ने लिखा है कि जैन धर्म जाति प्रथा का अत्यन्त विरोधी रहा है लेकिन वह भी इस दोष से अपने को नही बचा सका । कहने के लिये इस समय जैन समाज मे 84 जातियाँ है । मेरी राय मे कुछ ऐसी भी है जो दो हजार वर्ष से पहले ही अस्तित्व में आ गयी थी ।

4. श्री सत्यकेतु विद्यालंकर का मानना है कि इतिहास में जाति भेद का महत्व बडा विकट है । जातियो का यह भेद भारत में किस प्रकार विकसित हुआ इसकी व्याख्या कर सकना बहुत कठिन है ।

5. पं० भंवरलाल जी पोल्याका ने महावीर जयन्ती स्मारिका वर्ष 1974 में सम्वत् 1879 में लिपि की हुई एक पाण्डुलिपि में वर्णित खण्डेलवाल जाति के इतिहास को दिया है और फिर साह गोत्र की एक वंशावली उद्धृत की है । इसके

पश्चात् पंडित जी ने उत्पत्ति काल पर लिखा है कि पाण्डुलिपियो में निर्दिष्ट सम्वत् 1 (एक) विक्रम सम्वत् 1 न होकर हर्ष सम्वत है जो विक्रम सम्वत् 662 वर्ष पश्चात् चला था। आगे चल कर आपने लिखा है कि इनसे विक्रम सम्वत् 2–3 आदि की संगति कैसे बैठे। ये यथार्थ मे 101, 102, 103 आदि है और बोलने मे इनको 1–2–3 आदि बोलते है। पोल्याका जी के अनुसार विक्रम सम्वत् 901 मे खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति हुई थी।

इस प्रकार जब हम वर्तमान युग के विद्वानो के विचारों को पढ़ते है तो लगता है वे भी सभी अपना अलग-अलग मत रखते हैं और किसी निश्चित तिथि पर नही पहुंच सके है। यही नही सभी विद्वान दबी जबान से जातियो की उत्पत्ति को दो हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार, जिनसेन के हरिवंशपुराण यतिवृषभ की तिलोयपण्णत्ति एवं वीरसेन की धवला टीका मे आचार्यो की जो पट्टावली दी गयी है उसमे लोहाचार्य तक 492 वर्ष गिनाये है। इसके अनुसार यशोभद्राचार्य तक वीर निर्वाण सम्वत् 474–492 आता है जो निम्न प्रकार है—

तीन केवली भगवान (62 वर्ष), पाँच श्रुत केवली (100 वर्ष), दस पूर्व-धारी आचार्य (183 वर्ष)।

ग्यारह अंगधारी आचार्य (123 वर्ष) के पश्चात् एकागधारी आचार्य निम्न प्रकार हुये—

एकांगधारी आचार्य

वीर निर्वाण सम्वत्

,,	468	सुभद्र	6 वर्ष
,,	474	यशोभद्र	18 वर्ष
,,	492	भद्रबाहु	23 वर्ष
,,	515	लोहाचार्य	52 वर्ष

उक्त पट्टावली के अनुसार यदि ये ही वे आचार्य यशोभद्र है तो उनका समय वीर निर्वाण सम्वत् 474–492 का आता है जिसके अनुसार विक्रम सम्वत् 2513 – 490 = 2023 आता है। वर्तमान मे 2045 सम्वत् है इसलिये यशोभद्र ने आचार्य पद के 10 वर्ष पश्चात् भी जिनसेन को वहाँ खण्डेला मे भेजा होगा तब भी विक्रम सम्वत् 1 के स्थान पर सम्वत् 31 बैठता है। दूसरी ओर 683 वर्ष की दृष्टि से आचार्य यशोभद्र एकागधारी भूतबली के पश्चात् होने चाहिए जिनका निम्न प्रकार समय आता है—

वीर निर्वाण सम्वत्	565	अर्हदबलि	28 वर्ष
,,	593	मावघन्दि	21 वर्ष
,,	614	आचार्य घरसेन	19 वर्ष
,,	633	पुष्पदन्त	30 वर्ष
,,	663	भूतबली	20 वर्ष

अर्थात् आचार्य भूतबली के पश्चात् आचार्य यशोधर हुए होगे। इसके अनुसार 2544–683 = 1861 (2044–1861) 183 अर्थात् विक्रम सम्वत् 183 मे खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति होनी चाहिये। सम्वतो के आधार पर न तो सम्वत् एक ही आता है और न सम्वत् 101 ही आता है। पहिले वाली मान्यता के आधार पर 30 वर्ष का अन्तर आता है और दूसरी मान्यता के अनुसार 82 वर्ष का अन्तर आता है। लेकिन इतने लम्बे काल को देखते हुए यह अन्तर कोई विशेष अन्तर नही है। अधिकाश पाण्डुलिपियो मे सम्वत् 683 की उत्पत्ति काल माना है इसलिये हम भी खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम सम्वत् 101 को ही सही मानते है।

8वी एवं 10वी शताब्दी मे पर्याप्त परिवर्तन आ चुका था। 10वीं शताब्दी मे तो मुसलमानो के आक्रमण भी होने प्रारम्भ हो गये थे। सिन्ध, पंजाब एवं शेखावाटी का यह प्रदेश भी अशान्त बन चुका था। ऐसे युग मे एक साथ तीन लाख परिवारों द्वारा जैन धर्म में दीक्षित होना सम्भव नही लगता। वैसे दिगम्बर जैन जातियां पहिली–दूसरी शताब्दी के पूर्व ही अस्तित्व मे आ चुकी थी क्योकि आचार्य एव भट्टारक पट्टावलियो मे इन जातियो का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। जो विश्वसनीय प्रमाण है। पट्टावलियो मे आचार्यों एव भट्टारकों के नाम उनकी जातियाँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओ की विस्तृत पट्टावलियो में मिलती है।

खण्डेला का सांस्कृतिक विकास

इस प्रकार खण्डेला खण्डेलवाल जाति का प्रधान केन्द्र बन गया। खण्डेला में रहने वाले नव दीक्षित जैन खण्डेलवाल कहलाने लगे। उनकी संख्या अथवा प्रतिशत के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि "शहर खण्डेला मे एक न्याती थापी। ती मैं आधी मे तो खण्डेलवाल ब्राह्मण, आधी मे खण्डेलवाल महाजन। तिह आधी में पाव न्याति खण्डेलवाल महेश्वरी और पाव न्याति मे खण्डेलवाल सरावगी। एक पाण्डु-लिपि में लिखा है कि उस समय 3 लाख परिवारों ने जैन धर्म में दीक्षा ली थी और वे खण्डेलवाल सरावगी कहलाने लगे थे।

खण्डेला एवं उसके राज्य के ग्रामों में खण्डेलवाल जैनो का प्रमुत्व स्थापित

हो गया और वे अपने-अपने गाँवों के सम्भ्रान्त नागरिक माने जाने लगे। खण्डेला के महाराजा, इसके सभी सामन्त गण, मन्त्री परिषद के सदस्यगण एवं उच्च श्रेणी के नागरिकगण, व्यापारीगण, सभी जैन धर्मावलम्बी बनने से देश ने एक नव प्रभात देखा। पूजा-पाठ होने लगा। आचार्यों एवं मुनियों का विहार होने लगा तथा मारवाड प्रदेश मे अहिंसा धर्म का व्यापक प्रभाव होने लगा।

मन्दिरों का निर्माण एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं का आयोजन

जिन मन्दिरों की आवश्यकता समझी गयी और सर्वप्रथम खण्डेला मे जिन मन्दिर की नीव रखी गयी। जिसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्वत् 101 वैशाख सुदी 3 को सम्पन्न हुई। यह अपने ढंग की पहली प्रतिष्ठा थी इसलिए जैन समाज ने पूरे उत्साह मे भाग लिया। मूल नायक प्रतिमा भगवान आदिनाथ की प्रतिष्ठित की गयी। इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य स्वयं आचार्य जिनसेन थे। इस प्रतिष्ठा मे सभी 84 जातियो के श्रावक एकत्रित हुये थे। इसके पश्चात् तो खण्डेले मे एक के बाद दूसरी प्रतिष्ठायें होती रही। मन्दिरो का निर्माण होता रहा। नगर मे होने वाली विभिन्न पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं का वर्णन हमे यत्र-तत्र मिलता है। जिनमे नगर की सांस्कृतिक चेतना का पता लगता है।

इसके पश्चात् खण्डेला नगर मे कितनी ही प्रतिष्ठाओं का आयोजन होता रहा जिनका हम अगले अध्याय मे वर्णन करेंगे। लेकिन खण्डेला नगर को अनेक आक्रमणों का सामना करना पडा। इन आक्रमणों मे मन्दिरों का विध्वंस एक सामान्य बात थी। खण्डेला मे भी इसी प्रकार जैन संस्कृति के साथ खिलवाड होता रहा। इसलिये वर्तमान मे वहाँ एक मन्दिर के अतिरिक्त और कोई सांस्कृतिक चिन्ह नही मिलता।

सरावगी टीला

लेकिन खण्डेला मे सरावगी टीला के नाम से एक टीला प्रसिद्ध है जिसकी खुदाई मे कितनी ही महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है तथा कितनी ही भ्रान्तियों का अन्त भी हो सकता है। ऐसी सबकी मान्यता है।

इतिहास लेखन का प्रश्न

जातियों के इतिहास लिखने की पहिले परम्परा नही रही और हमारे आचार्यों ने सैद्धान्तिक एवं पौराणिक ग्रन्थों को जातियो के इतिहास की अपेक्षा अधिक महत्व दिया। इतिहास लेखन का कार्य प्रारम्भ मे ही उपेक्षित रहा और किसी का इस ओर ध्यान ही नही गया। यह बात खण्डेलवाल जैन समाज के इतिहास की ही नहीं किन्तु 84 जातियो मे किसी भी जाति का सुव्यवस्थित एवं

प्राचीन इतिहास नही मिलता । यही कारण है इतिहास लेखक को बहुत कुछ खोज करने के पश्चात् भी कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नही होती ।

इसलिये जिस तरह अन्य जैन जातियो का इतिहास नहीं मिलता उसी तरह खण्डेलवाल जैन जाति का इतिहास भी 17वी शताब्दी से पहिले का लिपिबद्ध हुआ नही मिलता । हाँ प्रशस्तियों, शिलालेखो एव मूर्ति लेखों में खण्डेलवाल जाति एवं उसके गोत्रों का नाम अवश्य मिलता है जिससे यह कहा जा सकता है कि उस समय इस जाति का अस्तित्व था । 17वी शताब्दि में सम्भवतः जातिवाद ने ज्यादा जोर पकडा होगा और उस समय लोगो को अपनी-अपनी जाति को प्राचीनतम बतलाने की बात कही होगी । इसलिये जैसा भी उन्होने पूर्वजो से सुना उसको उन्होने उसी तरह लिपिबद्ध कर दिया होगा । इस दृष्टि मे जयपुर के बख्तराम साह ने अपने बुद्धि विलास मे जो वर्णन किया है वह सबसे अधिक व्यवस्थित लगता है ।

हमने इतिहास लेखन के लिये 15 से अधिक पाण्डुलिपियो का अध्ययन किया है और उसी के आधार पर इतिहास लेखन का यह कार्य पूरा हो सका है । आज तक हमने जिन-जिन पाण्डुलिपियो पर कार्य किया है उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है । इन सब मे सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि सम्वत् 1636 की है जिसके लेखक ने भी अपना नाम दिया है ।

खण्डेला मे जैन धर्म मे दीक्षित होने का कार्यक्रम कब तक चलता रहा इस सम्बन्ध मे कोई निश्चित तिथि नही मिलती लेकिन एक पाण्डुलिपि मे यह अवश्य लिखा है कि आचार्य जिनसेन खण्डेलगिरि के राजवंश के 14 परिवारो को जैन धर्म मे दीक्षित करने के पश्चात् स्वर्गवासी हो गये और फिर यह सारा कार्य उनके गुरु आचार्य यशोभद्र ने स्वय ने खण्डेला आकर सम्हाला । शेष 70 सामन्तों मे से अधिकाश को तो स्वय जिनसेन ही दीक्षित कर गये क्योकि उनके मूल पुरुष के नाम के साथ उनके द्वारा श्रावक धर्म स्वीकार करने की तिथि भी आचार्य जिनसेन के समय की मिलती है । हमारे विचार से तो खण्डेला नरेश एव उनके सामन्तों को जैन धर्म मे दीक्षित करने मे आचार्य जिनसेन ने ही प्रमुख भूमिका निभायी थी ।

"ख" पाण्डुलिपि मे इस सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश डाला गया है । "अर चोकडदा का भाई बेठा इक्यासी गांवा का खवाद छा सो वै भी जैन राह पकडी जैनी हुवा । गावा का नाम गोत कहाया । अर खण्डेला कौ धणी साह हुवो अर गावा का धणी छा सो तिसा-तिसा गाव पकड्या । चौहाण की राज छो । गाव इक्यासी मै राजपूत सरब लाख 3,00,000 तीन घर जैनी हुवा और जो चौहाण भाई चौदा छा तिह कै तिह समै जैनी हुवा ।"

उक्त गद्यांश से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य जिनसेन द्वारा खण्डेला राज्य के सभी राजपूतो ने जैन धर्म मे दीक्षा प्राप्त की । इन राजपूतो की सख्या तीन लाख

थी। इसलिये सभी राजपूत खण्डेलवाल जैन कहलाने लगे। उन्होंने हिंसा की वृत्ति छोड़कर श्रावक क्रिया को पालने का व्रत लिया। इसलिये खण्डेलवाल जैन जाति जो वर्तमान में वैश्य जाति में गिनी जाती है प्रारम्भ में क्षत्रिय थी। विगत दो हजार वर्षों से श्रावक धर्म का पालन करने से वह वैश्य जाति मे मान ली गयी। इसके अतिरिक्त खण्डेलवाल जाति में खण्डेला में रहने वाले दूसरे जैन सम्मिलित नही थे। लेकिन वे किस जाति के रहे इसका कोई इतिवृत्त भी नही मिलता। यह सम्भव लगता है कि वे भी किसी समय से खण्डेलवाल जैनो मे सम्मिलित कर लिये गये हों लेकिन इसकी कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती।

खण्डेला में धार्मिक प्रभावना

वैसे तो खण्डेला नगर मे जैन धर्म का पूर्ण प्रभाव था। महाराजा खण्डेलगिरि द्वारा जैन धर्म मे दीक्षित होने के पूर्व भी वहा पर्याप्त सख्या मे जैन धर्मावलम्बी एव जैन मन्दिर थे। वह सब भगवान महावीर के 10वे गणधर मेदार्य का खण्डेला क्षेत्र मे प्रभाव के कारण वहा जैन धर्मानुयायी बने होगे। लेकिन महाराजा खण्डेलगिरि ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो जैन धर्म वहा का राज्य धर्म बन गया इसलिये जैन धर्म की प्रभावना के लिए और भी कार्यक्रम होने लगे। सैकडो की संख्या में मुनियो का विहार होने लगा और प्रथम पच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह भी आचार्य जिनसेन के सानिध्य मे ही सम्पन्न हुआ। इसके पश्चात् इसके आगे भी वहाँ पच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह आयोजित होते रहे। नये मन्दिरो का निर्माण, मूर्तियो की प्रतिष्ठा होती रही और खण्डेला के सारे क्षेत्र मे जैन शासन की प्रभावना होती रही।

खण्डेला नरेश एवं उसके सामन्तो के परिवार सैकडो वर्षों तक अपने-अपने क्षेत्र मे रहते रहे। शासन भी करते रहे तथा उनके परिवार के अन्य सदस्य व्यापार व्यवसाय तथा राज्य शासन में योग देते रहे। परिवार बढने लगा इसलिए रोजगार के अन्य साधन अपनाने पड़े। खेती, व्यापार एव सेवावृत्ति से भी जब काम नही चला तो उनको बाहर जाना पड़ा। सरावगी समाज के सदस्य शासन के अधिक समीप रहे इस कारण उनको राजाओ एव सामन्तो के साथ बाहर रहना पडता था। राजाओ एव जागीरदारो के वे ही प्रमुख व्यवस्थापक होते थे। राज्य के बड़े-बडे अधिकारियों को जहाँ दीवान या मन्त्री के नाम से पुकारा जाता था वही जागीरदारो के प्रमुख व्यवस्थापको को कामदार कहा जाता था। कामदारा भी पीढी दर पीढ़ी चलता था।

खण्डेला मे वर्षो तक रहने के पश्चात् सरावगी समाज वहाँ से बाहर निकलने लगा और अन्यत्र जाकर बसने लगा। इसमें तीन कारण प्रमुख हो सकते है—

(क) शासन की समाप्ति,
(ख) आर्थिक साधनों का अभाव, रोजी रोटी की तलाश तथा
(ग) राजाओं द्वारा आमन्त्रण।

उक्त तीनों ही कारणों से व्यक्ति अपनी जन्म-भूमि छोड़कर बाहर जा बसते है। सरावगी समाज के लिये ये तीनों ही कारण प्रमुख रहे। खण्डेला मे उनका शासन समाप्त हो गया। परिवार की जनसंख्या बढ़ने से एक ही स्थान पर रोजी-रोटी मे कमी आने लगी। बाहर जाकर व्यापारिक उन्नति करने लगे तथा इसके अतिरिक्त दूसरे राजाओ मे भी उन्हें उनकी शासन कुशलता एवं ईमानदारी के कारण अपने राज्य मे रहने का निमन्त्रण मिलने लगा।

खण्डेला का सरावगी समाज धीरे-धीरे राजस्थान में निम्न प्रकार अन्यत्र जाकर बसने लगा—

1. सीकर–लाडनूं- नागौर, सांभर नरायणा की ओर
2. चित्तौड़–अजमेर–घटियाली–मालपुरा–आमेर, सांगानेर की ओर
3. मालवा क्षेत्र की ओर
4. दिल्ली–आगरा–उत्तर प्रदेश के विभिन्न प्रान्तो की ओर
5. महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत की ओर
6. बिहार–बंगाल–आसाम–डीमापुर–मणिपुर की ओर

1. सीकर–लाडनूं–नागौर की ओर

सरावगी समाज का एक दल खण्डेला से निकल कर सीकर एवं लाडनूं तक जा पहुचा। सीकर एवं लाडनूं को उसने अपना केन्द्र बनाया। सीकर से भी अधिक वह लाडनूं पहुचा। वहाँ जाकर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाया। मन्दिरों का निर्माण होने लगा तथा सम्वत् 505 में वहाँ प्रथम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। लाडनूं मे इस प्रतिष्ठा के पश्चात् दूसरी प्रतिष्ठायें होने लगी। अब तक वहाँ सम्पन्न 27 पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं की जानकारी मिल चुकी है। लाडनूं से आगे सुजानगढ़ एव नागौर की दिशा में वह बढ़ता गया और एक समय में नागौर दिगम्बर जैन समाज की दृष्टि से मारवाड़ का प्रमुख केन्द्र बन गया। वर्तमान मे भी नागौर जिले का क्षेत्र खण्डेलवाल जैन समाज का प्रमुख केन्द्र माना जाता है।

नागौर के पश्चात् शाकंभरी का क्षेत्र भी सरावगी समाज का प्रमुख क्षेत्र बन गया। इस क्षेत्र का "नारायणा" कस्बा कभी इस समाज का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ उत्खनन से प्राप्त मूर्तियाँ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। इस प्रकार खण्डेलवाल जैन

परिवार धीरे-धीरे इस सारे क्षेत्र मे छा गये और इस पूरे क्षेत्र मे जैन धर्म और संस्कृति का विकास होने लगा।

नरायणा के बाद मोजमाबाद खण्डेलवाल जैनों का प्रमुख केन्द्र बन गया। 17वीं शताब्दी में निर्मित वहाँ का मन्दिर एवं सम्वत् 1664 मे सम्पन्न विशालतम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा इसके स्पष्ट प्रमाण है।

2. चित्तौड़-अजमेर-घटियाली-मालपुरा-आमेर-सांगानेर की ओर

खण्डेला प्रदेश से सरावगी समाज का एक दल चित्तौड जाकर बस गया। वैसे चित्तौड तो आचार्य धरसेन के पूर्व ही जैन धर्म एवं संस्कृति का केन्द्र बन गया था। आचार्य वीरसेन के विद्या गुरु एलाचार्य ने चित्तौड को अपना केन्द्र बना रखा था। चित्तौड से सरावगी समाज अजमेर की ओर बढा। इसके पश्चात् अजमेर खण्डेलवाल समाज का केन्द्र बन गया। सवत् 701 मे वीरम काला द्वारा वहा मदिर का निर्माण कराने एव पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित करने का उल्लेख मिलता है। घटियाली मे भी साह एवं कामलीवाल गोत्रीय श्रावकों का आकर बस जाने का उल्लेख मिलता है। मालपुरा क्षेत्र भी सरावगी समाज का प्रमुख क्षेत्र रहा और यहा से वे आस-पास के क्षेत्र मे फैल गये। मालपुरा मे सागानेर और आमेर की ओर बढते गये। आमेर के राजाओ का सरावगी समाज को इतना भारी प्रश्रय मिला कि आमेर और सागानेर इस समाज के केन्द्र बन गये। सांगानेर का सघी जी का मन्दिर एव आमेर का सावला बाबा का मन्दिर इसके स्पष्ट प्रमाण है। जयपुर में जितने भी खण्डेलवाल जैन परिवार आये थे उनमे अधिकाश आमेर और सागानेर से ही आकर बसे थे।

3. मालवा की ओर

खण्डेला मे एक दल ने हाड़ौती प्रान्त मे होता हुआ मालवा क्षेत्र मे प्रवेश किया तथा उज्जैन को अपना केन्द्र बनाया। उज्जैन से यह समाज इन्दौर, बडनगर, लश्कर, रतलाम एवं मालवा के अन्य नगरो मे प्रवेश कर गया। आहार जी क्षेत्र पर सम्वत् 1212 मे खण्डेलवाल जैन परिवार द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति उस क्षेत्र मे खण्डेलवाल जैनो के प्रभाव की ओर संकेत करता है। उज्जैन तो भगवान महावीर के समय मे जैन धर्म से प्रभावित था तथा वहा आचार्य भद्रबाहु, सम्राट चन्द्रगुप्त, आर्य रक्षित जैसे आचार्यों का विहार हुआ था। मालवा क्षेत्र मे वर्तमान मे भी खण्डेलवाल जैनो की सर्वाधिक सख्या है और इन्दौर सरावगी समाज का जयपुर के पश्चात् दूसरा प्रमुख नगर है।

4. महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत की ओर

मालवा से एवं राजस्थान के दूसरे भागों से खण्डेलवाल जैन समाज महाराष्ट्र

प्रान्त एवं दक्षिण भारत मे विशेषत: कर्नाटक प्रदेश में बस गया । महाराष्ट्र के नागपुर प्रान्त में खण्डेलवाल जैनो के पर्याप्त संख्या में परिवार मिलते है इनमें आकोला, भिलाई, छिंदवाड़ा, दुर्ग, नागपुर, वाशिम, वर्धा, जैसे नगरो के नाम उल्लेखनीय है ।

इसी तरह दक्षिण भारत मे औरंगाबाद, हैदराबाद जैसे नगरो में खण्डेलवाल समाज के अच्छी सख्या मे परिवार मिलते है । महाराष्ट्र मे 500-600 वर्ष पूर्व ही इस समाज के परिवार जाकर बसने लगे थे । परिवारो के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाने की यह प्रक्रिया वर्तमान मे भी चालू है और अब सरावगी समाज दक्षिण भारत मे भी जाकर रहने लगा है ।

5. दिल्ली-आगरा एवं उत्तर प्रदेश के अन्य नगरों की ओर

देहली सैकडो वर्षो से देश की राजधानी रही है । इसी तरह आगरा को भी मुगल शासन मे राजधानी के रूप मे रहने का सौभाग्य मिल चुका है । शासको की राजधानी होने के कारण इन दोनो नगरो मे ही खण्डेलवाल जैन समाज के सदस्य सैकडो वर्षो मे रह रहे है । जब से मुगल शासको के दरबार मे राजस्थान के राजाओ का प्रभाव बढा तथा उनको उच्च अधिकारी गवर्नर जैसे पद प्राप्त होने लगे तो इन गवर्नरो के साथ खण्डेलवाल समाज के व्यक्ति भी आवश्यक व्यवस्था के लिए जाते रहते और धीरे-धीरे देहली, आगरा जैसे नगरो मे बसते रहे । उत्तर प्रदेश के कुछ जिले सरावगी समाज बहुल जिले है ।

6. बिहार-बंगाल-आसाम-नागालैण्ड आदि प्रदेशों की ओर

बिहार, बगाल जैसे प्रदेशों में सरावगी समाज महाराजा मानसिंह के अमात्य नानू गोधा के साथ गया । महाराजा मानसिंह बगाल के वर्षों तक गवर्नर रहे और इनके प्रधान अमात्य नानू गोधा ने अपने बहुत से साधर्मी बन्धुओं को अपने साथ बगाल तक ले गये । नानू गोधा अकेले बंगाल में 80 जिन मन्दिर बनवाये थे इसलिए उन नगरो मे जैन परिवार होना आवश्यक है । जब रायचन्द छाबडा जो जयपुर राज्य के मन्त्री थे, शिखर जी की यात्रा गये तब उनको गया मे अपने साधर्मी एवं सजातीय बन्धुओ से मिलने का अवसर मिला था । इससे यह स्पष्ट है कि ये दिगम्बर जैन परिवार वहाँ पहिले से ही रहते थे ।

आसाम एवं नागालैण्ड में मारवाड से सरावगी समाज 115-120 वर्ष पहिले व्यवसाय के निमित्त गया और धीरे-धीरे वे वहाँ के वातावरण में इतने घुल गये जैसे वे वहाँ के निवासी हों ।

इस प्रकार खण्डेलवाल जैन समाज उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम के अन्तिम छोर तक बसा हुआ मिलता है। लेकिन यह सब सैंकडो वर्षों की कड़ी मेहनत, अध्यवसाय एवं साहस से हो सका है। इस जाति के नर रत्नो ने अपने घर से लौटा-डोर लेकर निकलने तथा अन्य प्रान्तो में जाकर लाखो करोड़ो की सम्पत्ति अर्जन करने में प्रसिद्धि प्राप्त की है। ढूंढाड़ प्रदेश इनका अपना प्रदेश है, जिसके छोटे-छोटे गाँवों तक मे इस जाति के सदस्य रहते है। जयपुर खण्डेलवाल जैन समाज का प्रमुख नगर है जिसमें पूरी समाज का दसवाँ भाग रहता है।

सरावगी समाज के सैंकडो परिवार यूरोप एवं अमेरिका जाकर बस गये है और वहीं के नागरिक हो गये है। यूरोप मे भी अमेरिका मे ऐसे परिवार अधिक मिलेंगे। अपना नगर छोड़ कर विदेश मे जाकर बसने की प्रवृत्ति बराबर रही है।

□ □ □

अध्याय 4

गोत्रों का इतिहास

84 गोत्र और उनका इतिहास

खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाज 84 गोत्रो में विभाजित है। इन गोत्रों का इतिहास भी उतना ही रोमांचक है जितनी उसकी उत्पत्ति की घटना है। लेकिन इतना अवश्य है कि प्रारम्भ से ही समाज मे गोत्रों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त रही इसीलिये खण्डेलवाल जैन बन्धु अपने नाम के आगे गोत्रों का उपयोग करते रहे है। इन्होने जैन लिखने के स्थान पर गोत्र लिखने को अधिक वरीयता दी। इसका एक कारण यह भी रहा कि जयपुर, अजमेर, इन्दौर जैसे नगरो मे खण्डेलवालों के हजारो परिवार मिलते है और उनमे विभिन्न गोत्र वाले श्रावक रहते है इसलिए एक-दूसरे की पहचान के लिये इस समाज में गोत्रों का उपयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त समाज मे गोत्रो की अधिकता भी एक कारण है। ये आसानी से गोत्रो का उपयोग करने लगे और उसमे उनको कुछ भी कठिनाई प्रतीत नहीं हुई।

इन 84 गोत्रो में वर्तमान में कितने गोत्र वाले परिवार मिलते हैं इसकी निश्चित संख्या बतलाना तो कठिन है फिर भी 25–30 गोत्रो के परिवार तो नहीं मिलते है। जयपुर एवं इन्दौर जैसे नगर जो खण्डेलवाल समाज के प्रमुख केन्द्र हैं जहाँ हजारों की संख्या मे खण्डेलवाल जैन परिवार रहते हैं वहाँ भी सभी गोत्रो के परिवार नही मिलते। इन 84 गोत्रो के अतिरिक्त किसी-किसी गुटके मे यह संख्या 88 तक पहुंच गई है तथा कुछ प्रशस्तियों मे नाम और खण्डेलवाल के अंग से कुछ है लेकिन जिनका नाम 84 गोत्रो में नही मिलता। इसलिए यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ मे तो 84 गोत्र ही रहे होंगे लेकिन बाद में उनकी संख्या मे वृद्धि होती गई हो। इन सब तथ्यों पर हम आगे विचार करेंगे।

ऐसे 14 गोत्रों के नाम और मिले हैं जो खण्डेलवाल जैन समाज के कभी गोत्र थे तथा उनमें से कुछ आज भी मिलते हैं। 84 गोत्रों के नव दीक्षित खण्डेलवाल जैनों की पहिचान, सामाजिक सम्बन्ध, विवाह आदि की दृष्टि से आचार्य जिनसेन ने गांवो

के नामों से गोत्रो की रचना की । लेकिन उनके वंश, कुल एवं कुल देवी के नामों मे कोई परिवर्तन नही किया गया । इससे उनका मूल स्वरूप भी बचा रहा और जैन धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् अपने वश एव कुल के नाम से उनकी पहिचान भी बनी रही । आचार्य जिनसेन ने गोत्रो की रचना करके उनके परिवार की सस्कृति की रक्षा करने मे एक और पहिच न बढ़ा दी गयी जिसने कालान्तर मे परिवार की पहिचान का मुख्य रूप धारण कर लिया ।

खण्डेला नगर सहित खण्डेलगिरि के राज्य में 84 सामन्ती गाँव थे और उनके इनने ही सामन्त थे लेकिन दो गाँवों मे जागीरदार नही थे । अब यह प्रश्न है कि क्या चौरासी गोत्रो की स्थापना एक ही साथ हुई अथवा इसमे कुछ वर्ष लगे । इसमें भी इतिहास लेखको के दो मत है ।

सबसे प्राचीन इतिहास (सम्वत् 1636) मे केवल गोत्रो की उत्पत्ति का विवरण दिया है लेकिन इसका प्रारम्भिक इतिहास नही दिया है ।

प्रथम वे इतिहास लेखक है जिन्होने 84 गोत्रो की स्थापना एक साथ हुई थी ऐसा लिखा है । इसके अनुसार 82 गोत्रो की स्थापना उनके गाँवो के नामो के आधार पर की गई तथा दो गोत्र स्वर्णकारो पर पीछी रख दिये जाने के कारण उनको भी खण्डेलवाल जाति मे सम्मिलित करके उनका बज गोत्र स्थापित किया गया ।

"अर वे सभै गुढा की चौकी देवा लगा जदि राजा बियासी (82) गाँव का आया था तो वे गाँव-गाँव के नामि गोत थाप्या । गोत 82 तो छत्री स्यु हुवा अर गोत 2 सुनार स्यौ हुवा । ज्यो को ब्यौगे । मु मोनै पीछी दीहनी सो तो दीहनी । अब मोको गोत वज्र हथा थाप्या । हाथ माहै हथोडो देख्यो जस्यो । जदि राजा कह्यो जु ऐ दोन्यो ब्याही छै । गोत तौ एक ही थाप्यो छै । जदि दिहाड़ी पूछी । जी कै आमणि दिहाडी छी सु तो आमण्या बज कहाया अर ज्यो कै मोहणा दिहाडी छी सी तो मोहण्या बज कहाया । ई भाति गोत 84 हुवा । जाति खण्डेलवाल खण्डेला स्यु हुवा । वश 24 दिहाडी 24 ज्या का गोत 84 हुवा ।"

सिंघाडे जिनसेन के अपराजित मुनि आय ।
राज कुली चौबीस धरि प्रतिबोध्या फुनि पाय ।
सवत एक सौ एक (101) समै, नगर खडेले न्याय ।
चौरासी श्रावक कुलं।, जैनधर्म उपजाय ।।
भावबा सुबी 13 बीतवार खण्डेलवाल थरप्या ।।

एक अन्य गुटके में गोत्रोत्पत्ति का निम्न प्रकार वर्णन मिलता है—

खण्डेला नै गाव चौरासी लागै । त्या मैं जुदा जुदा ठाकुर चाकरी करें । त्यानै गाव चाकरी दीया । सौ दोय गावा का ठाकुरा कै बेटा न छा सो वह गाव

खण्डेला में ही छा। तो गो गांवा में एक ग्रवसरि मनबाई छापरी···· ···तद बियासी गांवों का तो राजा, सुनार दो मुनि समीप बैठा छा सौ मुनि को वचन प्रणाम कियौ। तदि मुनि पीछी फेरी सो 82 तो क्षत्री हुवा दोय सुनार हुग्रा। भोले पीछी फेरी सौ तदि गोत तो एक ही थाप्यो। फेरी तदि गोत चउरासी हुवा। सुनारा का बज हुवा। तदि राजा कही ऐ दोन्यु ब्याही छै जदि दिहाडी पूछी तदि एक तो ग्रामण कही। दुजा मोहणि कही जदि ग्रामण्या मोहण्या बज कहाया। तदि गोत 84 हुवा दिहाडी 24 ग्रर वस 24।

उक्त मत के ग्रनुसार खण्डेलगिरि एवं उनके सामन्तों को जैन धर्म मे एक साथ दीक्षा दी गयी ग्रौर उसके गोत्रों की संरचना भी एक साथ हुई थी।

दूसरे वे इतिहास लेखक है जिनके ग्रनुसार खण्डेलगिरि एवं उसके सामन्तों ने जैन धर्म में एक साथ दीक्षा न लेकर धीरे-धीरे ली ग्रौर उसी के ग्रनुसार गोत्रो की सरचना हुई।

ख प्रति, ज प्रति एवं द प्रति में गोत्रो की उत्पत्ति एक साथ न होकर उसमें कुछ समय लगा था ऐसा लिखा है। इन पाण्डुलिपियो के ग्रनुसार 14 गोत्र एक साथ स्थापित किये गये तथा शेष 70 गोत्र की स्थापना शनैः शनैः हुई। शाही 14 गोत्रो की स्थापना में भी निम्न प्रकार समय लगा—

1 साह गोत्र	संवत् 102
2. भांवसा गोत्र	संवत् 103
3 पहाड्या गोत्र	सवत् 103
4. पापडीवाल गोत्र	सवत् 104
5. ग्ररडक गोत्र	सवत् 104
6. ग्रहंकारया गोत्र	सवत् 104
7. नरपत्या गोत्र	संवत् 104
8. पाड्या–भोथरया	संवत् 104
9. जलवाण्या	सवत् 104 बैशाख मास
10. दरडोद्या	सवत् 105 ग्रषाढ मास
11. मुलाण्या	संवत् 105 जेठ मास
12. गोत्र राजभद्र	संवत् 105 कार्तिक मास
13. दुकड्यौ	संवत् 106 फागुण मास
14. गोत्र साहबड़ा	सवत् 106 ग्राषाढ मास

उक्त 14 गोत्रो के सम्बन्ध में यद्यपि एक साथ स्थापना करने की बात लिखी है लेकिन उन गोत्रो की स्थापना का सम्वत् ग्रलग-ग्रलग दिया है। इतिहास लेखक ने गोत्रो की स्थापना का निम्न प्रकार इतिहास लिखा है—

"तब राजा ने जिनसेन जी जैन उपदेस दीयो। राजा कबूल कीयो। राजपूत राह छोडि जे राह पकडि जैनी हुवा। अर चोकडदा भाई बेटा इक्यासी गांवा का ठ्वांद छा सो वे भी जैन राह पकडि जैनी हुवा। गांव के नाम गोत कहाया। अर खण्डेला को धर्णी साह हुवो। अर गांवां का धर्णी छा सो तिसा-तिसा नांव पकड्या। चौहाण को राज छो गाव इक्यासी मै। रजपूत सरब लाख 3,00,000 तीन घर जैंनी हुवा और जो चौहाण भाई चौदा छा तिह कै ती समै जैनी हुवा। गोत ठाहंरया त्यांकी चक्रेश्वरी सहाय करी। सो चक्रेश्वरी कुलदेव्या चौहाण भाई चौदा की हुई। सो महावीर जी सौ बरस 490 पाछे जसो भद्र जी लघु शिष्य जिनसेन जी खण्डेले आय गोत ठहराय जैनी कीया। गोत 14 एक समै हुवा।"

ख प्रति–पृष्ठ संख्या 19

प० बख्तराम साह ने भी उक्त मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि आचार्य जिनसेन ने तो 14 ही गोत्रो की स्थापना की थी। शेष गोत्र दूसरे आचार्यों ने स्थापित किये थे।

थापे हैं जिनसेनि तौ चौदह ही कुल गोत।
बहुरि और मुनिवरनु मिल, थापे गोत सुगोत ॥730॥

लेकिन आगे 70 गोत्रो की स्थापना मे कितना समय लगा होगा तथा अन्य किन-किन आचार्यों का इसमें योगदान रहा होगा इसका कोई उल्लेख नही मिलता।

लेखक का मत

हमारे मत के अनुसार भी 84 गोत्रों की स्थापना एक साथ न होकर शनैः शनैः हुई होगी। इसलिये राज दरबार मे 2 स्वर्णकारो का आना, आचार्य जिनसेन द्वारा उनके सिर पर पिच्छी फेर देना तथा उन्हे बज गोत्र देना यह सब निरी-कल्पना मात्र है इसमे सत्य का अंश नही है।

सब पाण्डुलिपियो मे "क" प्रति अधिक प्राचीन है तथा शुद्ध एवं स्पष्ट है। इसी के अनुसार गोत्रो के नाम, नगर का नाम, कुल का नाम एवं कुल देवी का नाम दिया जा रहा है—

क्र.	गोत्र का नाम	नगर का नाम	कुल का नाम	कुलदेवी का नाम
1	2	3	4	5
1	साह	खण्डेला	चौहाण	चक्रेश्वरी
2	पापडीवाल	पापडि	चौहाण	चक्रेश्वरी
3.	भावसा	भावसे/भावसो	चौहाण	चक्रेश्वरी
4.	पाहड्या/पहाडिया	पहाडी	चौहाण	चक्रेश्वरी

1	2	3	4	5
5	दरडौद्या	दरडौद्ये	चौहाण	चक्रेश्वरी
6	नरपत्या	नरपते	सोरई	आमणि
7.	पाड्या भीथर्या	भीथरी	चौहाण	चक्रेश्वरी
8.	मुलण्या	भूलणें	चौहाण	चक्रेश्वरी
9.	वनमाली	वनमाले	चौहाण	चक्रेश्वरी
10	छाबडा/माह्बडा	छाहड	चौहाण	चक्रेश्वरी सं. 1252 मे औरलदेवी पूजने लगे
11.	पीतल्या	पीतले	चौहाण	चक्रेश्वरी
12	गदिया/गदह्या (चूडीवाल गिरधरवाल)	गदहौ	चौहाण	चक्रेश्वरी
13.	चिरकन्या	चिरकनै	चौहाण	चक्रेश्वरी
14.	चादुवाड	चंदवाडी	चदेला	मातणि
15.	अरडक	अरडक	चौहाण	चक्रेश्वरी
16.	मोहनी (मोनी)	मोहनी	सोरई	आमणि
17.	पाटणी	पाटणि	तुवर	आमणि
18.	भूछ/भौच	भूछडी/भूछंड	सोरई	आमणि
19.	बज आमण्या	खण्डेला	क्षत्रिय	आमणि
20.	बज मोहण्या	खण्डेला	"	मोहणि
21.	रारा	रीरौ	ठीमर (सोमवश)	औरलि
22.	राउका	रावकै	ठीमर (सोमवश)	औरलि
23.	रावत्या	रावत्ये	"	"
24.	बिलाला	बडी बिलाली	ठीमर	औरलि
25.	मोदी	मोदे	ठीमर	औरलि
26.	मोठ्या	मोठे	ठीमर	औरलि
27.	बिलाला दुतीय	ल्होडी बिलाली	कुरुवंशी	सोनलि
28.	कोकराजा	कोकरजे	कुरुवंशी	सोनलि
29.	जगराज्या	जगराजे	कुरुवंशी	सोनलि
30.	छाहड	छाहडै	कुरुवंशी	सोनलि
31.	मूलराज	मूलराज	कुरुवशी	सोनलि
32.	दुकड्या	दुकड़े	दुजिल	हेमा
33.	गोतवशी	गोतडी	दुजिल	हेमा
34.	कुलभण्या	कुलभाणै	दुजिल	हेमा

1 2	3	4	5
35. बोरखड्या	बोरखडे	दुजिल	हेमा
36. सुरपत्या	सुरपति	मोहिल	जीगिग
37. दोसी	दोसगिग	राठौड	जमवाय
38. क्षेत्रपाल्या	सेत्रपाले	दुजिल	हेमा
39. लोहग्या	लहुगे	सोरई	श्रामगिग
40. निगोत्या	निगोत्ये	गौड	नांदगिग
41. अजमेरा	अजमेरि	गौड	नादगिग
42. गोधा/ठोल्या	गोधागिग	गौड	नादगिग
43. राजभद्रा	राजभद्रे	सावला	सरस्वती
44 निगद्या	निगदै	मोरई	नादगिग
45. निरपोल्या	निरपोले	गौड	नादगिग
46. मरवाड्या	मरवाडि	गौड	नादगिग
47. कडवागर	कडवागिर	गौड	नादगिग
48 पिगुल्या	पिगुले	चौहाग	चक्रेश्वरी
49. विनाइक्या	विनाइक्ये	गहलोत	चौथि
50. पोटल्या	पोटले	गहलोत	चौथि
51 कासलीवाल	कासली	मोहिल	जीगिग
52. वाकलीवाल	वाकली	मोहिल	जीगिग
53 लुहाड्या	लोहडै	मोरठ/मिरठ	लोसिल
54. लोहट/लावट	लोहटे	मोरठ्या	लोसिल
55. सेठी	सेठौलाय	मोरठ/सोमवशी	लोसिल/पद्मावती
56. पाटोदी	पाटोदीका	तुवर	पद्मावती
57. लटीवाल	लाटवे	सोढा	श्रीदेवी
58. सोगाणी	सोगाणी	कोटेचा सूर्य मोढा	कान्हड
59. गिदोड्या	गिदौडै	सोढा	श्रीदेवी
60 गगवाल	गगवाणी	कुछावा/कुरम	जमवाय
61. साभर्या	साभरि	चौहाग	चक्रेश्वरी
62. झाझरी	झाझरै	कछाहा	जमवाय
63. कटार्या	कटारये	कछाहा	जमवाय
64. हलद्या	हल्दे	मोहिल	जीगिग
65. वैद (पाड्या वैद)	पावडे	सोरई	श्रामगिग
66 टोग्या	टौग्यै	पवार	श्री चावड

1 2	3	4	5
67. बोहरा	बोहरे/बुहारु	सोढा	संतलि
68. काला	कलौवाडी	कुरुवशी	लोहरिण
69. भागड्या	भागडे	ठीमर	ओरलि
70. बंब	बंबाने	सोढा/ठाकुर	मकराय/लाहाणि
71. साखूण्या	साखूणि	सोढा	सकराय
72. दगडा	दगडोदे	सोलकी	आमणि
73. बैनाडा	बनावड	ठीमर	ओरल
74. भूवाल	भूवाल	कुछाहा	जमवाय
75. राजहंस्या	राजहस	मोढा/सोम	मकराय/सरसलि
76 अंहकार्या	अहकारे	मोढा/सोम	सकराय/सरसलि
77. जलभण्या	जलवाये	कुछाहा	जमवाय
78. मोलमर्या	मोलसर	सोढा	मकराय
79. चौधरी	चौधरे	तुंवर/इक्ष्वाकु	पदमावती
80. पापल्या	पापले	सोरई	आमणि
81. भडमाली	भडमाले	सोलकी	आमणि
82. अनोपडा	अनोपडे	चदेला/गौड	मातणि
83. चौबार्या	चौबारे	चौहाण	चक्रेश्वरी
84. भसावड्या	भासावडे	कुरुवशी	सोनिल

अकारादिक्रम से 84 गोत्रों की नामावली

1. अजमेरा
2. अनोपडा
3 अरडक
4. अंहकारया
5. कडवागर
6. कटार्या
7. काला
8. कासलीवाल
9. कुलभण्या
10. कोकराजा
11. गदिया
12. गंगवाल
13. गिदोड्या
14. गोतवशी
15. गोधा-ठोल्या
16. चादुवाड
17. चिरकन्या
18. चौधरी
19. चौबार्या
20. छाबडा
21. छाहड
22. जगराज्या
23. जलभण्या/जलवाण्या
24. झांझरी

25. टोंग्या
26. दगडा
27. दरडोघा
28. दुकड्या
29. दोसी
30. नरपत्या
31. निगद्या
32. निगोत्या
33. निरपोल्या
34. पापडीवाल
35. पापल्या
36. पहाडिया
37. पाटरणी
38. पाटोदी
39. पांड्या-भीथर्या
40. पिंगुल्या
41. पीतल्या
42. पोटल्या
43 बज (ग्रामण्या)
44. बज (मोहण्या)
45. बंब
46. बाकलीवाल
47. बिलाला
48. बिलाला दुतिक
49. बोरखण्ड्या
50. बोहरा
51. बैनाडा
52. भडसाली
53. भसावड्या
54. भागड्या
55. भावसा
56. भूवाल
57. मुलण्या
58. मूछ
59. मूलराज
60. मोठ्या
61. मोदी
62. मोलसर्या
63. राजभद्र
64 राजहंस्या
65. रारा
66. राउका
67. रावत्या
68. लटीवाल
69. लुहाड्या
70. लोहट/लावट
71. लोहग्या
72. वनमाली
73. विनाइक्या
74. वैद
75. सरवाड्या
76. साखूण्या
77. सांभर्या
78. साह
79. सृपत्या
80. सेठी
81. सोगाणी
82. सोहनी/सोनी
83 हलद्या
84. क्षेत्रपाल्या

उक्त गोत्रो के अतिरिक्त विभिन्न इतिहास लेखको ने 84 गोत्र नामावली में जिन जिन गोत्रो को और सम्मिलित किया है उनके नाम निम्न प्रकार है :—

	वंश	ग्राम	देवी	
1. बांदरया	सांखला	बांदरे	मातणि	घ प्रति
2. बिरल्या	सोढा	बिरले	सोनिल	,,
3. ठग	चौहाण	ठठाणँ	ग्रामणि	,,
4. पांवड्या	सोलंकी	पांवडयौ	ग्रामणि	ख प्रति
5. सेठी दूजा	मेरठी	सैठ्यौ	लोहसिल	,,
6. लावठो	मेरठी	लावठो	लोहसिल	,,
7. बबरा	सोढा	बबरो	श्रीदेवी	,,
8. मोल्या	पडियार	मोल्यौ	नांदणि	,,
9. पाड्या	निरवाण	पाड्यौ	सरसलि	,,
10. पाड्या दूजा	ग्रामण्या	पांडयौ	ग्रामणि	,,
11. बिबला	गहलोत	बिबोलै	चौथि	क प्रति
12. बिव	सोम	बिंव	सरस्वती	,,
13. कुरल्या	कुरुवंशी	कुलरा	सोनिल	,,
14. सोहनी	सूर्यवशी	सौलकी	ग्रामणि	च प्रति
15. कीकरवा	—	—	—	,,
16. जेसवाल	—	—	—	,,
17. वावसया	इक्ष्वाकु	वडगूजर	श्रीदेवी	,,
18. निरगन्धा	हरि	दहरया	नादणि	

श्री राजमल बड़जात्या ने अपने इतिहास में निम्न गोत्रो को 84 गोत्रो में गिनाया है जिनकी अन्य गोत्रो से निम्न प्रकार समानता है—

1. बज महाराया	यह सम्भवतः बज मोहण्या का ही दूसरा नाम है।
2. दुकडा	यह दगड़ा गोत्र का नाम हो सकता है।
3. गोलीड़ी	यह सम्भवतः गोतवंशी गोत्र का उद्गम स्थान का नाम है।
4. चिरडक्या	यह सम्भवतः चिरकन्या गोत्र का नाम ही लगता है।
5. सौममसा	
6. चौवाण्या	यह सम्भवतः चौबार्या गोत्र का दूसरा नाम है।
7. मंसाड्या	यह गोत्र मसावड्या का ही दूसरा नाम दिखता है।

8. मागडा	यह गोत्र भांगड्या गोत्र का ही नाम है ।
9. लोहन्या	यह सम्भवत: लोहाड्या गोत्र का ही दूसरा नाम है ।
10. भूंवाल्या	यह भूवाल गोत्र का ही दूसरा नाम दिखता है ।

उक्त गोत्रों के अतिरिक्त जिन गोत्रो का प्रशस्तियों मे उल्लेख मिला है उनके नाम निम्न प्रकार है—

1. साधु गोत्र	—	—	—
2. ठाकुल्यावाम	—	—	—
3. मेलूका	—	—	—
4. नायक	—	—	—
5. खाटड्या	—	—	—
6. सरस्वती गोत्र	—	—	—
7. कुरकुरा	—	—	—
8. बोठवाड	—	—	—
9. काटरावाल	—	—	—
10 भमावड्या	—	—	—
11. बीजुवा	—	—	—
12 काधावाल	—	—	—
13. रिन्धिया	—	—	—
14 सागरिया	—	—	—

इस प्रकार खण्डेलवाल जैन जाति के अब तक 124 गोत्रो के नाम उपलब्ध हो चुके है । हो सकता है कुछ नाम और भी मिल जावे । 84 सख्या की तो प्रसिद्धि रही है । इसलिये प्रत्येक लेखक ने 84 गोत्रो के नाम ही गिनाये है चाहे उनमे कितनी ही विषमता क्यो न हो । ये गोत्र किन-किन आचार्य ने कब स्थापित किये इसका कोई इतिहास नही मिलता । क्योकि अधिकाश लेखको ने 84वें नाम लिख कर ही गोत्रों की नामावली लिखना समाप्त कर दिया ।

84 गोत्रो के परिवारो का एक ही वश नही था किन्तु उनके विभिन्न वंश थे । बख्तराम साह ने 84 गोत्रो के पहिले वश फिर उसमे कुलों का नाम गिनाया है जबकि अन्य पाण्डुलिपियाँ केवल वश के रूप मे गोत्रों का विभाजन किया है । ये कुल वश वे ही हैं जो उस समय राजा खण्डेलगिरि एव वहाँ के सामन्तो के थे ।

वंश का नाम	गोत्रों के नाम
कुछावा/कछावा	गंगवाल, झाझरी, कटार्या, भूवाल, जलवाण्या
कुरुवंश	काला, कोकराजा, छाहड, जगराज्या, बिलाला दुतीय, भसावड्या, मूलराज
कोटेचा सूर्य	सोगाणी
गहलोत	पोटल्या, बिनाइक्या
गौड	अजमेरा, कडवागर, गोधा-ठोल्या, निगोत्या, निरपोल्या, सरवाड्या
चन्देला	अनोपडा, चादुवाड
चौहाण	साह
चौहाण	अरडक, गदिया, चिरकन्या, चौबार्या, छाबडा, दरडोंद्ये, पहाड्या, पांडया-झीथर्या, पापडीवाल, पिगुल्या, पीतल्या, भावसा, मुलण्या, वनमाली, साभर्या
ठीमर	बिलाला, बैनाडा, भागड्या, मोदी, मोठ्या
ठीमर-सोम	रारा-रावका, रावत्या
तुंवर	पाटणी, पाटोदी, चौधरी
दुजिल	कुलभण्या, गोतवशी, दुकड्या, बोरखण्ड्या, क्षेत्रपाल्या
पवार	टोंग्या
मोरठ	लुहाड्या, लोहट
मोरठ सोमवंशी	सेठी
मोहिल	कासलीवाल, बाकलीवाल, मृरपत्या, हलद्या
राठौड	दोसी
साखला	राजभद्रा
क्षत्रिय	बज आमण्या, बज मोहल्या
सोरई	नरपत्या, निगद्या, पापल्या, लौहग्या, वैद, सोनी
सोढा	अहंकार्या, गिदोडया, बब, बोहरा, मोलसर्या, राजहस्या, लटीवाल, साखूण्या
सोलंकी	दगडा, भड़साली
सोरई/सूर्य	भूंछ

उक्त वंशो के गोत्रों मे विभिन्न पाण्डुलिपियों में समानता नही है। हमने उक्त नामावली घ, ज एवं झ पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार की है। लेकिन क, ख प्रति में चौहान वंश के 14 गोत्र माने हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

साह, पापडीवाल, मांवसा, पहाड्या, दरडोद्या, पिंगुल्या, पाड्या–भींथरया, भुलण्या, वनमाली, छाबड़ा, पीतल्या, गदह्या, अरडक, वरकन्या। इसमें लेखक ने चौबारया एवं सांभर्या इन दोनो गोत्रो को चौहाण वंश मे नही माना है।

सभी इतिहास लेखको ने गोत्रो की कुल देवियो के नाम गिनाये है। इन **कुल देवियों** के अनुसार गोत्रो का विभाजन निम्न प्रकार मिलता है—

कुल देवी	**गोत्र**
चक्रेश्वरी राजा खण्डेलगिरि	साह
चक्रेश्वरी	पापडीवाल, मांवसा, दरडोद्या, गदह्या (चूडीवाल), पहाड्या, पाड्या भीथर्या, पिगुल्या, वनमाली, पीतल्या, अरडक, छाबडा, चिरकन्या, सामर्या, चौबार्या, भुलण्या
आमणि	पाटणी, मोच, बज, (आमण्या) सोनी, पापल्या, वैद, लोहग्या, भडमाली, दगडा, नरपत्या
जमवाई	दोसी, गगवाल काटी, भाभरी, कटार्या, जलभण्या
लोमिल पद्मावती	सेठी
मातणि	चादवाड, अनोपडा
औरलि	मोठ्या, रारा, रावका, बिलाला, छाबड़ा, रावत्या, मोदी, भागड्या, बैनाडा
नादणि	(शातनाथनी) गोधा-ठोल्या
नादणि	अजमेरा, निगोत्या, निगद्या, निरपोल्या, सरवाड्या, कडवागर
मोहणि	बज–मोहण्या
पद्मावती	पाटोदी, चउधरी
मोनिल	बिलाला दूजा, कोकराज्या, जगराज्या, मूलराज्या, छाहड, मसावड्या
चउथि	बिनायक्या, पोटल्या

जीरिण	बाकलीवाल, कासलीवाल, सूरपत्या हलद्या
कान्हड कोटेचा	सागाणी
चावड	टोग्या
सैतलि	बोहरा
लोहरिण	काला
लोसिल	लुहाड्या, लोहट
श्रीदेवी	गिदोड्या, लटीवाल
मकराय	माखूण्या, बब, राजहंसा, ग्रहकार्या, मोलसर्या
हेमा	दुकड्या, गोतवशी, कुलभण्या, बोरखड्या, क्षेत्रपाल्या
सरस्वती	राजभद्रा

गांवो के नाम पर गोत्रों का नामकरण

खण्डेला प्रदेश के सामन्तो ने जब सामूहिक रूप मे जैन धर्म को अगीकार किया तो एक दूसरे की पहिचान के लिए गोत्रो की स्थापना की गयी और गांवो के नाम से गोत्रो का नामकरण किया गया। गावो के नाम से ही गोत्र बनाये गये। एक गाव का एक गोत्र रहा जिसमे सारे गांव वाले एक सूत्र मे बध गये और सभी सगोत्रीय बन गये। जैन धर्म को स्वीकार करने वालो मे सभी क्षत्रिय थे। जैन धर्म मे दीक्षित होने वाले स्वय महाराज खण्डेलगिरि थे। इसलिये सर्वप्रथम खण्डेला नगर के नाम से साह गोत्र स्थापित किया गया। यह सबसे प्रमुख गोत्र माना जाने लगा और सभी 84 गोत्रो की सूची मे साह गोत्र का नाम प्रथम स्थान पर लिखा जाने लगा। इसके पश्चात् अन्य गावो के नाम पर भी गोत्रो की स्थापना की गई। इन गांवो के नाम से गोत्रो की सूची निम्न प्रकार है—

1. खण्डेला	साह, बज ग्रामण्या, बज मोहण्या	9. गोधाणी	गोधा
		10. ग्रजमेर	ग्रजमेरा
2. पाटणि	पाटणी	11. दरडोद्यै	दरडोधा
3 पापडि	पापडीवाल	12. गदहो	गदिया-चूडीवाल
4. देसरिण	दोसी	13 पहाडी	पहाड्या
5. सेठीवाल	सेठी[1]	14. मूछडी	मूछ, भोच
6. भावसे	भावसा	15. रीरो	रारा/राउंका
7. चदवाडी	चादुवाड	16. पाटोदीका	पाटोदी
8. मोठे	मोठ्या	17. गगवाणी	गंगवाल

1. सेठी द्वितीय का नाम ग्रलग से गिनाया है "ख प्रति में"

18. झीथरी	पांड्या झीथर्या	46. वनमाले	वनमाली
19. सोहने	सोनी	47. पीतलें	पीतल्या
20. बडी बिलाली	बिलाला[1]	48. अरडकै	अरडक
21. ल्होडी बिलाली	बिलाला दूजा	49. रावत्ये	रावत्या
22. बिनाइक्ये	बिनाइक्या/बिन्दायक्या	50. मोदे	मोदी
23. बाकली	बाकलीवाल	51. कोकराजे	कोकराजा
24. कासली	कासलीवाल	52. जगराजे	जगराज्या
25. पापले	पापल्या	53. मूलराज	मूलराज
26. सोगाणे	सोगाणी	54. छाहडै	छाहड
27. झांझरे	झाझरी	55. दुकडै	दुकड्या
28. कटारे	कटार्या	56. गोतडी	गोतवशी[3]
29. पावडे	पाड्या वंद[2]	57, कुलभागे	कुलभण्या
30. टोग्ये	टोंग्या	58. बोरखडै	बोरखण्ड्या
31. बोहरे	बोहरा	59. सुरपति	सृपत्या
32. कलवाडी	काला	60. चिरकनै	चिरकन्या
33. छाहिड	छाबडा/साहिबडा	61. निगदै	निगद्या
34. लहुगे	लौहग्या	62. निरपोले	निरपोल्या
35. मडसाले	मडसाली	63. सरवाडि	सरवाड्या
36. दरडोदे	दगडा	64. कडवागरी	कडवागर
37. चौधरे	चौधरी	65. सामरि	सामर्या
38. लौहडे	लुहाड्या	66. हलदे	हलद्या
39. पोटले	पोटल्या	67. वनमाले	वनमाली
40. गिदोडै	गिदोडया	68. बबाले	बब
41. सांखुणि	साखूण्या	69. चौबारे	चौबार्या
42. अनोपडे	अनोपडा	70. राजहसै	राजहंस्या
43. निगोत्ये	निगोत्या	71. अंहकारे	अंहकार्या
44. पिगुले	पिगुल्या	72. मसावड	मसावड्या
45. भूलणे	भूलण्या	73. मोलमरये	मोलसर्या

1. जोबनेर के मन्दिर वाली प्रति संख्या "ख" में श्री मूलराज नाम लिखा है।
2. इस गोत्र का नाम "ग" प्रति में नहीं मिलता है।
3. सेठी वुतोक का नाम अलग से गिनाया है "ख" प्रति में।

74. मांगडे	मागड्या	79. जलभाणे/जलवाणे	जलभण्यां
75. लोहटे	लोहट		जलवाण्यां
76. क्षेत्रपाल	क्षेत्रपाल्या	80. बनावड	बैनाडा
77. राजभदे	राजभद्रा	81. लाटवे	लटीवाल
78. भूवाला	भूवाल	82. नरपते	नरपत्या

गोत्रानुसार इतिहास एवं परिचय

1. साह गोत्र

खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाज के 84 गोत्रों में साह गोत्र शाही गोत्र है। यह खण्डेला के महाराजा खण्डेलगिरि का गोत्र है जो उन्हे जैन धर्म में दीक्षित करने तथा अहिंसा धर्म के परिपालन की प्रतिज्ञा लेने के पश्चात् दिया गया था। उन्हे खण्डेलवाल जैन जाति का प्रथम महापुरुष होने तथा साह गोत्रीय कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे चौहाण राजपूत थे। सोम उनका वंश था। खण्डेला उनका नगर एवं चक्रेश्वरी देवी उनकी कुल देवी थी। उनको विक्रम सम्वत् 102 मे दीक्षित किया गया।

साह गोत्र का पर्याप्त इतिहास मिलता है। सबसे प्राचीन उल्लेख सम्वत् 112 का मिलता है जब खण्डेला नगर के श्रीपाल साह ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। इसी सम्वत् का एक लेख सावर (राज.) की पहाड़ी पर अंकित है। इसके पश्चात् खंडेला नगर मे ही साह खडगसिंह ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी थी जिसका उल्लेख प्रतिष्ठा पाण्डुलिपियों में मिलता है। सम्वत् 1052 में माह सुदी 13 के दिन फलु साह ने घटयाली में पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा की विधिवत् प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी। राजोर (हाड़ौती) में भैसों साह हुए जिन्होने सम्वत् 1112 मे आबू मे शिखरबन्द मन्दिर बनवाये थे। ग्वालियर की भट्टारकीय गादी पर सवत् 1264 में बसन्तकीर्ति भट्टारक हुए थे वे साह गोत्रीय श्रावक थे।[1] सम्वत् 1545 मे परबत साह द्वारा परबतसर नगर बसाने का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात् संवत् 1582 से लेकर संवत् 1891 तक के पच्चीस से अधिक लेख मिलते है जिनमे साह गोत्रीय श्रावको द्वारा सम्पन्न पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, पाण्डुलिपियो का लेखन एवं उनको भट्टारको तथा उनके शिष्यों को भेंट आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। जयपुर में साह गोत्र में पं० दीपचन्द साह,

---

1. **खण्डेलवाल सरावगियों के जागा के रिकार्ड के अनुसार।**

पं० बख्तराम साह, पं० सेवाराम साह जैसे विद्वान हुए जिन्होंने जैन साहित्य की महान् सेवा की थी।[1]

जयपुर के साह गोत्री श्री गेन्दीलाल जी ने अपनी पूरी वशावली प्रकाशित की है उनमें पुराने सरकारी रेकार्ड के आधार पर निम्न लेख दिया हुआ है।

"खण्डेले जैनी हुआ तीको अहवाल सम्वत् 110 के साल खडेलगिरि चौहाण जैनी हुवा जिनसेनाचार्य जी का उपदेश सूं राजा को गोत्र साह कहायो पीछे सवत् 782 की साल खण्डेलो छुट्यो अभैराम जी हीरानन्द जी जात्रा गिरनार जी रिखबदेव जी की कर चीत्तौड रावल रतनसी सू मिल्या। गाव इजारे किया। पीछे सम्वत् 992 के साल ऊंठा सू रायमल जी ऊठया सो घटाली आया। कीलणदी बालणदेव सोलखी घटाली का ठाकुर त्यासु गाव इजारे लिया स 1656 की साल छाजू साहजी घटयाली सूं चाटसू आया अर मानसिह से मिला।

प्रथम साह उडहरण जी ताको बेटो दूल्ह जी तीको बेटो लाखो तीको खीवसी तीको काल्हा जी तीको बेटो सरवण तीको वेटो बोपतजी तीको बेटो छाजू साह घटावली सूं विसर कियो। तो पाछे महाराजधिराज श्री मानसिह जी बुलाया तदि महाराजजी सैं मिल्यो तो परि म्हेला कोट को कस्बा चाकसू को काढी कोटडी बधाय बास करायो ग्रौर जमीन इनाम मे बीघा 500 बक्सी अर सो मुरातिब बकस्यो। उक्त रेकार्ड से यह स्पष्ट है कि विक्रमीय द्वितीय शताब्दी मे खण्डेला नगर के राजा ने जैन धर्म स्वीकार किया। साह परिवार सवत् 782 तक खण्डेला मे ही रहा फिर वहाँ से चित्तौड, घटियाली रहने के पश्चात् उसी परिवार के छाजू साह ने सम्वत् 1656 मे आमेर के महाराज मानसिह जी से चाकसू मे भेट की इसके पश्चात् तो वर्तमान पीढ़ी तक पूरे साह परिवार की वशावली उपलब्ध होती है।

उक्त लेख मे सम्वत् 110 मे साह गोत्र की स्थापना का उल्लेख मिलता है जो सही प्रतीत नही होता क्योकि सवत् 110 मे तो आचार्य जिनसेन जीवित भी नही थे तथा साह गोत्र राजा खण्डेलगिरि को दिया हुआ गोत्र है इसलिए यह सम्वत् 102 होना चाहिए। जबकि अन्य पाडुलिपियो में सम्वत् 101 लिखा हुआ है। लेकिन घटियाली मे सम्वत् 992 मे जो आने का उल्लेख मिलता है वह सवत् 1052 के फुलु साह के लेख से मेल खाता है। घटियाली मे पहिले साह गोत्रीय श्रावको के 350 घर थे। "साह घटियाली माखला कोडीकार पचास" जैसी कुछ लोकोक्तियाँ भी मिलती है।

---

1. वही।
2. भट्टारक पट्टावली–हमारे सग्रह में।
3. इसके लिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रथ सूचियां, प्रशस्ति संग्रह (डॉ० कासलीवाल द्वारा सम्पादित) देखिये।

साह गोत्र इतना लोकप्रिय हुआ कि दूसरे गोत्र वाले भी अपने नाम के पूर्व साह शब्द लगाने लगे तथा साह, साहु शब्द प्रतिष्ठा एवं समृद्धि का सूचक बन गया।

2. पापड़ीवाल

वंश सोम, कुल चौहान, कुल देवी चक्रेश्वरी, ग्राम पापड़े (पापडदा)। कोई सूरजमाता को भी कुल देवी मानते है।

सर्वप्रथम ठाकुर सोमसिह जी ने सवत् 104 मे श्रावक व्रत ग्रहण किये तत्पश्चात् उनके परिवार का गोत्र पापडीवाल रखा गया। इस गोत्र मे कितनी ही महान् विभूतियाँ हुई। लाडनूं मे मारीज पापडीवाल ने सवत् 606 मे विशाल पच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी थी। इसी भारीच पापडीवाल ने संवत् 616 मे लाडनूं मे ही दूसरी प्रतिष्ठा करवायी थी। दिल्ली के सवत् 792 मे अनगपाल तंवर के मुसद्दी पापडीवाल गोत्रीय गिरधर थे। इसके पश्चात् जब चौहानो का राज आया तो तवरो के प्रधान अमात्य सावलदास पापडीवाल एव मोठराज पापडीवाल को ही दीवान बनाया गया।

कुतुबुद्दीन बादशाह के समय चादो शाह एव नादो शाह सरकारी टकसाली थे। एक बार बादशाह ने दिगम्बरो एवं श्वेताम्बरो मे कुछ उल्लेखनीय कार्य करने को कहा जिसमे नाम अमर हो सके। दोनो ने गिरनार जी का संघ निकालने का विचार किया। जब उन्होने अपनी माँ से पूछा कि उनका नाम किस प्रकार ऊँचा रहे। माँ ने सलाह दी कि तुम लोग टकसाली हो धन की कोई कमी नही है इसलिए सोने की ध्वजा बनाकर गिरनार जी पर चढाओ। इसके पश्चात् 6 महिने तक सुनारो को घर मे बिठाकर सात कोश लम्बी स्वर्ण पत्रो की ध्वजा बनवायी तथा उसे गिरनार जी पर चढाई। इसके बाद से गिरनार जी पर श्वेताम्बर समाज की ध्वजा चढना बन्द हो गया। ये दोनो भाई पापडीवाल थे।

दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह के प्रधान अमात्य चादा एव गूजर दोनो पापडीवाल थे। भट्टारक प्रभाचन्द को उन्होने ही दिल्ली मे बुलाया था तथा राघो चेतन से शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त कर फिरोजशाह एव उनकी मलिका को प्रभावित किया था।[1] भट्टारक प्रभाचन्द्र ही समाज के आग्रह को देखते हुए लगोट धारण करके मलिका को दर्शन देने गये थे। इस सब घटना का पं बख्तराम के बुद्धि विलास मे विस्तृत वर्णन मिलता है।[2]

---

1. **भट्टारक पट्टावली-हमारे संग्रह में।**
2. **दिल्ली के पति पैराजसाहि, चांदा गूजर परधान ताहि।**
   दोऊ भइया पापडीवाल, तिनकी चित्त उपजी रसाल।।

संवत् 1548 में विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह के आयोजक जीवराज पापडीवाल थे। वे मुंडासा शहर के रहने वाले थे। देश के अधिकांश दिगम्बर जैन मन्दिरों में जीवराज पापडीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान की हुई हैं।

त्रिलोक दर्पण के रचयिता खडगसेन पापडीवाल गोत्रीय विद्वान थे। वे नारनोल के निवासी थे। सवत् 1713 में उन्होने लाहोर में इस ग्रन्थ की रचना समाप्त की थी।[1]

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी की भट्टारकीय गादी के भट्टारक महेन्द्र कीर्ति जी (सम्वत् 1792–1815) पापडीवाल जातीय श्रावक थे। उनका पट्टाभिषेक देहली मे हुआ था।[2]

जयपुर मे पापडीवाल गोत्रीय श्रावको के पर्याप्त संख्या में परिवार मिलते है।

3. भांवसा

खण्डेलवाल जैनो मे भावसा गोत्र अपनी जनसख्या, सामाजिक एव साहित्यिक सेवा के लिये पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त गोत्र है। भावसा गोत्र के दूसरे नाम भौंसा, बडजात्या, गोदीका एव मालावत है, जो स्थानीय कारणो से उस नाम के धारी बन गये है। इस गोत्र के प्रथम श्रावक भावसिह जी भावसे ग्राम के जागीरदार थे। जिन्होंने संवत् 103 मे आचार्य जिनसेन मे श्रावक व्रत ग्रहण किये थे। इनका सोमवंश था तथा चौहान कुल था। चक्रेश्वरी देवी इनकी कुल देवी मानी जाती है। भावसा गोत्र होने के कारण जब इनको बोलचाल मे भैसा कहा जाने लगा तो इन्होने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि वे राज परिवार के हैं। इसलिये उनकी जाति भी बडी है। इसके पश्चात् भावसा गोत्र को बडजात्या भी कहा जाने लगा। संवत् 1052 मे लाडनू मे सोनपाल जो सौठल जी बडजात्या ने पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी थी।

सवत् 1444 मे धर्मचन्द भांवसा चाकसू वालो की बहू चादवाडो की बेटी थी। इसने अपने लड़के का लालन पालन शहर मे आकर किया। इसलिये उनको गोदीका कहा जाने लगा। इसी तरह सवत् 1658 मे संघई माला जी भावसा बड़े पराक्रमी श्रावक हुए थे इसलिये उनके वश को मालावत कहा जाने लगा। जयपुर में मालावतो के बहुत से परिवार है। जयपुर मे बगडा भी भांवसा गोत्रीय है जबकि अन्यत्र कासलीवाल, लुहाडिया को बगडा कहा जाता है।

---

1. प्रशस्ति सग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ संख्या 216–219।
2. वीर शासन के प्रभावक आचार्य, पृष्ठ 236।

तेरहपंथ के संस्थापक सांगानेर निवासी अमरा भौंसा कहलाते थे। जबकि उन्ही के पुत्र जोधराज भौंसा न लिखकर गोदीका लिखते थे। जोधराज बड़े भारी पंडित एवं कवि थे। इन्होने संवत् 1724 में सम्यकत्व कौमुदी की रचना समाप्त की थी। महापंडित टोडरमल जी (1780-1925) गोदीका गोत्रीय श्रावक थे। इनके पुत्र गुमानीराम जी भी अच्छे वक्ता, विद्वान एवं गुमानपंथ के सस्थापक थे।

राजस्थान के शास्त्र मण्डारों में सैकड़ों ऐसी पाण्डुलिपियां मिलेंगी जो भांवसा/गोदीका अथवा बडजात्या गोत्रीय श्रावकों ने प्रतिलिपि करवा कर भट्टारको अथवा साधु साध्वियो को पठनार्थ भेंट की थी।

प्रतिष्ठित पाठ के अनुसार संवत् 606 में वीरचन्द भौंसा ने भांवसे ग्राम में तथा संवत् 1352 में लाडनू में थेला जी सुरजन भौंसा ने विशाल पच कल्याण प्रतिष्ठा करवायी थी।

सवत् 1542 में हिसार मे भौंसा गोत्रीय संघपति रुल्हा एवं उनकी पत्नी जही बहुत बडे ख्याति प्राप्त श्रावक थे। उनके पुत्र शान्तिराम नेमिदास ने प. मेधावी के धर्म सग्रह श्रावकाचार की प्रति करवाकर शास्त्र मण्डार मे विराजमान की थी।

नागौर (नागपुर) में साहे सोनू एवं उनका परिवार धार्मिक वृत्ति वाले थे। इन्ही के वशज सा. भीवा एवं उनकी पत्नी भीवसादे ने सुकुमाल चरित्र की पाण्डुलिपि तैयार करवायी थी तथा संवत् 1756 मे नागौर मे जीवराज भौंसा अपनी समाज के प्रभावशाली श्रावक थे।

संवत् 1658 मे डालू मालू ने दूदू, अराई, चोरु, कलवाड एवं साखूण में विशाल मन्दिरो का निर्माण करवाकर पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी थी। इसके बाद वे संघी कहलाने लगे।

जयपुर में संघी झूथाराम एव उनके पूर्वज भौंसा गोत्रीय श्रावक थे। संघी झूथाराम अपने समय के अत्यधिक प्रभावशाली दीवान थे। जयपुर मे भौंसा/बडजात्या/गोदीका/मालावत बगडा सभी परिवार अच्छी संख्या मे है। इन गोत्रो के सभी नगरो एवं गावों में परिवार मिलते है।

4 पहाडया/पहाडिया

गोत्र पहाडिया/वंश सोम/कुल चौहान/कुलदेवी चक्रेश्वरी ग्राम- पहाडी मूल पुरुष-पूरणचन्द जी अपर नाम पहाडसिह जी। प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार सवत् 182

में इस गोत्र के श्री पोखर जी पहाड्या ने खण्डेले में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया था । प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक यशकीर्ति थे ।

पहाडिया गोत्र में 16वी शताब्दी मे घेल्ह कवि हुए जिनका बुद्धि प्रकाश एवं विशालकीर्ति गीत जैसी लघु रचनायें प्रकाश मे आ चुकी है । इन्ही के सुपुत्र थे ठक्कुरसी जो अपभ्रंश एवं हिन्दी के अच्छे कवि थे । ठक्कुरसी का विस्तृत परिचय श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के द्वितीय पुष्प मे दिया गया है । ये चम्पावती नगरी के रहने वाले थे ।

इन्ही के सगोत्रीय अर्जुन एव उनकी भार्या केलुई ने महाकवि पुष्पदन्त के णायकुमार चरिउ की प्रतिलिपि करवाने का यश प्राप्त किया था । 16वी शताब्दी मे होने वाले साह ऊधा एवं उनकी धर्म पत्नी लाडा ने मिलकर अपभ्रंश रचना श्रीधर द्वारा रचित पासणाह चरिउ की पाण्डुलिपि तैयार करवाकर नागौर मे मुनि धर्मचन्द को भेट की थी ।

पहाडिया गोत्र मे और भी विभूतियाँ हो चुकी है । दिगम्बर जैन अ. क्षेत्र श्री महावीरजी के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (स 1822 से 1852) पहाडिया गोत्रीय थे ।[1]

साभर के बडा मन्दिर मे भगवान पार्श्वनाथ की एक खड्गासन मूर्ति है । इस मूलनायक प्रतिमा को संवत् 1509 मे पहाडिया गोत्रीय श्रावक मोहला एव उसके परिवार ने प्रतिष्ठित करवायी थी ।[2] जयपुर मे चौकडी मोदीखाना मे पहाडियों का भव्य मन्दिर है, जिसमे सवत् 1502 मे प्रतिष्ठित धातु की चौबीसी विराजमान है ।

सवत् 1534 मे साह तेजा पहाडिया ने सम्यक् चारित्र यत्र की स्थापना की जो टोडारायसिह के आदिनाथ मन्दिर मे विराजमान है ।

टोक के श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर मे धातु की चौबीसी है जो अजमेर नगर के सा विमल पहाडिया एव उसके परिवार द्वारा प्रतिष्ठित है । यह चौबीसी सवत् 1660 मे प्रतिष्ठित हुई थी । यह प्रतिमा मन्दिर मे मूलनायक प्रतिमा है ।

जयपुर के चौकडी मोदीखाना मे पहाडिया गोत्रीय श्रावको द्वारा निर्मित मन्दिर है । जिसमे सवत् 1502 मे प्रतिष्ठित चौबीसी सघपति बामदेव एव उसके पुत्र एव परिवार ने मिलकर इस मूर्ति को विराजमान करने का श्रेय प्राप्त किया ।

---

1. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग 3 पृष्ठ 69
2. लेख सग्रह में भाग 3 पृष्ठ संख्या 532

संवाधिपति वामदेव पहाडिया गोत्रीय श्रावक थे । संवत् 1813 में बानूडा के पहाड्या गोत्रीय परिवार सीकर ग्राकर रहने लगे थे । उनके परिवार ही भरत्या कहलाते है । सीकर में भरत्यों का एक ग्रलग ही मोहल्ला है जो सभी पहाड्या है ।

5. पांड्या

गोत्र—पांड्या/वश—सोम 'कुल चौहान/कुलदेवी—चक्रेश्वरी । ग्राम का नाम भीथरै ।

पहिले इस गोत्र का नाम पाड्या भीथर्‌या था लेकिन बाद में यह केवल पांड्या ही रह गया । इसका मूल कारण इस गोत्र की उत्पत्ति भीथर्‌या ग्राम में हुई थी तथा इसके प्रथम पुरुष भाभाराम जी थे, जिन्होने सवत् 104 में ग्राचार्य जिनसेन से श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

संवत् 1211 में मारोठ के शासक रामसिंह चंदेल थे । उनके पश्चात् महासिंह जी गौड ने सत्ता पाई । उनके बाद रघुनाथसिंह जी मेरक्या ने सत्ता प्राप्त की । इनके जाबूशाह जी पांड्या कामदार हुए । उनको शाह की पदवी दी गई । तब से मारोठ के पाड्या शाह पाड्या कहलाते है ।

नरायणा (जयपुर) के मन्दिर में एक श्वेतपाषाण की चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रतिमा है जिसकी 13वी शताब्दी में साहराम पाड्या ने प्रतिष्ठा करायी थी । प्रतिष्ठा पट्टावली के ग्रनुसार सवत् 1395 मे पाड्या जगमाल ने नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति विराजमान की थी । इसी तरह जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की धातु की पदमासन मूर्ति है जिसे पाड्या गोत्रीय साह नीतू ने सवत् 1502 मे प्रतिष्ठित करायी थी ।

पाण्ड्या गोत्रीय श्रावको द्वारा प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करवाने में भी बहुत रुचि ली गयी थी । जयपुर के पाटोदी के मन्दिर मे ज्ञानकीर्ति के एक यशोधर चरित्र की पाण्डुलिपि है जिसे मौजमाबाद के पाण्ड्या गोत्रीय बोहिथ ने प्रतिलिपि करवाकर भट्टारक चन्द्रकीर्ति को भेंट मे प्रदान की थी । ये वे भट्टारक है जिन्होने सवत् 1664 मे मौजमाबाद मे विशाल पच कल्याणक महोत्सव का विधान करवाया था ।

ग्रामेर शास्त्र भण्डार मे पडित जयमित्रहल के ग्रपभ्रंश भाषा के काव्य बड्ढमाण चरिउ की सवत् 1627 की एक पाण्डुलिपि है जिसे बाजू पाण्ड्या के पुत्र लानू ने ब्रह्म सोम के लिये तैयार करवायी थी । प्रशस्ति से पता चलता है कि लानू पाण्ड्या चारो ही प्रकार के दान देने में ग्रपने समय के विख्यात श्रावक थे ।[1]

---

1. **प्रशस्ति संग्रह–डा. कासलीवाल–पृष्ठ संख्या 169**

पाण्ड्या गोत्र में प्रशासक अधिक हुए है। जयपुर मे तो दीवान राव कृपाराम जी पाण्ड्या (1780–1790), मगतराम जी पाण्ड्या (1792–1800), राव फतेहराम जी पाण्ड्या (1790–1831)), भवानीराम पाड्या पुत्र फतेहराम (1843–1856) आदि पाण्ड्या गोत्र वाले श्रावक एक के बाद दूसरे जयपुर राज्य के दीवान होते रहे। जयपुर मे एक मन्दिर चपाराम जी पाण्ड्या के नाम से प्रसिद्ध है जो चौकडी मोदीखाना मे आचार्यों का रास्ता मे स्थित है।

मारोठ मे सं 1794 मे रामसिह जी पाण्ड्या ने विशाल प्रतिष्ठा करायी थी, वे इसी पाण्ड्या कुल के भूषण थे।

6. छाबड़ा

इस गोत्र का प्राचीन नाम साबडा या साहबडा भी मिलता है। प्रशस्तियो में भी छाबडा के स्थान पर साहबडा गोत्र का प्रयोग किया गया है। छाबडा गोत्र का वश सोम, कुल चौहान, देवी चक्रेश्वरी, ग्राम का नाम सहाबडी है। इस गोत्र के मूल पुरुष का नाम माहिमल जी[1] है।

ख प्रति के अनुसार छाबडा गोत्र वाले श्रावको को "आठ चौदसि चाकी फरिजे नही सो आठै को दिनि चाकी फेरी मो हाथ मो हाथली लागी। खेलवा लागी। कही जो म्हारो दिन पूजनीक मो या मूनै फेरी। अब जदि छोडू जो दूजो साहबडो महारा वंस को और कुलदेव्या पूजे तदि मो औरल पूजे लागा सवत् 1444 का सौ चक्रेश्वरी बरजनीक हुई। अर्थात् छाबडा गोत्र वाले श्रावको ने सवत् 1444 चक्रेश्वरी देवी के स्थान पर ओरिल देवी को अपनी कुल देवी स्वीकार किया।

खण्डेले के पश्चात् छाबडा गोत्र वाले परिवार सीकर की ओर बढे और वही बस गये। इस गोत्र वाले श्रावको ने धर्म और सस्कृति की बहुत बडी सेवा की है जिसका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थ प्रशस्तियो एव शिलालेखो मे मिलता है। एक लेख के अनुसार सवत् 782 मे छाबडा गोत्र वाले परिवार रेवासा (सीकर) में आकर बस गये। वहा छाबडा परिवार मे ओरल एव गौरव नाम की दो सतियाँ हुई। इसके पूर्व इस गोत्र वाले साह-बडा (साबडा) कहलाते थे। लेकिन इसके पश्चात् ये छाबडा कहलाने लगें। संवत् 1268 मे होने वाले भट्टारक शांतिकीर्ति जी छाबडा गोत्रीय श्रावक थे।[2] इसी तरह सवत् 1586 मे होने वाले भट्टारक भुवन

---

1. इनका नाम सबलसिह भी मिलता है।
2. भट्टारक पट्टावली।

कीर्ति एवं संवत् 1611 मे होने वाले भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र भी छाबड़ा गोत्रीय श्रावक थे।[1]

टोडारायसिह मे भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधिका संवत् 1589 फागुन सुदी 9 को कालू छाबडा के पुत्र वेणू छाबडा ने बनवा कर उसे प्रतिष्ठित किया था। इसी छाबड़ा परिवार ने सवत् 1593 मे आवा मे बहुत बड़ी प्रतिष्ठा करवा कर मन्दिर में शान्तिनाथ स्वामी की एक विशाल प्रतिमा स्थापित की थी। संवत् 1658 मे मोजमाबाद में नेमदास छाबडा ने मन्दिर मे एक यन्त्र विराजमान किया था।

जयपुर में छाबडा गोत्र वाले कितने ही दीवान हुए जिनमें दीवान बालचन्द छाबडा, दीवान रामचन्द्र छाबडा, जयचन्द छाबडा, स्योजीलाल छाबड़ा के नाम उल्लेखनीय है। इसी तरह सीकर मे राव राजा के कितने ही छाबड़ा गोत्रीय दीवान होते रहे। जिनमे प्रथम दीवान सहजराम छाबड़ा एवं अन्तिम दीवान केसरी मल जी हुए।

जयपुर के पडितो मे पं० देवीसिह छाबड़ा, पं० जयचन्द छाबड़ा के नाम उल्लेखनीय हे। सीकर, राणोली आदि मे छाबडा गोत्रीय श्रावकों की सबसे अधिक संख्या है।

7. गदिया

इस गोत्र का नाम गदैया एवं गदहया भी प्रसिद्ध है। इसका वंश सूर्य है, कुल सोलंकी, कुल देवी आमणि है। लेकिन क प्रति में इस गोत्र का वंश चौहाण एवं कुल देवी चक्रेश्वरी दी गई है। यह गोत्र प्रथम 14 गोत्रों मे सम्मिलित है। बुद्धि विलास में भी सोलकी कुल एव आमिणि देवी गिनायी गयी है। इस गोत्र के मूल पुरुष ठाकुर राजसिह है जिन्होंने सर्वप्रथम श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे।

एक जनश्रुति के अनुसार गदिया गोत्र की उत्पत्ति अजमेर जिले में स्थित "वीर" ग्राम से हुई थी। जहाँ-जहाँ भी गदिया गोत्र वाले मिलेंगे तो वे सब "वीर" ग्राम से ही गये हुये है। यदि जनश्रुति सही है तो खण्डेला राज्य उस समय अजमेर तक फैला हुआ था।

चूडीवाल एवं गिरधरवाल गोत्र भी इसी गोत्र के दूसरे नाम है। नागौर की ओर गदह्या चूडीवाल कहलाते है तथा भरतपुर, बयाना, आगरा की ओर गिरधरवाल भी कहते है। गदिया गोत्र के परिवार अजमेर जिले में पर्याप्त संख्या मे मिलते हैं।

---

1. मूर्ति लेख संग्रह, द्वितीय भाग, पृष्ठ संख्या 345।

8. चांदुवाड

चांदुवाड गोत्र की उत्पत्ति चंदवाडी गाव मे हुई। इस गोत्र का वंश चंदेल एवं कुलदेवी मातणि मानी गयी है। क प्रति मे वश का नाम चण्डे दिया हुआ है। पं. बख्तराम ने अपने वृद्धि विलास मे चादुवाड गोत्र के दो भेद किये है। एक सोमवशी एव दूसरा कुरुवशी। लेकिन मातणि कुलदेवी दोनो की एक ही है।

चादुवाड भेद द्वै मेल, इक कुरुवशी कुल चदेल।
इक सोमवंश कुल चावडा, दोउ मातणि पूजे खडा ॥755॥

चादुवाड गोत्रीय श्रावको द्वारा किये गये प्रतिष्ठा आदि कार्यों का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। सबसे प्रथम उल्लेख सवत् 1272 माघ शुक्ला पचमी को आयोजित पच कल्याणक प्रतिष्ठा का है जिसमे खडार नगर मे वहाँ के पूरे पहाड पर ही प्रतिमायें विराजमान करके पूरे पहाड की ही प्रतिष्ठा करायी थी।[1] प्रतिष्ठाकारक थे बालमाई पलवीसल चादवाड जो रणथम्भौर के रहने वाले थे। वीसल चादुवाड की पत्नी का नाम भक्त था। सवत् 1424 माघ सुदी 1 को रतन जी चादुवाड ने शेरपुर मे प्रतिष्ठा करवायी थी। इसी उपलक्ष मे इन्हे सघी की पदवी प्रदान की गयी।

सवत् 1662 मे साँगानेर में होने वाले साह कल्याण चादुवाड एव उनकी पत्नी कल्याणदे ने जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण की पाण्डुलिपि करवा कर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेट की थी। सवत् 1749 मे लक्ष्मीचन्द चादुवाड ने श्रेणिक चरित्र की रचना समाप्त की थी।[2]

चादवाड गोत्रीय श्रावको की अन्य गतिविधियाँ बहुत कम देखने मे आयी है। जयपुर मे चादुवाडो के पर्याप्त सख्या मे परिवार रहते है। महाराष्ट्र मे चादुवाड चाँदीवाल कहलाते है। नागौर मे चादुवाड मच्छी कहलाते है। इसी नाम से वहाँ बाजार भी है।

9. सोनी

सोनी गोत्रीय श्रावको का वंश सोरई/सूर्य, कुल सोलकी, कुलदेवी आमणि ग्राम सोहनै/सोनपुर एव मूल पुरुष ठाकर जैतसिह के पुत्र शिवसिह माने जाते है जिन्होंने सर्व प्रथम श्रावक धर्म स्वीकार किया था।

इस गोत्र का प्राचीन नाम सोहनी था लेकिन बाद मे इसे सोनी कहा जाने लगा। ख प्रति मे इस गोत्र के सम्बन्ध में निम्न प्रकार विवरण मिलता है :—

---

1. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ सख्या 76
2. प्रशस्ति सग्रह—पृष्ठ सख्या 273

"गोत्र सोहनी उतन सोनी बस सोलंकी, कुल देव्या श्रामरिण । सौ गांव के नाई सोरई गीत छै सोनी भाषा छै । कुल देव्या श्रामणि । श्रर सारंग सोनी प्रतिष्ठा 24 सामरे कराई । सवत् 999 बैशाख सुदी 3 वारे माघचन्द्र के । श्रर खडगु सोनी खण्डेला मे सतुकार वरस 12 ताई दीयो संवत् 1112 का साल मैं ।

इस प्रकार उक्त कथन के श्रनुसार इस गोत्र मे संवत् 999 मे सारग सोनी ने सामर मे 24 बार पचकल्याणक प्रतिष्ठाये करवाई तथा खडग सोनी ने सवत् 1112 मे खडेला मे 12 वर्ष तक विशाल भोज दिया ।

राजस्थान के विभिन्न मन्दिरो मे इस गोत्रीय श्रावको द्वारा संवत् 1641, 1651 एव 1658 में प्रतिष्ठित कितने ही यंत्र मिलते हैं । संवत् 1612 मे सोनी गोत्रीय बाई तील्ह ने नवकार श्रावकाचार की प्रतिलिपि करवाकर श्रायिका विजय श्री को भेंट की थी ।[1] नागौर के भट्टारक रत्नकीर्ति सोनी गोत्रीय श्रावक थे ।

सवत् 1700 मे मनोहर दास सोनी हुए जिन्होने धर्म परीक्षा भाषा लिखने का श्रेय प्राप्त किया था ।

सवत् 1800 मे जयपुर मे पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का निर्माण प्रागदास सोनी ने करवाया था । इसीलिये वह सोनियो का मन्दिर कहलाता है । जयपुर मे दयाराम सोनी प्रसिद्ध प्रतिलिपिकार हो गये है जिनके लिपि किये हुए पचासो ग्रंथ मिलते है । अजमेर का सोनी परिवार समाज का अत्यधिक समादृत परिवार माना जाता है ।

10 पाटनी

गोत्र–पाटनी, वश सोम, कुल तंवर सोलंकी/कुल देवी–श्रामरिण । प्रथम पुरुष–पृथ्वीराजसिह तवर । बाहरण बलध लादे तो दुखी होय गाय बेचे तो दुखी होय । ग्राम–पाटरिण । पाटनी गोत्र–कोठारी, तुरक्या पाटनी, खिन्दूका, बेगस्या, सागाका, मुशरफ, इन्डिया बैंक वाले भी पाटनी है । वैसे पुर पट्टन से पाटनी गोत्र वाले कहलाते है ।

भाट के श्रनुसार पाटनी गोत्र के श्रावक देवी की पूजन श्रष्टमी से दशमी तक करते थे । देवी की सवारी सिह की थी ।

पाटन से संवत् 555 मे मोलाराम जी पाटनी झुन्झुनू श्राये । उनके पुत्र भारमल

---

1. ग्रंथ सूची भाग चौथा पृष्ठ 65
2. ग्रंथ सूची भाग चौथा पृष्ठ 357
3. ग्रंथ सूची भाग–3 पृष्ठ संख्या 144 ।

झुन्झुनू के राजा रामसिह चदेल के दीवान हो गये थे । इसके बाद क्रमशः हाथीराम जी, रेडाजी, सोमचन्द एव श्यामदास हुए । उनके पुत्र अभयराज और बस्तीराम हुए । झुन्झुनू के राजा के यहा लडकी के विवाह के अवसर पर जडी (जरी) थान मंगवाये लेकिन अभयराज ने थान देने से इन्कार कर दिया । राजा ने बाहरी आदमियो के जरिये जडी के थान दाम देकर मगवा लिये । इसके पश्चात् राजा ने दीवान को बुलाकर फटकार लगायी तथा पूरे परिवार को किले मे कैद कर लिया । किसी तरह दोनो भाई कैद से निकल कर दिल्ली चले आये तथा बादशाह के यहा अभयराज कोठारी का काम करने लगे सो कोठारी कहलाये । इनके भाई बस्तीराम भी साथ मे रहते थे । वे शरीर मे सुडौल एवं अपूर्व सुन्दर थे । बादशाह की लडकी मीर सुल्तानी उस पर मोहित हो गयी तथा उसने अपनी मा से बस्तीराम के ही साथ शादी करने की बात कही । बेगम ने यह बात बादशाह से कही । तब बादशाह ने अभयराज और बस्तीराम को बुलाया । बुलवा कर वचन लिया और कहा कि तुम हमारे रिश्तेदार हो तथा बस्तीराम की शादी शाहजादी से होगी तब इन दोनो ने अपने परिवार को जो नरायणा के किले मे कैद थे छुडाने की बात बादशाह से कही । धर्म रक्षार्थ बस्तीराम बादशाह की लडकी से शादी करना नही चाहते थे । धर्म रक्षार्थ प्राणो का उत्सर्ग भी कर देना चाहते थे । बादशाह ने अपनी फोज जब उनके परिवार को छुडाने के लिये नरायणा भेजी तब ये दोनो भाई भी फोज मे शामिल होकर नरायणा गये । उस लडाई मे बस्तीराम ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये । ये समाचार दिल्ली भेजे गये तब शाहजादी मीर सुलतानी नरायना आकर बस्तीराम की मृत्यु स्थल पर ही अपने आपको जीवित ही जला दिया तथा वश का परिचय देना शुरु किया ।

यह कब्र साभर एव नरायणा के बीच बनी हुई है । इस घटना के बाद बस्तीराम के परिवार वाले तुरक्या पाटनी कहलाने लगे तथा पीरजी की ताती पहनने लगे । स्व प्रति मे इस घटना को दूसरी ही तरह लिखा है ।

सवत् 1292 वारै धरमचन्द जी सिद्धान्ती के बछराज वासराज पाटणी हुए । एक भाई बौलि मे, एक भाई सासरि कुमावै । वासो बौलि मे मुकाती का दाम पहुता नही तदि अरज सूरति लिखि हरम पातिसाहासु अरज पहुचाय छडायो । बेटो करि राख्यो । मुसलमान हुवो । फेरि हाकिम होय साँभरि गयो । जो भाई सारा मुसलमान करू । सधि भायानै पकड्या । जो थे मुसलमान होह । तदि वासराज सारा भाई ससलनि करी । फलोधि की पारसनाथ जी की जात को नाँव लेर छटसी जो कही म्हे पार्श्वनाथ जी की जात बोली छी ।

म्हाका भाई बछराज नै आख्या देखा । तदि जात्रा आँवा सो अब म्हे थास्यौ मिल्या । मन को मनोरथ सिद्धि हुवो । सो मुसलमान जात्रा करि आवा तदि ह्वाला । अब मुसलमान ह्वा तौ जात्रा लागै नही । तीसू जात्रा करि आवा छा ।

तदि बछराज कही मैं भी चालूंगा । मो ये मारा फलौदी न चालता गैला में मसलति करि मारा जो बछराज मे दिनाई दे मारिजे । सो गैला में दिनाई दे मार्‌यों । पीर हुवौ । मो सारा भाया ने दखल देबा लाग्या । तदि सारा कही अब हुई सो होय गई । अब थे महाई करो । तदि पीर कही जो तदि थानै छोडू महासुदी 2 नै कुंडा मे खाय सो बासा पाटणी का पग का पीरनै मानै जाय परणै कुंडा मे खाय । सवत् 1323 बामा को सोढो घडसी ।

यद्यपि दोनो अनुश्रुतिया भिन्न-भिन्न है लेकिन इतना अवश्य है कि बछराज पाटणी इस गोत्र मे विख्यात पुरुष हुए थे ।

नागौर मे पाटणी गोत्र वालो का प्रमुख केन्द्र था । वहां ग्रथो का लेखन प्रतिष्ठाओं का सचालन जैसे अनेक कार्य हुए । इस नगर मे 16वी शताब्दि मे पर्वत पाटणी हुए जिन्होने मन्दिर निर्माण करवा कर पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी थी । सवत् 1664 मे बीजैराम पाटनी ने सागानेर मे मन्दिर बनवाया । टोडारायसिह मे विजे कोठारी पाटनी ने नेमिनाथ का मन्दिर निर्माण करवाया । इसी तरह किशनदास पाटनी ने सीकर मे मन्दिर का निर्माण करवाया ।

जयपुर मे पाटनी गोत्रीय दीवान श्योजीराम एव उनके पुत्र अमरचन्द दीवान हुए । दोनो पिता पुत्र ने एक-एक मन्दिर जो बड़े दीवान जी एवं छोटे दीवान जी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, निर्माण करवाने का यशस्वी कार्य किया ।

नागौर पट्ट पर भट्टारक सहस्रकीर्ति जी (सं 1631) भट्टारक नेमचन्द जी (सवत् 1650) भट्टारक यश.कीर्ति जी (1670) भट्टारक श्रीभूषण जी (1705) भट्टारक अमरेन्द्रकीर्ति जी (स. 1738) एव अनन्तकीर्ति जी (1773) सभी भट्टारक पाटनी गोत्रीय थे । जयपुर गादी के भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति (1815) भी पाटनी गोत्र वाले श्रावक थे ।

पाटनी गोत्रीय हिन्दी कवियों मे अजयराज पाटनी (18वीं शताब्दि) दिलाराम (18वी शताब्दि) किशनसिह (1784) नेमीचन्द पाटनी आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे पचासों पाण्डुलिपियां है जिनका लेखन पाटनी गोत्रीय श्रावको ने कराया था । इसी तरह यत्र लेख एवं मूर्ति लेख भी मिलते है ।

खिन्दूका पाटनी गोत्र का ही दूसरा नाम है । कहते है कि सिन्दू साह जी

को जयपुर नरेश नेवटा से जयपुर लाये थे इसके पश्चात् सिन्दू साह जी के परिवार में होने वालों को खिन्दूका कहा जाने लगा।

इसी तरह जयपुर मे मुशरफ बैंक वाले भी पाटनी गोत्रीय है। मुशरफी करने से मुशरफ कहलाने लगे। डंडिया परिवार भी पाटनी गोत्रीय श्रावक है। हाथ में डंडा रखने के कारण ये डंडिया कहलाने लगे।

पाटनी गोत्र के सम्बन्ध में एक लेख और मिला है।

"पाटण मे क्षत्रीय कुल तंवर वशीय राजा पृथ्वीराज तवर नगर पाटण में राज्य करते थे। ये पाटण तवरो की कहलाती थी। राजा पृथ्वीराजसिंह जी ने नगर खडेला मे जाकर श्रावक व्रत ग्रहण किये। वि. स 101 मे। बाद मे इसी परिवार मे पृथ्वीराजसिह जी के दो पुत्र हुए।

ढोढराजसिह एव जसराजसिह।

ढोढराजसिह के एक पुत्र हुआ—हरिसिह।

हरिसिह के तीन सन्तानें हुई—लालचन्द, रामचन्द, पूरणचन्द। लालचन्द के पुत्र एक परशुराम हुए। परशुराम के पुत्र दो—समरथमल–जगदास हुए। वि. सं. 202 समरथमल के दो सन्ताने हुई। गजपाल एव श्रीपाल। सं 235 मे गजपाल के देवीदास रिद्धकरण दो पुत्र हुए। सं. 250 में देवीदास के पदारथ प्रागदास दो पुत्र हुए।

पदारथ जी के एक सतान—खेमराज, खेमराज जी के तीन सतान।

रामचन्द्र, रतनसी, रेखराज स. 293।

रामचन्द्र जी के मोहणदास, दयाचन्द स 333।

प्रशस्ति

मोहणदास पाटणी—पाटण, तवरो की प्रतिष्ठा कराई मुनिसुव्रतनाथ जी की स. 335 मे काती सुदी 13 माल मोहर 52 मे गीरधर मेठी लीनी।

इसी वश परम्परा मे—मोहनदास जी के दो पुत्र हुए।

छीतरसिह, रूपचन्द, छीतरसिह जी के दो सतान–जीवराज, जोधराज। जीवराजसिह के एक पुत्र–कर्मसिह–पराक्रमी हुए। कर्मसिह ने पाटण मे प्रतिष्ठा कराई पार्श्वनाथ भगवान की स. 455 राजा सूरजमाण वारे मिति महा सुदी 5 रुपया 12,00,000 बारा लाख लाग्या।

इस प्रकार पाटणी गोत्र वाले श्रावको का इतिहास बिखरा पड़ा है जिसके सकलन की आवश्यकता है।

11. मूंछ/मौंच

गोत्र—मूंछ, नगर मूंछड, वंश सोरई, कुलदेवी ग्रामणि ।
क प्रति में इस गोत्र का वंश तुरई/तुंवर दिया गया है ।
बुद्धि विलास में इस गोत्र का वंश सोलंकी बताया गया है ।
कुल सोलंकी ग्रामणि देव्य, गोत ग्राठ में ग्रती सेव्य ।
सोवी लौंहग्या पुत्री सोहनी, मूछ पापल्या गदह्या मनी ।।770।।

मौच गोत्र वाले परिवार राजस्थान[1] मे विशेषतः लालसोट, जयपुर, टहटडा, ग्रलवर ग्रादि में रहते हैं ।

टोडारायसिंह के ग्रादिनाथ मन्दिर में एक सम्यक् चारित्र नामक यंत्र है । जिसे सवत् 1534 मे मौच गोत्रीय साह बारु भार्या देऊ एवं पुत्र देवा ने प्रतिष्ठित करवाया था ।

इसी तरह संवत् 1580 मे उक्त देवा के पुत्र डालू ने सागारधर्मामृत की पाण्ड-लिपि लिखवाकर मंडलाचार्य धर्मचन्द्र को भेंट दी थी ।

इस गोत्र के मूल पुरुष ठाकुर भोजराज थे जिन्होंने सर्वप्रथम श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

12–13. बज

बज गोत्र के सम्बन्ध में बडी भ्रांति चल रही है । कुछ इतिहास लेखकों के ग्रनुसार जब खण्डेला मे दीक्षा हो रही थी तो उस समय दो स्वर्णकार भी वहां उप-स्थित थे । जब ग्राचार्य जिनसेन राजा खण्डेलगिरि सहित ग्रन्य सामन्तों के सिर पर पिच्छी रख कर उन्हें जैन धर्म में दीक्षित होने पर ग्राशीर्वाद दे रहे थे तो भूल मे उन दोनों स्वर्णकारो पर भी उन्हे क्षत्रिय समझ कर पिच्छी रख दी ग्रौर उन्हे जैन घोषित कर दिया । लेकिन राजा ने ग्राचार्यश्री से निवेदन किया कि ये तो क्षत्रिय नही है स्वर्णकार है तथा ग्रापस मे ब्याही है । ग्राचार्य जिनसेन ने उदार भाव से कहा कि यदि ग्रनजाने मे भी पिच्छी रख दी गयी तो ग्रब वही ठीक है । ग्राज से इनकी जाति भी खण्डेलवाल जैन जाति हो गयी । दोनो का एक ही बज गोत्र घोषित किया गया तथा दोनों की कुल देवी ग्रामण्या एव मोहण्या घोषित की गयी ।

लेकिन उक्त घटना में कोई सच्चाई नही दिखती है । जब ग्राचार्य जिनसेन ने 14 गोत्रों की ही स्थापना की थी तो दरबार में 84 गोत्रों की सरचना मानना

1. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग, पृष्ठ–174

तो सही नही बैठता । इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख मिलता है कि 84 गांवों में से दो गांवों में ठाकुर नहीं थे इसलिए उन दो गांवों के गोत्रों की संरचना के लिए उक्त घटना की कल्पना की हो । हमारे मतानुसार तो दोनो गांवों के ठाकुरों के स्थान पर वहाँ के दो प्रमुख क्षत्रिय को ही जैन धर्म में दीक्षित करके उनका बज गोत्र घोषित किया होगा । नव जाति स्थापना के समय जब केवल क्षत्रियों को लेकर ही खण्डेलवाल जैन जाति का उदय हुआ तब ऐसी घटनायें होना सम्भव नही दिखती । हा दो प्रमुख क्षत्रिय कुलोत्पन्न व्यक्तियो को जैन धर्म में दीक्षा अवश्य दे दी गई होगी ।

बज गोत्र का उत्पत्ति स्थान खण्डेला ही माना गया है तथा एक की कुल देवी आमणि तथा दूसरे की मोहणी मानी गयी है ।

जागा के रिकार्ड के अनुसार वि० स० 110 मे मिति बैशाख सुदी 10 को ठाकुर विजयसिह जी ने श्रावक व्रत ग्रहण किये । विजयसिह के पुत्र जैलसिह तथा उनके पुत्र रायमल हुए । रायमल जी के मोहन जी और मल जी ये दो पुत्र हुए । मोहन जी ने आमल माता पूजी जिसमें आमण्या बज कहलाये तथा मल जी ने देवी मोहणी पूजी जिसमे वे मोहण्या बज कहलाये । जागा का रिकार्ड भी हमारी विचारधारा का ही समर्थन करता है ।

बज गोत्रीय श्रावको के परिवार खण्डेला मे बांस बाहला, वहां से भिण्डर, भिण्डर मे चित्तौड़ और वहां से घटियाली आये थे । चित्तौड से महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिह के पुत्र गोकुलदास जी के साथ घटियाली आये थे ऐसी जनश्रुति मिलती है ।

सवत् 1745 में बज गोत्रीय साह श्री आनन्द—राय, साह श्री खेतसी एवं साह श्री माधो ने "षट्कर्मोपदेश-रत्नमाला" की प्रतिलिपि करवा कर भट्टारक जगत कीर्ति के शिष्य प० नाथू को प्रदान की थी ।

जयपुर, टोक एव कोटा मे बज गोत्रीय श्रावकों के पर्याप्त सख्या मे परिवार मिलते है । जयपुर मे बजो का मन्दिर एव चैत्यालय दोनों ही हैं । चौकड़ी मोदीखाने मे बजो का चौक भी है । कविवर बुधजन (सवत् 1820 से 1895) बज गोत्रीय पंडित थे ।

14. निगोत्या

गोत्र निगोत्या/वंश गौड/जन्म ग्राम-निगोत्या/कुल देवी नांदणि । ख प्रति में इस गोत्र का वश छपा मिलता है । ग प्रति में चौहाण वंश मिलता है । बुद्धि विलास मे निगोत्या गोत्र की कुल देवी हेमा मानी गयी है ।

जयपुर में चौकड़ी घाट दरवाजा में निगोत्या परिवार द्वारा निर्मित एक मन्दिर है। इसी नगर में ऋषभदास निगोत्या एवं पारसदास निगोत्या अच्छे पंडित हो गये हैं।

15. लौंहग्या

गोत्र लौंहग्या, लौंग्या अथवा लुंग्या। ये सूर्य वंशी (सोरई) हैं। कुल देवी आमणि एवं उत्पत्ति स्थान लहुंगे माना जाता है। ख प्रति में इस गोत्र का सोलकी वंश बतलाया गया है। बुद्धि विलास में भी इसी मत की पुष्टि की गयी है।

जयपुर में लौंहग्या गोत्र के कितने ही परिवार रहते है।

16. दगड़ा/दगड्या

गोत्र दगड्या अथवा दगडा/वंश सोरई/कुल देवी आमणि। उत्पत्ति स्थान दगडोदे।

ख प्रति में इस गोत्र का वंश सोढा एवं कुल देवी श्री नाम बतलाया गया है। बख्तराम ने दगड़ा गोत्र उत्पत्ति स्थान जील, वंश जील एव कुल देवी का नाम सरमलि दिया है।

यह गोत्र वर्तमान समय मे भी उपलब्ध है। लेकिन इस गोत्र के श्रावकों द्वारा किसी धार्मिक अथवा साहित्यिक गतिविधि का उल्लेख नही मिलता।

17. रावत्या रावत

रावत्या अथवा रावत गोत्रीय श्रावकों का वंश ठीमर सोम, ग्राम रावत्ये एव कुल देवी औरल है। रावत गोत्र के सम्बन्ध मे कोई अन्य सामग्री नही मिलती। ख प्रति में इस गोत्र का पामेचा वंश माना है।

18. रारा

रारा गोत्र/वंश ठीमर सोम/ग्राम रीरो/कुल देवी औरल।

ख प्रति में बख्तराम साह ने रारा गोत्र का पामेचा वंश माना है।

कुछ इतिहासों में रारा एवं रावका दोनों को एक ही गोत्र माना गया है। लेकिन बख्तराम साह ने बुद्धि विलास मे दोनो को अलग-अलग गोत्र माना है। इसी तरह ख प्रति मे भी दोनों को अलग-अलग गोत्र कहे गये है। हमारे पास और भी जितनी इतिहास की प्रतियाँ है उन सभी मे रारा, रावंका दोनो अलग-अलग गोत्र माने गये है लेकिन राजमल बड़जात्या ने दोनो को एक गोत्र लिखा है।

रारा गोत्र के मूल पुरुष राजसिंह जी थे। जागा के रिकार्ड के अनुसार

राजसिंह की 29 वीं पीढ़ी में केशवदास जी हुए उनके दो पुत्र हुए जिनमें बड़े विमल दास जी एवं छोटे राऊजी थे। विमलदास जी के गर्जसिंह हुए उनके वंशधर रारा गोत्रीय रहे। राऊजी के बारह पुत्र हुए हेमसिंह, इन्द्रराज, ऋषभदास, सारंगदास, रायसिंह, सोनपाल, माराकदास, भजबराम, जगरूप, मानसिंह, दोदराज, बोहितराम एवं बाई बीरा। ये सभी रांवका कहलाये। यह घटना संवत् 1264 की है। रारा गोत्रीय परिवारों के सम्बन्ध में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती। संवत् 1746 में बाय ग्राम में रारा गोत्रीय श्री गोगा तत्पुत्र खेता ने षोडशकारण यन्त्र की प्रतिष्ठा कराजी थी।

19. नृपत्या/नरपत्या

वंश सोम/कुल सोरई/कुल देवी ग्रामणि/ग्राम नरपते। मूल पुरुष हरिसिंह जी।

ख प्रति के अनुसार इस गोत्र का वंश यादव, कुल देवी रोहिणी है। इस गोत्र में सर्वप्रथम संवत् 110 में हरिसिंह जी ने श्रावक व्रत ग्रहण किये थे।

राजस्थान की ग्रन्थ प्रशस्तियों एवं मूर्ति लेखों में नृपत्या गोत्र वाले श्रावकों के योगदान का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। जयपुर में इस गोत्र के परिवारों की अच्छी संख्या मिलती है।

20. राउंका रांवका

गोत्र रांवका/कुल ठीमर सोम/कुल देवी औरलि।

उत्पत्ति नगर राउंको/रीरो।

इस गोत्र का भी ख प्रति मे पामेचा वंश कहलाता है। बुद्धि विलास में भी इसी का समर्थन किया है।

संवत् 1631 मे मालपुरा में रांवका गोत्रीय साह थाना, चम्पा, हेमा, हीरा ने जयमित्रहल के बड्माण काव्य की प्रतिलिपि करवा कर मनि श्री रत्नानि को भेंट की थी। रांवका गोत्रीय श्रावकों के परिवार जयपुर, कुचामन, सांभर, भादवा आदि ग्रामो में मिलते है। 20वीं शताब्दी में होने वाले पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ रांवका गोत्रीय श्रावक थे।

21 मोदी

वंश सोम, कुल ठीमर सोम, ग्राम का नाम मोधा, कुल देवी अबरलि। ख

1 प्रशस्ति संग्रह- पृष्ठ संख्या 170।

प्रति में वंश ठीमर के स्थान पर पामेचा दिया हुआ है। बख्तराम साह ने मोदी के स्थान पर मोथा गोत्र लिखा है।

मोदी गोत्र का प्रशस्तियों में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ब्यावर में मोदी गोत्रीय श्रावकों के परिवार मिलते हैं। लेकिन वे सोगाणी गोत्रीय श्रावक हैं। राजमल जी बडजात्या ने भी मोदी गोत्र को अलग गोत्र गिनाया है।

22. मोठ्या

वंश ठीमर ग्राम मोठे' देवी औरलि। ख प्रति में ठीमर के स्थान पर पामेचा कुल बताया गया है। बख्तराम साह का भी यही मत है।

मोठ्या गोत्र के श्रावकों की गतिविधियों के सम्बन्ध में प्रशस्तियों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। जयपुर में मोठ्या गोत्रीय श्रावकों के परिवार मिलते है।

23 बाकलीवाल

गोत्र बाकलीवाल, वंश मोहिल, कुल देवी जीगि, उत्पत्ति नगर बाकली अथवा बाकुले।

बाकलीवाल गोत्र भी सरावगी समाज में काफी लोकप्रिय है। ख प्रति के अनुसार महणासी बाकलीवाल के पुत्र कोहणासी ने संवत् 503 में 24 प्रतिष्ठायें करायी थी। इसके पश्चात् कोहणासी के पुत्र बीजल पुत्र गोसल ने सम्वत् 625 में आचार्य मानचन्द जी के सानिध्य में गिरनार तक संघ चलाया।

गोसल के पौत्र एवं केमा के पुत्र वीरम ने अजमेर में शिखरबन्ध मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा करायी। संवत् 999 एवं संवत् 1113 में भी बाकलीवाल गोत्रीय श्रावकों ने अनेक प्रतिष्ठायें सम्पन्न करायी थी। इसके पश्चात् संवत् 1245 माह सुदी 5 को भट्टारक नरेन्द्र कीर्ति जी के समय में हेमू के पौत्र वीरा ने गिरनार तक यात्रा संघ चलवाया। संवत् 1384 में चाटसू में संघपति तीको एवं एव उसके परिवार ने शिखर जी की वन्दना की थी।

संवत् 1582 में चाटसू नगर में संघपति संघी तीको एवं उसके परिवार जनों ने राजवार्तिक की प्रति लिखवा कर पं० लाला को भेंट की थी।[1] प्रस्तुत पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भण्डार मे संग्रहित है। इसी तरह संवत् 1585 एव 1595 में विभिन्न ग्रन्थो की पांडुलिपियां तैयार करवा कर बाकलीवाल गोत्रीय श्रावकों ने मुनि श्री धर्मचन्द जी को भेंट में दी थी।[2]

1. प्रशस्ति संग्रह–पृष्ठ संख्या 54।
2. प्रशस्ति संग्रह–पृष्ठ संख्या 175।

बाकलीवाल गोत्र का संक्षिप्त नाम बाकुली लिखा मिलता है। जयपुर में बाकलीवालों के पर्याप्त परिवार मिलते हैं। यहाँ चौकड़ी मोदीखाना के रास्ते में बाकलीवालों का मन्दिर भी है। खाते गाँव में बाकलीवाल गोत्र को पट्टा बीस भी कहते हैं।

24. कासलीवाल

सरावगी समाज में कासलीवाल गोत्र लोकप्रिय गोत्र माना जाता है। प्रस्तुत इतिहास के लेखक को भी अपने कासलीवाल गोत्र पर गर्व है। जयपुर, इन्दौर, बूंदी जैसे नगरों में कासलीवाल गोत्रीय परिवार समाज के सबसे प्रतिष्ठित परिवार माने जाते रहे हैं। इस गोत्र के सर्वप्रथम संवत 119 में कील्हण कासलीवाल हुए जिन्होंने विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाकर ख्याति प्राप्त की थी।

कासलीवाल गोत्र का वंश सोम है। कुल मोहिल है। कुल देवी जीणि एवं उत्पत्ति नगर कासली है जो खण्डेला राज्य का ग्राम था। कहीं-कही बगड़ा, संबलावत उस गोत्र के उपगोत्र हैं। इस गोत्र के प्रथम पुरुष जयसराज मोहिल थे जिन्हें कासली ग्राम के शासक एवं जैन धर्म में दीक्षित होने का गौरव प्राप्त है।

सबत् 525 वर्ष तक कासलीवाल गोत्रीय परिवार खण्डेला में ही रहे इसके पश्चात् हरजी हर्ष गये करमसी चित्तौड एवं बिजराज जी लाडनूं गये। फिर चित्तौड से मालपुरा एवं अजबगढ (अलवर) आये। मालपुरा से मालवा, आमेर, सांगानेर और फिर जयपुर आकर बस गये। सबत् 782 में जब धनराज गंगवाल ने लाडनूं मे प्रतिष्ठा करायी थी तब परस कासलीवाल ने 45 म्होरों में माला की बोली थी।

मालपुरा मे कासलीवाल परिवार चौधरी कहलाने लगे। 17वी शताब्दी में मालपुरा नगर मे साहू सोढा कासलीवाल एव उसका परिवार अत्यधिक सम्पन्न था। उसने संवत् 1645 मे सकल कीर्ति के हरिवंश पुराण की तथा संवत् 1660 में वरांग चरित की प्रतिलिपियाँ करायी थी।

कासलीवाल गोत्रीय विद्वानो मे प० दीपचन्द कासलीवाल (18वीं शताब्दी) दौलतराम कासलीवाल (18वी शताब्दी) पं. सदासुख कासलीवाल (19वी शताब्दी) पं. मारामल्ल (17वी शताब्दी) जोधराज कासलीवाल (19वीं शताब्दी) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी तरह प्रशासकों में हरसुख जी कासलीवाल (जयपुर) किशोर सिंह कासलीवाल (जयपुर) ज्ञानचन्द कासलीवाल (किलेदार रणथम्भौर) धन्नालाल कासलीवाल (फौजदार) के नाम लिये जा सकते है।

जयपुर में सिरमोरियों का मन्दिर कला की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध मन्दिर है।

25 अजमेरा

गोत्र—अजमेरा/उत्पत्ति स्थान अजमेरि/वंश-गौड/कुलदेवी-नांदाणि/मूलपुरुष उग्रवंशी राजा अक्षयमल/ख प्रति में भी अजमेरा गोत्र के वंश का नाम गौड दिया है। बख्तराम साह ने भी इस मत की पुष्टि की है।

तीन गोत कुल गौड उबेरा, गोधा, सरवाड्या अजमेरा ॥75॥

अजमेरा गोत्र खण्डेलवालों के अतिरिक्त, अन्य जातियों में भी मिलता है। सरावगियों में भी अजमेरा गोत्र के परिवार मिलते हैं।

इस गोत्रीय परिवारों द्वारा प्रतिष्ठाओं एवं पाण्डुलिपि तैयार कराने में विशेष सहयोग दिया है। एक प्रशस्ति के अनुसार सवत् 1595 में साखूण ग्राम में श्रीपाल अजमेरा ने वरांगचरित्र की पाण्डुलिपि तैयार करवाकर उत्तम पात्र को भेंट की थी। इसी तरह अजमेर नगर में साह सुरजन अजमेरा ने पज्जुण्ण चरिउ की पाण्डुलिपि तैयार करवाने का सौभाग्य प्राप्त किया। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों मे ऐसी पचासो पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं जो 15वी शताब्दी में लिखी गयी थी।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओ के कितने ही लेख मिलते है जिसमें अजमेरा गोत्रीय श्रावको ने उनमें भाग लिया था। ऐसे लेखो मे संवत् 1548, 1593 एवं संवत् 1756 के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

जयपुर में थानसिह अजमेरा कवि हुए थे जिन्होने सुबुद्धि प्रकाश जैसी रचना लिखने का श्रेय प्राप्त किया।

26. पाटोदी

गोत्र—पाटोदी/वंश तुंवर/कुल—गहलोत/कुलदेवी—पदमावती/प्रथम पुरुष-ठाकुरपदमसिंह।

बख्तराम साह ने भी उक्त तथ्यों का समर्थन किया है—

तीन जानियो कुल गहलोत पूजे पदमावती ऐ गोत।
पाटोदी चौधरी सुसार, सेठी जाति दोय परकार ॥76॥

संवत् 595 में भारमल जी भीमराज जी झुन्झुनू वास करयो। उनके वंशधर बीझराज जी के लड़के सुजोगी तथा सरबत जी पर देवपुरा में पदमावती प्रसन्न हुई। एक बार बादशाह गजनी ने 200500 बन्दी बना रखे थे सो उन दोनों भाईयों ने सवत् 992 में सबको छुड़ा लिया।[1]

1. ख पाण्डुलिपि।

जिनदास पाटोदी ने मारोठ नगर में संवत् 1482 में भगवान चन्द्रप्रभु का मन्दिर निर्माण करवाया था। इसी तरह जोधराज पाटोदी ने जयपुर में संवत् 1799 में चौकडी मोदीखाने में एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था जो पाटोदी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

यह कहा जाता है कि संवत् 1600 में जहांगीर बादशाह अजमेर के चौहानों पर जब चढाई करने जा रहा था तो मारोठ पहुंचने पर उसे रात हो गयी इसलिये फौज के लिये रसद एवं खाद्य सामग्री नही पहुंच सकी। उस समय मारोठ के सेठ भारमल पाटोदी बादशाह के पास भेंट लेकर पहुंचा। बादशाह को चिन्तित देखकर उसने रसद आदि का प्रबन्ध अपने ऊपर ले लिया। इस व्यवस्था से बादशाह अत्यधिक प्रसन्न हो गया। उसे सिरोपाव तथा गोडावाटी के चौधरी की पदवी प्रदान की। उसी समय से मारोठ के पाटोदी चौधरी कहलाते हैं।

27. पापल्या

गोत्र—पापल्या/वंश सोरई/कुलदेवी-आमणि/ग्राम-पापले मूल पुरुष—ठाकुर पृथ्वीराज/जनश्रुति के अनुसार इन्ही के वंशधरो ने बैराठ मे जिन मन्दिर का निर्माण करवाया था।

सवत् 1333 में दयाल जी के पुत्र बनजी ने चित्तौड से आकर बैनाड गाव बसाया और इसलिये वे बैनाडा कहलाने लगे। बैनाडा गोत्र अलग भी गोत्र है। जयपुर में एक पापलियो का मन्दिर भी है।

28. सोगानी

गोत्र—सोगानी/वंश-सूर्यवंश-कोटेचा/कुलदेवी-कान्हड ग्राम-सौगाणी/मूल पुरुष ठाकुर शिवाराजसिंह।

आमेर मे सवत् 1616 में सोगानी—गोत्रीय सोढा एवं उसकी पत्नी खेमी ने षोडश कारण व्रत के उद्यापन के अवसर पर हरिवश पुराण की प्रतिलिपि करवा कर मंडलाचार्य ललितकीर्ति को भेंट किया।[1]

इसी तरह सवत् 1785 मे भिलाय नगर में मनसाराम सौगानी ने भी हरिवंशपुराण की प्रतिलिपि करके इसे स्वाध्याय के लिये शास्त्र भण्डार में विराजमान करने का यशस्वी कार्य किया।[2] सवत् 1665 में नन्द सौगाणी ने भक्तामर स्तोत्र की लिपि करके शेरपुर मे भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेट की थी।[3]

---

1. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ 77
2. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ 77
3. प्रशस्ति सग्रह—पृष्ठ 44

29. बोहरा

गोत्र बोहरा, वंश सोढा, कुल देवी सैंतलि, ग्राम बोहरे ।

लेकिन बख्तराम साह ने बोहरा गोत्र के दो भेद किये हैं । एक इक्ष्वाकुवंशी एवं दूसरा कुरुवंशी । इक्ष्वाकु वंशी का कुल बडगूजर एवं कुल देवी सैंतलि है । कुरुवंशी बोहरा की कुल देवी भी सैंतलि ही है । एक बोहरा चन्द्रावत्या कहलाते हैं । दूसरा बोहरा का कोई विशेष नाम नही मिलता ।

इस गोत्र के मूल पुरुष रामसिंह जी थे जिन्होने खण्डेला में सम्वत् 110 मे श्रावक व्रत ग्रहण किये थे । बख्तराम साह ने निम्न वर्णन किया है—

कुल बडगूजर गोत सु तीन, बिरल्या अर बावसा कुलीन ।
ए द्वै मानत देवी सिरी, नमैं बोहरा सौतिल सुरि ।।767।।
दुतिय बोहरा कुल गहलोत, और सकल जांनौं बहु पोत ।।

सम्वत् 1677 मे चम्पावती मे साह देवू बोहरा एवं उसके परिवार नगर का प्रतिष्ठित घराना माना जाता था । उसने नयनन्दि के सुदसरण चरिउ की प्रतिलिपि करवाने का श्रेय प्राप्त किया था ।

सम्वत् 1607 मे भारमल जी कुम्हेर से चन्देरी आकर रहने लगे थे ।

चन्द्रावत्या बोहरा का उल्लेख निम्न प्रशस्ति मे मिलता है—[1]

सम्वत् 1893 फाल्गुण शुक्ला 11 स्वर्ण गिरिस्थ श्री भट्टारक हरचन्द्र भूषण उपदेशात् चन्द्रावत्या बोहरे खण्डेलवाल श्री सवाई राजधर हिरदेसिह चौधरी मर्दनसिहस्य सुभचिन्तक बज गोत्रीय श्री लाला समासिहाधिपति नित्यं प्रणमन्ते । प्रतिष्ठा करापित गजरथ सहित पण्डित भगरथ. दसवात पण्डित सरा. 11 ।

30 लुहाडिया

गोत्र लुहाडिया, कुरु वंश, कुल मेरठी, कुल देवी लोसिल माता ।

इस गोत्र के बगडा एवं संघई बैक वाले भी लुहाडिया होते है । इस गोत्र के प्रथम महापुरुष ठाकुर लालसिंह जी थे जिन्होने खण्डेला मे सम्वत् 110 मे श्रावक व्रत ग्रहण किया था ।

लुहाडिया गोत्रीय श्री कुशलसिंह के पुत्र लोहट एवं पीथोजी ने आमेर में सम्वत् 1484 में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी तथा संघ चलाया । तब से उनका वंश संघी कहलाने लगा ।

---

1. जैन सन्देश शोधांक 30, पृष्ठ 261 ।

गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) में सम्वत् 1521 जेठ बुदी 10 बुधवार को संगही धामा एवं उसकी पत्नी धनकी ने पउमचरिउ की प्रतिलिपि करवाने का यशस्वी कार्य किया।[1] सरवाड (अजमेर) मे भूधर लुहाडिया हुए जिन्होने सम्वत् 1664 में एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया था।

कालख (जयपुर) मे होने वाले झगडू लुहाडिया अत्यधिक धार्मिक प्रकृति के थे। टीकम कवि ने चन्द्रहंस कथा की रचना उन्ही के आग्रह से की थी। इसी तरह फीरोजपुर झिरका (हरियाणा) में अमरचन्द्र लुहाडिया जैन धर्म के अच्छे ज्ञाता थे उन्होंने व्रत विधान पूजा की रचना की थी। उक्त पूजा की एक पाण्डुलिपि बयाना के मन्दिर मे सग्रहित है।

देहली में विष्णु लुहाडिया का प्रतिष्ठित परिवार था। उसने अत्यधिक श्रद्धा के साथ आदिपुराण की पाण्डुलिपि उस समय के मुनियो को स्वाध्यायार्थ भेंट की थी।[2]

बासखो (जयपुर) में पहिले जैनो की अच्छी बस्ती थी। वहाँ के निवासी हृदयराम लुहाडिया अपने समय के प्रसिद्ध श्रावक थे जिन्होने सम्वत् 1783 में एक विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी। इस सम्वत् की प्रतिष्टित प्रतिमाएँ राजस्थान के ही नही किन्तु अन्य प्रदेशों के दिगम्बर मन्दिरो मे भी विराजमान है। जयपुर मे मेघराज जी लुहाडिया द्वारा एक मन्दिर का निर्माण कराया था जो चौकड़ी मोदीखाना मे स्थित है।

लुहाडिया गोत्र वाले परिवार अधिकाश नगरो एव ग्रामो मे मिलते है।

31. वैद गोत्र

वैद गोत्र, वश सोम, कुल यादव, कुल देवी आमणि, ग्राम पावडे।

इस गोत्र के मूल पुरुष ठाकुर बिरदसिंह जी थे। जिन्होने सम्वत् 110 वैशाख सुदी 13 को श्रावक व्रत ग्रहण किया था। ख प्रति के अनुसार वैद गोत्र का वंश देवडा एव कुल देवी उहचल है।

झिलाय के वैद गोत्री संघई कहलाते है।

सम्वत् 1611 मे माडलगढ़ का तालाब तथा वहाँ के मन्दिर की प्रतिष्ठा मान्डु शाह वैद ने करवायी थी।

---

1. भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या 101
2. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ सख्या 87

मालपुरा में डूंगा वैद हिन्दी कवि हुए थे उन्होंने सम्वत् 1699 में श्रेणिक चौपई की रचना समाप्त की थी ।[1]

उदयपुर के खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर में एक 16 इन्च का यन्त्र है जिसकी प्रतिष्ठा वैद गोत्रीय सा. मोकल एवं उसके परिवार ने फागुण बुदी 7 सम्वत् 1641 मे करवायी थी ।[2]

टोडारायसिह मे वैद गोत्रीय साह होल्डा एवं उसकी धर्मपत्नी खीवणी ने सम्वत् 1603 भादवा सुदी 10 के शुभ दिन सूक्तिमुक्तावली की प्रतिलिपि करवाकर मुनि श्री कमलकीर्ति को भेंट की थी ।[3]

विक्रम की 19वी शताब्दी के प्रथम चरण में रामपुरा कोटा में तुलसीराम जी प्रतिष्ठित व्यक्ति हुए थे उन्होने पाण्डवपुराण की प्रतिलिपि करवायी थी ।

32. झांझरी

झाझरी गोत्र, वश-कुरु वंश, कुल-कूरम (कछवाहा), कुल देवी जमवाय, ग्राम झाझरे अथवा झीझर ।

इस गोत्र के प्रथम पुरुष जैतसिह थे जिन्होने संवत् 110 मे श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

नागौर के भट्टारक विद्यानन्द जी (सवत् 1766) एवं भट्टारक महेन्द्र कीर्ति जी झांझरी गोत्रीय श्रावक थे ।

33. गंगवाल

गोत्र गंगवाल, वश-कुरु वंश, कुल-कूरम (कछवाहा), कुल देवी जमवाय, ग्राम गगवानी ।

अपर नाम—कांटीवाल, मूथा, गढबोला गंगवाल ।

मूल पुरुष—गोरधनसिह गंगवानी इस गोत्र के प्रथम महापुरुष थे । इन्होने संवत् 110 के भादवा सुदी 13 को श्रावक व्रत ग्रहण किये थे । सवत् 1292 में रेखराज गंगवाल रणथम्भौर राज्य के दीवान थे । किसी कारण वश राजा ने उनको सेवा मुक्त कर अपने राज्य से बाहर निकाल दिया था । इसके पूर्व रणथम्भौर

---

1. **ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग—पृष्ठ संख्या 248**
2. **प्रतिमा लेख संग्रह ।**
3. **प्रतिमा लेख संग्रह ।**

में बीसल गंगवाल हुए जिन्होंने अनेक धार्मिक कार्य करने का श्रेय प्राप्त किया था।

उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर में 7—7 इन्च का यन्त्र है जो गगवाल गोत्रीय सा. ताल्हू भार्या गोरदे एव उनके परिवार ने स्थापित किया था। आमेर शास्त्र भण्डार में सवत् 1576 कार्तिक सुदी 13 को लिपिबद्ध मयणपराजय की एक पाण्डुलिपि है जिसे गंगवाल गोत्रीय सा. दूदा भार्या चाहू ने कर्मक्षय निमित्त लिखवायी थी।[1]

बून्दी मे बोहिथ गंगवाल ने "चन्दप्पह चरिउ" की पाण्डुलिपि करवाकर आमेर शास्त्र भण्डार मे विराजमान करने का यशस्वी कार्य किया था।[2] जोबनेर निवासी गंगवाल गोत्रीय श्री डू गरजी ने धर्मपरीक्षा की प्रतिलिपि करवा कर मुनि गुणचन्द्र को भेट की थी।[3]

नागौर पट्ट के भट्टारक भानुकीर्ति गगवाल जाति के थे।[4]

सम्वत् 1804 मे जयपुर नगर मे साह हाथीराम गगवाल हुए जिन्होंने भट्टारक सकलकीर्ति के वर्धमान पुराण की प्रतिलिपि करवाकर प० चोखचन्द जी के शिष्य प० कृपाराम को पठनार्थ भेट की थी।[5]

मालपुरा मे सन् 1635 मे श्री कमा गगवाल ने ब्रह्मदेव के द्रव्य सग्रह की पाण्डुलिपि करवाकर आचार्य श्री सिहनन्दि को भेट करने का सौभाग्य प्राप्त किया। सवत् 1852 मे धरमदास गगवाल ने अजमेर मे एक बहुत बडा पच कल्याणक महोत्सव कराया था। जयपुर के बडा दीवान जी के मन्दिर मे आदिनाथ एव महावीर स्वामी की विशाल प्रतिमाये वही की प्रतिष्ठित है।

उक्त लेखो के अतिरिक्त प्रशस्तियों मे गंगवाल गोत्रीय श्रावको द्वारा धार्मिक कार्यों का और भी विवरण मिलता है।

34. सेठी

गोत्र सेठी, वंश-कुरु वंश, कुल-मोरठ सोम, उत्पत्ति स्थान-सेठोलाव।

---

1. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 154
2. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 99
3. वही।
4. भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या 117
5. प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 57

इतिहास लेखको ने सेठी गोत्र को दो प्रकार का माना है। एक पद्मावत्या सेठी एव दूसरा लोसिल्या सेठी। पद्मावत्या सेठी का वंश कुरु वंश है। कुल गहलोत एव कुल देवी पद्मावती है। लोसिल्या सेठी का वंश इक्ष्वाकु वंश है। कुल देवी लोसिल माता है। इसका कुल मेरटी है। पं० बख्तराम साह ने सेठी गोत्र का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

पाटोधो चौधरी सु साह सेठी जानि दोय परकार ॥761॥
इकतौ कहि श्रायो सु सहीजे, दुतिय वंस इक्ष्वाकु कहीजे।

सेठी गोत लोहसिल देवी, पूजत है इह भांति सुसेवी ॥762॥

सम्वत् 1516 तक सेठी गोत्र में उक्त भेद व्याप्त था। मूलाचार की टीका मे सेठी गोत्र का पद्मावत्या सेठी गोत्र के नाम से परिचय दिया गया है—

तदन्वयेऽथ खण्डेलवंशे श्रेष्ठीय गोत्रके।
पद्मावत्याः समाम्नाये यक्ष्याः पार्श्वजिनेशिनः ॥
साधुःश्री मोहणाख्योऽभूत संघभारधुरंधरः।
एतैः श्री साधु णार्बस्य चोलाख्यास्य च कायजं ॥[1]

दोनो सेठी गोत्रों मे यह भेद कब तक रहा इसका कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन सम्वत् 1769 में जब नेमिचन्द सेठी ने नेमिनाथ रास को पूर्ण किया तो उसने भी अपने को पद्मावत्या सेठी लिखा है।

ताकौ सिष नेमचन्द जी, लघु भ्रता तसु झगडू जाणितौ।

सेठी गोत पद्मावत्या खण्डेलवाल तसु वै सब खाणि तौ ॥[2]

सेठी गोत्र के मूल पुरुष सौभाग्यसिह जी थे जो हरियावसिह जी के पुत्र थे। जिन्होने श्रावक व्रत ग्रहण किये थे।

सम्वत् 1516 मे झुन्झुनू नगर में सेठी गोत्रीय श्रावकों का अच्छा प्रभाव था। उन्होने त्रैलोक्य दीपक की प्रतिलिपि करवाकर अपने गुरु को भेंट स्वरूप प्रदान की थी।[3] इसी तरह सम्वत् 1537 मे बालिराज सेठी ने सकलकीर्ति के सुकमाल चरित्र की पाण्डुलिपि करवा कर पं० आमुयोग को पढने के लिये प्रदान की थी।

सेठी गोत्रीय श्रावको के सम्वत् 1560, 1590, 1608 आदि के और भी लेख मिलते है जब इन्होंने जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य किये थे।

---

1. **भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या 100**
2. **प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 280**
3. **राजस्थान जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग 3, पृष्ठ संख्या 94**

सम्वत् 1692 में रेवासा [सीकर] के श्रावक हरजीमल जी ने एक यात्रा संघ चलाया था। पूरे संघ में 3000 स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे। यात्रा की समाप्ति के पश्चात् सब यात्रियो को अच्छा लहान बांटा गया था।

सेठी गोत्रीय श्रावकों के ऐसे पचासो उल्लेख मिलते है जिनसे उनकी समाज सेवा में अभिरुचि का पता चलता है। वर्तमान मे सेठी गोत्र के भेद समाप्त हो गये हैं।

35. राजहंस्या

इस गोत्र का नाम राजहंस भी मिलता है। इसका सोम वंश है। कुल सोढा है। कुल देवी सकराय माता है। उत्पत्ति स्थान राजहस ग्राम है। इस गोत्र वाले श्रावकों की गतिविधियो का कही उल्लेख नही मिलता। बख्तराम साह ने कुल देवी सकराय के स्थान पर सरसलि को माना है।

राजहंस अहंकार्‌या गोत सुवोम है।
सरसलि सरस्वतिन में सुकुल तहि होय है॥

36. अहंकार्‌या

अहंकार्‌या गोत्र का वंश सोम है। कुल सोढा है। कुल देवी सकराय है। दूसरे इतिहास लेखको ने इस गोत्र की कुल देवी सरस्वती माना है।

37. काला

गोत्र काला, वंश-कुरु वश, कुल-ठीमर, कुल-देवी लाहाणी, ग्राम कोलाव।

इस गोत्र के मूल पुरुष ठाकुर कल्याणसिह जी थे। इन्होंने जिनसेनाचार्य के पास श्रावक व्रत ग्रहण किये थे।

अजमेर मे सम्वत् 1132 मे वीरम काला श्रावक शिरोमणि थे। लक्ष्मी की उन पर पूर्ण कृपा थी। स्वभाव से वे अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने अजमेर मे एक विशालकाय मन्दिर का निर्माण करवाया। वह मन्दिर 20 चौक का था। उसी वर्ष उन्होने एक वृहद् पच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन कराया था।[1]

17वी शताब्दी मे टोडारायसिह में काला गोत्रीय साह नानू हुये जो जिनवाणी के परम भक्त थे। उन्होने सम्वत् 1664 में अष्टाह्निका व्रत किये थे और

1. प्रतिष्ठा पाठ संग्रह।

उसी के उपलक्ष्य में उन्होंने महाकवि पुष्पदन्त के आदि पुराण की प्रतिलिपि करवा कर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेंट स्वरूप प्रदान की थी।[1]

सांगानेर में खुशालचन्द काला हिन्दी के बहुत बड़े कवि हुए थे। उन्होंने हरिवंश पुराण जैसे ग्रन्थो की रचना की थी। काला गोत्र के परिवार अधिकांश स्थानो में मिलते हैं।[2]

38. गोधा

गोत्र-गोधा, वंश-सोम, कुल-गौड, कुल देवी-नादरिण, ग्राम-गोधाणी।

इस गोत्र के मूल पुरुष ठाकुर गिरनेर थे। जिन्होंने सर्वप्रथम श्रावक व्रत ग्रहण किये थे।

ख पाण्डुलिपि मे गोधा गोत्र का निम्न इतिहास दिया है—

कुल देवी नांदणि सौ या दिहाडी रूपा की छी। सो गलाय सिंहासण घडायो अर दिहाडी सोना की घडाई। अर राति जगावा लागा सो गोधा में सिहनन्द गोधा सिरदार छौ। ती उपरि उही राति पेडो पंड्यो। सो सीहनन्द को माथो काटि दिहाडी समेत ले गया तदि सुं गोधा हाथ्यो देर पूजबा लाग्या। मूरति ब्रजनीक हुई। हाथ्यो पूजै नांव नादणि को लेतो दुख पावै ऊं दिन सुं रुठि पडि गई जो म्हाकै तो सांतिनाथ जी दिहाडी छै सो सांतिनाथ जी तो तीर्थंकर छैं सौ येह कहै छै सो मोलि सुं कहै छै। सम्वत् 1343 का इहत्रहै पूजवा लाग्या। नांदणि गोधा के परजनीक छै।

गोधा गोत्रों मे से ठोल्या गोत्र निकला हुआ है। इसकी कथा निम्न प्रकार है।

वंस गोधा मे बैक ठोल्या निकस्या सम्वत् 1204 के साल मे त्याको ब्यारो—

सहदेव को बेटी जिणदेव सो जिणदेव तो गोधा ही कहावै अर मणिदेव का ठोल्या कहावै सो सम्वत् 1230 का सो काल पड्यो 1242 संवत् ताई बरस 12 ताईं सतुकार दीयौ ठोल्या। सम्वत् 1243 में देहुरो करायौ बारे भट्टारक सुमकीर्ति कै।

इस प्रकार सम्वत् 1204 से गोधा ठोल्या एक ही गोत्र के दो नाम पड़ गये।

---

1. **प्रशस्ति सग्रह—डॉ० कासलीवाल द्वारा सम्पादित, पृष्ठ संख्या 89**
2. **प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल द्वारा सम्पादित, पृष्ठ संख्या 276**

सम्वत् 1444 मे पर्वतसर के बेनीदास गोधा के पुत्रों अखयराज, गोहतिराम, रायमल, ठाकुरसिंह, जीवराज ने प्रतिष्ठा कार्य प्रारम्भ किया। किन्तु बाद मे चारों भाइयो ने प्रतिष्ठा में सहयोग देने से मना कर दिया। इस पर बड़े भाई ने कहा कि तुम लोगो ने हमारे साथ ठोल करी है इसलिए तुम लोगों के वशधर ठोल्या कहलावेंगे।

संवत् 1470 में गोत्रोत्पन्न सा तील्हण एवं उसके परिवार ने भट्टारक पद्मनन्दि के सानिध्य में विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित प्रतिमायें टोंक के बाहर की नशियाँ मे विराजमान है। इन्ही के वश में मोजमाबाद में नानू गोधा हुए जो महाराज मानसिंह के प्रधान अमात्य थे उन्होने मोजमाबाद में विशाल मन्दिर का निर्माण करवा कर सम्वत् 1664 मे विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी।

इन्ही के आगे की पीढियो मे जयपुर में नन्दलाल गोधा हुए जिन्होने सम्वत् 1826 मे सवाई माधोपुर में विशाल पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई। राज महल में धनराज गोधा बहुत सम्पन्न एवं दानी श्रावक हुये जिसने सकलकीर्ति के हरिवंश पुराण की प्रतिलिपि तैयार करायी थी।

आमेर नगर में सवत् 1616 मे साह भाभू हुए उनका लम्बा चौडा परिवार था। इसी परिवार के एक सदस्य ने यशकीर्ति के पाण्डव पुराण की प्रतिलिपि करवा कर मंडलाचार्य श्री ललितकीर्ति को भेट किया था।[1]

संवत् 1637 मे गोधा गोत्र के साह जिणदास एव उसकी पत्नी स्वरूपदे ने पचास्तिकाय प्राभृत की पाण्डुलिपि करायी थी।[2] सवत् 1589 मे अजमेर मे गोधा गोत्र के सघही पारस अत्यधिक वैभवशाली थे। उसी ने भविष्यदत्त चरित्र की प्रतिलिपि करायी थी। इस प्रकार और भी कितने ही लेख मिलते है।

ठोलिया गोत्र का उल्लेख सवत् 1530 के एक यन्त्र मे मिलता है जो उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर में विराजमान है।

फतेहपुर के मन्दिर में संवत् 1563 में प्रतिष्ठित यन्त्र है जिसमें पं० मूला ठोलिया का लेख अंकित है।

जोबनेर (राज०) मे सवत् 1650 मे पट्टस्थ भ. नेमिचन्द ठोलिया गोत्र के श्रावक थे।

---

1. **प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 126**
2. **प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 132**

मोजमाबाद में संवत् 1660 में छीतर ठोलिया ने होली रेणुका चरित लिखा था। जयपुर मे थानसिंह ठोलिया ने सुबुद्धि प्रकाश जैसे ग्रन्थों की रचना की थी।

39. टोंग्या

गोत्र-टोग्या, वंश-सोम, कुल-पवार, कुल देवी-चांवड (जिनी), ग्राम-टोंगों। मूल पुरुष विरदसिंह। इन्होने सम्वत् 110 में श्रावक व्रत ग्रहण किये।

टोग्या गोत्र का सबसे प्रथम लेख सवत् 1579 का मिलता है। जिसमें टोंक के साह धरमसी टोग्या एवं उनके परिवार का परिचय दिया हुआ है। इन्होंने श्रीपाल चरित की पाण्डुलिपि करवा कर बाई पदमसिरी को पठनार्थ दी थी। उसके पश्चात् 1594 का राणापुर नगर में टोग्या गोत्र का परिचय मिलता है। आदिपुराण की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहित है जिसमें उक्त प्रशस्ति दी हुई है।

सम्वत् 1883 मे बाडी नगर मे सं. अमीचन्द टोग्या ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी थी। यह प्रतिष्ठा अपने समय की उल्लेखनीय प्रतिष्ठा थी। जयपुर का चौबीस महाराज का मन्दिर भी इसी टोग्या परिवार द्वारा निर्मित है। टोग्या परिवार मे चम्पा बाई एक अच्छी कवियत्री थी। जिनका चम्पाशतक प्रकाशित हो चुका है।[1]

सवत् 1873 मे लश्कर ग्वालियर मे टोंग्या गोत्रीय धर्म शिरोमणि साह जी श्री जिणदास तथा उनके पुत्र श्रेष्ठि मनीराम टोग्या ने वरागचरित्र की पाण्डुलिपि करवा कर आमेर के शास्त्र भण्डार में विराजमान की थी। मथुरा के सेठ लक्ष्मी चद टोग्या ने द्वारकाधीश, वृन्दावन के रंगजी का मन्दिर एवं चौरासी मथुरा का जम्बू स्वामी का मन्दिर आदि अनेक जैन एवं वैष्णव मन्दिरों का निर्माण करवाया था।[2]

40. अनोपडा

गोत्र-अनोपडा, वंश-इक्ष्वाकु, कुल-चन्देला, कुल देवी-मातणि, ग्राम-अनोपडे, मूल पुरुष कनकसिंह जी। इस गोत्र का दूसरा नाम नोपडा भी मिलता है। बुद्धि विलास में बख्तराम साह के इसी मत की पुष्टि की है।

---

1. प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ संख्या 88
2. वही, पृष्ठ संख्या 56

गोत नौपडा कहै अनूप, पूजत मस्ता देश्य स्वरूप ।

खण्डेला में आने के पूर्व कनकसिंह के पूर्वज कौशल देश की वनिता नगरी के राजा थे । चन्द्रसेन वहाँ के प्रथम राजा थे । इन्ही के वंश में होने वाले राजा कुरमकुर खण्डेला आये और इन्हें नोपकोट गाँव जागीर मे दिया गया । इसके पश्चात् राजा कनकसिंह खण्डेलगिरि के साथ ही जैन धर्मावलम्बी बन गये और श्रावक व्रत स्वीकार किये ।

अनोपडा गोत्र के परिवार भी सीमित सख्या में मिलते है ।

41. बिनायक्या

इस गोत्र के विनायक्या एव बिन्दायक्या दोनो ही नाम मिलते हैं । इस गोत्र का वंश सोम वंश है । कुल गहलोत एवं कुल देवी चौथ है । ग्राम विनायका/विनायके है । भाट के अनुसार इस गोत्र का पवार कुल है । बख्तराम ने भी इसी मत की पुष्टि की है—

कुल गेहलोत सुगोत, त्रय पूजत गणपति चौथि ।
है बिनायक्या बिंबला, बहुरि पोटल्या कौनि ।।743।।

42. चौधरी

84 गोत्रो मे चौधरी भी एक गोत्र है वैसे चौधरी बैंक भी है । चौधरी गोत्र का कुल-तुंवर, वश-कुरु, कुल देवी-पदमावती । आदि पुरुष ठाकुर हरचन्द जी थे । इस गोत्र वालो का निवास टोक, मालपुरा, साभर आदि मे है । ठाकुर हरचन्द ने सवत् 110 में श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

सवत् 1611 मे चौधरी गोत्रीय साह गोगा आल्हणपुर के निवासी थे । इनके पुत्र साह महराज ने षोडशकरण व्रतोद्यापनार्थ पदमकीर्ति के पासणाह चरिउ की एक प्रति भट्टारक धर्मचन्द्र को प्रदान की थी । प्रशस्ति में धर्मचन्द्र को वसुन्धरा आचार्य लिखा है ।[1]

43. पोटल्या

गोत्र पोटल्या, वश सोम, कुल गहलोत, कुल देवी चौथी, ग्राम चन्देल । क प्रति मे इस गोत्र का वश कछवाहा एवं कुल देवी जमुवाय लिखा है । इस गोत्र के

1. प्रशस्ति सग्रह—पृष्ठ संख्या 128

मूल पुरुष रामसिंह थे । इन्होंने संवत् 110 में श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

ग्रन्थ प्रशस्तियो, मूर्ति लेखों एवं शिला लेखो से इस गोत्र का कही उल्लेख नहीं मिलता । वर्तमान मे पोटल्या गोत्रीय परिवार सम्भवतः नही है ।

44 कटारिया/कटार्या

वश-इक्ष्वाकु, कुल-कूर्म (कछवाहा), कुल देवी-जमवाय, ग्राम-कटारा । मूल पुरुष ठाकुर कल्याणसिंह जी है । इन्होने श्रावक व्रत ग्रहण किये थे । केकड़ी, अजमेर, देहली आदि स्थानो मे इस गोत्र के परिवार मिलते है ।

45. निगद्या

गोत्र निगद्या अथवा निगेदिया । वंश—सोरई । कुलदेवी नांदणि । उत्पत्ति स्थान नगद्या । ख प्रति में इस गोत्र का वश गौड माना गया है ।

इस गोत्र का एक परिवार कोटा में है । लेकिन इस गोत्र के बहुत कम परिवार बचे है । प्रशस्तियो एव शिलालेखो मे इस गोत्र का कोई उल्लेख नही मिलता ।

46–47. बिलाला

बिलाला गोत्र दो प्रकार का है—

1. सोम वंश, कुल-ठीमर, देवी-ओरलि, ग्राम-बड़ी बिलाली ।

2. कुरु वशी, कुल देवी-सोनिल, ग्राम-बिलाली छोटी, मूल पुरुष ठाकुर वीरसिंह ।

बख्तराम साह ने बिलाला गोत्र का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

गोत बिलाला दोय विधि, इक कहि ग्रायो सोय ।
दूजे सोनिल को नमें, कुल नंदिचे होय ।।734।।

1. जयपुर नगर मे साह हरिराम एवं उनके परिवार में साह गोपीराम जी बिलाला हुए जिन्होंने षट्कर्मोपदेश रत्नमाला की एक पाण्डुलिपि पं० गोवर्धनदास के लिये लिखवायी थी । यह पाण्डुलिपि जयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार में विराजमान है ।[1]

---

1. **भट्टारक सम्प्रदाय, पृष्ठ संख्या 107**

2. मालपुरा के आदिनाथ स्वामी के मन्दिर में एक श्रुतज्ञान का वृक्ष है जिसे बिलाला गोत्रीय संघी मल्ल जी एवं तेजु ने प्रतिष्ठित करवा कर विराजमान किया था ।[1]

3. बिलाला गोत्रीय पं० नथमल अत्यधिक प्रसिद्ध कवि हुए । ये पहिले भरतपुर रहते थे फिर हिण्डोन आकर रहने लगे । इन्होने भक्तामर की हिन्दी टीका संवत् 1829 में समाप्त की थी ।

4. जयपुर में ताराचन्द बिलाला दीवान हुए जो चाकसू गढ़ के किलेदार थे ।

वर्तमान में बिलाला गोत्र में कोई भेद नही है । दोनों का एक ही गोत्र रह गया है ।

48. बम्ब

गोत्र-बम्ब, इस गोत्र का सोम वंश, सोढा कुल एव कुल देवी-सकराय है । क प्रति में बम्ब एवं बिम्ब ये दो गोत्र माने है जबकि अन्य पाण्डुलिपियो मे केवल एक बम्ब गोत्र ही माना है अन्य पाण्डुलिपि में इस गोत्र का सोम वंश, यादव कुल एवं रोहिणी को कुल देवी माना है । बख्तराम साह ने भी बम्ब गोत्र की रोहिणी देवी लिखी है ।

वनमाला फुनि बम्ब भडसाली अरु नरपत्या ।
करत न करत विलम्ब, पूजत देवी रोहिणी ।।741।।

समाज मे इस गोत्र के बहुत कम परिवार अगरा एव मुरादाबाद जिले में मिलते है ।

49. हलद्या/हलदेनिया

इस गोत्र का प्रचलित नाम हलदेनिया है । ये सोमवंशी है । कुल मोहिल एवं कुल देवी जीण है ।

हलदेनिया गोत्र के कुछ परिवार कोटा मे मिलते है ।

50. क्षेत्रपाल्या

गोत्र-क्षेत्रपाल्या अथवा क्षेत्रपालिया, सोम वश, दुजि कुल एवं कुल देवी हेमा है । इस गोत्र के भी बहुत कम परिवार मिलते है ।

अध्यात्मतरंगिणी टीका की एक प्रशस्ति मे क्षेत्रपालिया गोत्र का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

---

1. प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ संख्या 246

तद्याम्नाये सदाचार क्षेत्रपालीय गोत्रके ।
सुनामपुरवास्तव्ये खण्डेलान्वयके जनि ।।[1]

इस तरह की एक ग्रौर प्रशस्ति मिलती है जो संवत् 1543 की है । इसमें हिसार नगर की निवासी क्षेत्रपालीय गोत्रीय साध्वी कमलश्री ने अपने पुत्र के पठनार्थ ग्रादि पुराण की प्रतिलिपि तैयार की थी ।[2]

51. दुकड्या

यह गोत्र भी 84 गोत्रों में है । इस गोत्र की कुल देवी हेमा है । वंश दुजिल एवं ग्राम का नाम दुकडे है । बख्तराम साह ने इसे चौरासी गोत्रों में नहीं गिनाया है । लेकिन राजमल बडजात्या ने इसे चौरासी गोत्रों में माना है ।

52. दोशी

दोशी गोत्र का वंश राठौड़ है । कुल देवी जमवाय तथा उत्पत्ति स्थान सेसेगि नगर माना जाता है । इस गोत्र में नाथूराम दोशी हुए जिन्होंने सम्वत् 1918 मे सुकुमाल चरित्र की हिन्दी में रचना समाप्त की थी ।

53 भसावडया

भसावड्या कुरु वंशी गोत्र है । इसकी कुल देवी सोनिल है तथा मूल नगर भसावड है । इस गोत्र के परिवार नही मिलते है । इस गोत्र के श्रावक चम्पावती (चाकसू) में रहते थे । संवत् 1636 में तत्वधर्मामृत की प्रतिलिपि करवाकर मंडलाचार्य चन्द्रकीर्ति जी को प्रदान की थी ।

54. भांगड्या

भांगड्या गोत्र भी प्रचलित गोत्र नही है । इसका वंश ठीमर तथा कुल देवी ओरल है । भांगडे नगर इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान है ।

55. भूवाल

भूवाल गोत्र का कछवाहा वंश है । जमवाय इसकी कुल देवी है तथा भूवाल इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान है । इस गोत्र के परिवार भी वर्तमान में सम्भवतः नहीं मिलते ।

---

1. भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या 102
2. ग्रन्थ सूची तृतीय भाग—पृष्ठ संख्या 222

56. सरवाड्या

गौड वंश का सरवाड्या गोत्र है । इसकी कुल देवी नादरिण है तथा उत्पत्ति स्थान सरवाडे है ।

57. गोतवंशी

यह गोत्र भी 84 गोत्रों मे से एक गोत्र है । इस गोत्र का दुजिल वंश है । हेमां कुल देवी है तथा गोतडी नामक ग्राम इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान है । लेकिन बख्तराम साह ने इस प्रकार के किसी गोत्र का उल्लेख नही किया है ।

58. चोवार्या

प्रस्तुत गोत्र को 84 गोत्रो मे गिनाया गया है । इस गोत्र का चौहान वश, चक्रेश्वरी देवी एव चौबारे उत्पत्ति स्थान है । बख्तराम साह ने इस गोत्र को 84 गोत्रों मे नहीं गिनाया है ।

59. गींदोड्या

इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान गिन्दोडी है । इसकी कुल देवी श्रीदेवी है । इसका सोढा वंश माना जाता है । गीदोडया गोत्र के परिवार राजस्थान अथवा अन्य किसी प्रदेश में रहते हो इसकी जानकारी नही मिलती ।

60. छाहड

इस गोत्र का नादेचा कुल है । कुरु वंश है । देवी सोनलि तथा उत्पत्ति ग्राम छाहेड माना जाता है । बख्तराम साह ने भी इसी मत की पुष्टि की है—

कुल नांदेचा गोत सु तीन, देवी सोनलि पूजहि दीन ।
छाहड कोकराज जुग-राज, ए तीनों तिन में अति लाज ।।

61. कोकराज

इस गोत्र का नादेचा कुल है । कुरु वश का यह गोत्र है तथा इस गोत्र की देवी सोनलि है । इसका उत्पत्ति स्थान कोकरजे है । इस गोत्र के परिवार भी सम्भवतः नही है । श्री राजमल बडजात्या ने इस गोत्र का नाम कोकणराज्या लिखा है ।

62. जुगराज्या

उत्पत्ति नगर जगराजै को छोड़ कर कुल, वश एवं कुलदेवी वे ही है जो कोकराज गोत्र की मानी जाती है ।

63. मूलराज

इस गोत्र के कुल का नाम मोहिल है । कुरु वंश है । सोनिल कुल देवी है तथा उत्पत्ति स्थान मूलराज्ये है । बख्तराम साह भी उक्त मत के समर्थक हैं ।

64. लटीवाल

इस गोत्र के कुल का नाम मोहिल है । कुल देवी का नाम श्रीदेवी एवं सोढा इस गोत्र का वंश है । लटवे इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान है ।

65. बोरखण्ड्या

इस गोत्र की कुल देवी हेमा मानी गयी है । इसका वंश दुजिल है । इसका गहलोत कुल माना है तथा उत्पत्ति स्थान बोरखण्डे है । बख्तराम साह ने इसके कुल का वरणन निम्न प्रकार किया है—

इक कुल के जानौं गहलोत, तिनको बोरखण्डिया गोत ।।751।।

66. कुलभण्या

इस गोत्र की कुल देवी हेमा है । इसका दुजिल वंश तथा कुलमण्ये उत्पत्ति स्थान का नाम है । इस गोत्र के परिवार भी प्रायः नहीं मिलते हैं ।

67. मोलसर्या

यह सोढा वंशीय गोत्र है । कुल देवी का नाम सकराय है तथा उत्पति स्थान मलसरे है । बख्तराम साह ने इस गोत्र का चन्देल वश तथा कुल देवी का नाम मातणि लिखा है—

कुल चन्देल गोत द्वै सार, मूलसर्या फुनि चांदूवार ।
देवी मातरिग पूजत गुणी, तामें भेद कहूं सो सुणी ।।754।।

68. लोहट

इस गोत्र का नाम लावट भी मिलता है । बख्तराम साह ने भी लावट नाम लिखा है । इस गोत्र का मेरठि वंश का नाम है तथा कुलदेवी लोसिल माता है । उत्पत्ति स्थान लोहटे लिखा है ।

69. नरपोल्या

नरपोल्या गोत्र का वंश गौड है । कुलदेवी नांदणि है तथा उत्पत्ति स्थान नरपोले है । बख्तराम साह ने इस गोत्र के कुल का नाम दहर्या लिखा है ।

नरपोल्या निरगंधा गोत, कुल है दहट्या और नहि होत ।

70. भडसाली

इस गोत्र की कुलदेवी का नाम ग्रामणि है । इसका सोम वंश है । सोलंकी कुल का नाम है । उत्पत्ति नगर का नाम भडसाले हैं । इस गोत्र के सम्बन्ध मे इतिहास लेखक एक मत नही हैं । घ प्रति में इस गोत्र को मडसाली बज लिखा है तथा इसको बज गोत्र से जोडा है लेकिन बख्तराम साह ने इस गोत्र की यादव कुल, रोहिणी कुलदेवी माना है ।

71. वैनाडा

गोत्र–वैनाडा । वंश–ठीमर । कुलदेवी ग्रोरल । उत्पत्ति स्थान–वनावड ।

इस गोत्र का उल्लेख सभी इतिहासकारो ने नहीं किया है । लेकिन दौसा के बीसपंथी मन्दिर में एक नंदीश्वर की धातु की मूर्ति है जो संवत् 1660 फागुन बुदी 5 गुरुवार के दिन माखुणा में वैनाडा गोत्रीय मा भोजा उसके पुत्र ऊदा, तपुत्र हेमा, नाथा बाला, सावल राम, दामोदर माता ठाकुरी दादी रुकमा ने उसकी प्रतिष्ठा की थी ।

वैनाडा गोत्रीय परिवार जयपुर, ग्रागरा, लालसोट ग्रादि नगरो मे मिलते है ।

72 कडवागर

इस गोत्र का उत्पत्ति नगर कडवागरी है । इसका वंश सोम है कुल गौड है तथा कुलदेवी का नाम नादणी है । बख्तराम साह ने कुलदेवी का नाम नादिल लिखा है तथा कुल का नाम पडिहार माना है ।

73. सुपत्या

इस गोत्र का नाम सरपत्या एवं सुरपत्या भी मिलता है । इस गोत्र का मोहिल कुल है तथा कुलदेवी जीणि माता है । इसका उत्पत्ति स्थान सुरपति नगर है । इस गोत्र के परिवारो के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती है ।

74. दरडोद्या

गोत्र दरडोद्या/वंश सोम/कुल चौहान/कुल देवी चक्रेश्वरी ग्राम–दरडे/मूल पुरुष राजा दमतारिजी ।

इस गोत्र मे होने वाले किसी भी व्यक्ति का कोई इतिहास नही मिलता । वर्तमान में इस गोत्र वाले परिवार कही नही मिलते ।

75. पिगुल्या

गोत्र पिगुल्या/वंश-सोम/कुल–चौहान/कुलदेवी–चक्रेश्वरी/ग्राम का नाम–पिगुल ।

इस गोत्र के परिवार वालों का सामाजिक एवं आर्थिक योगदान का कहीं कोई उल्लेख नही मिलता । वर्तमान में इस गोत्र के परिवार भी नहीं मिलते हैं ।

76. भुलाण्यां

गोत्र–मुलाण्यां, मुलणा/वंश–सोम/कुल–चौहान/कुलदेवी–चक्रेश्वरी/ग्राम का नाम–भूलणा ।

इस गोत्र के प्रथम पुरुष भूधरमल जी थे । जो भूलणा ग्राम के ठाकुर थे । इस गोत्र का प्रशस्तियों अथवा अन्य लेखों में कोई उल्लेख नहीं मिलता । ऐसा लगता है यह गोत्र आगे नही चल सका । वर्तमान में इस गोत्र के परिवार भी कहीं नहीं मिलते ।

77. वनमाली

इसका दूसरा नाम वनमाल्या भी मिलता है । क, ग एवं घ प्रति में इस गोत्र के वंश का नाम चौहाण एवं कुल देवी चक्रेश्वरी दिया हुआ है । इस गोत्र का उदगम वनमाले ग्राम मे हुआ था । ख प्रति से इस गोत्र का वंश यादव एवं कुल देवी रोहिणी लिखा है । पं. बख्तराम साह ने भी वनमाली गोत्र का यादव कुल एवं रोहिणी देवी लिखा है ।

कुल जादव में पांच गोत नीकसे है ललित ।
तामै मानहु सांच, डेहचल पूजै वंद लो ।।740।।
वनमाला फुनि बंब, भडसाली अरु नरपत्या ।
करत न तनक विलंब, पूजत देवी रोहणी ।।741।।

वनमाली गोत्र के श्रावकों का ही कोई उल्लेख नहीं मिलता । सम्भवत: इस गोत्र के परिवार खडेले मे रहे और वहां से कही बाहर नही गये । वनमाली दो प्रकार के हैं––एक सोमवंशी चौहान कुलदेवी चक्रेश्वरी वाले तथा दूसरे सोमवंश मोहिल कुल एवं कुलदेवी चक्रेश्वरी को मानने वाले ।

78. पीतल्या

गोत्र–पीतल्या वश–सोम, कुल चौहाण, कुल देवी चक्रेश्वरी ग्राम का नाम–पीतले । पं. बख्तराम ने बुद्धि विलास में इसी बात का समर्थन किया है ।

पीतल्या पहाड्या सांभर्या नरपति हेला पांडिया ।
इस राजभद्र अरु छाबडा चौदह गोत्र सुमांडिया ।।733।।

लेकिन ख प्रति में गोत्र पीतल्या उतन पीतल्यों वंश कुछाहा कुल देव्या जगुवाय दिया गया है ।

विगत 600-700 वर्षों में पीतल्या गोत्र वाले परिवारों का कही उल्लेख नहीं मिलता । इसलिये ऐसा लगता है कि अपने उद्भव के कुछ ही समय पश्चात् यह गोत्र भी आगे नहीं चल सका ।

79. अरडक

अरडक गोत्र की गिनती प्रारम्भ के 14 गोत्रो में की गयी है । इसका वश सोम, कुल चौहान, कुलदेवी चक्रेश्वरी है । ख प्रति मे इस गोत्र के इतिहास मे इस गोत्र के मूल पुरुष का नाम श्री अजबसिंह जी गिनाया गया है । साथ मे यह भी लिखा है कि "आठे चौदामि चाकी फरेजे नही । चाकी को अपमान करे नही ।" यह कार्य इस गोत्र वालों के लिये वर्जित था । लेकिन अरडक गोत्र अधिक समय तक नही चला और वर्तमान में इस गोत्र के परिवार भी कही नही मिलते ।

80. चिरकन्या/चिरकनां

यह गोत्र आचार्य जिनसेन द्वारा निर्धारित 14 गोत्रो मे से अन्तिम गोत्र माना गया है । इसके कुल वश, देवी वही है जो इस समूह के अन्य गोत्रो की है । लेकिन बुद्धिविलास में चिरकन्या गोत्र की गिनती इक्ष्वाकु वश में की गयी है और चक्रेश्वरी के स्थान पर नांदिल देवी को इस गोत्र की देवी बतलाया है । जैसा कि निम्न पंक्तियों मे है ।

कुल भाला सु गोत चरकनां, नांदिल पूजत है शुभ बुद्धिविलास मनां ।।768।।

चिरकन्या गोत्र को भी अब लुप्त प्राय समझना चाहिये । इस गोत्र के श्रावकों का उल्लेख अभी तक किसी भी प्रशस्ति मे नही मिलता ।

81. जलबाण्या

वश-सोम/कुल-कुछवाहा/नगर--जलवाणे/जलभाणे कुलदेवी--जमवाय । इस गोत्र का दूसरा नाम जलभाण्या भी मिलता है । इस गोत्र के परिवार भी संभवत: कही नही मिलते है ।

82 सांभर्या

वश-सोम/कुल-चौहाण/नगर--साभरि/देवी-चक्रेश्वरी/जोबनेर के मंदिर वाली पाण्डुलिपि मे कुलदेवी का नाम साभराय लिखा है । यदि प्रस्तुत सांभर ही

इस गोत्र का उत्पत्ति स्थान है तो इससे इतिहास के कितने ही ग्रंथ खुले पृष्ठ खुल जावेंगे तथा खण्डेला की सीमा सांभर तक आ जावेगी ।

83. राजभद्र

गोत्र–राजभद्र/वंश-सोम/कुल-चौहाण/नगर–स्थान राजभद्र/कुलदेवी-चक्रेश्वरी/ प्रथम पुरुष–रामसिंह ।

इस गोत्र के परिवार भी समाप्त हो गये प्रतीत होते हैं ।

84 साखूण्या

गोत्र साखूण्या । वंश-सोढा । उत्पत्ति स्थान साखूणौ अथवा साखुणि । कुलदेवी मकराय । ख प्रति के अनुसार इस गोत्र के वंश का नाम सांखुला है । भाट के अनुसार इस गोत्र की कुल देवी आमना है । इस गोत्र के प्रथम पुरुष ठाकुर श्याम सिंह जी माने जाते हैं जिन्होंने संवत् 990 में श्रावक व्रत ग्रहण किये थे ।

84 गोत्रों के अतिरिक्त गोत्र

उक्त 84 गोत्रों के अतिरिक्त, खण्डेलवाल जैन समाज के ही निम्न गोत्रों का उल्लेख ग्रंथ प्रशस्तियो/मूर्ति लेखों में और मिलता है :—

साधु गोत्र, ठाकुल्यावाल, मेलूका, नायक, खाटड्या, सरस्वती, कुरकुरा, वोठवोड, कोटरावल, मसावड्या, बीजुणा, काधावाल, रिन्धिया एवं सांगरिया ।

उक्त 14 गोत्र कभी खण्डेलवालो के गोत्रों में सम्मिलित थे ऐसा ग्रंथ प्रशस्तियो एवं मूर्तिलेखो मे के आधार पर कहा जा सकता है । हैं । लेकिन इनका वंश, कुल उत्पत्ति स्थान एव मूल पुरुष के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नही मिलता क्योंकि ये मान्यता प्राप्त 84 गोत्रो में सम्मिलित नहीं थे । इन गोत्रो के अतिरिक्त और भी गोत्र हो सकते हैं जो कभी खण्डेलवाल जैन जाति के अंग रहे थे ।

(1) साधु गोत्र

इस गोत्र का सर्वप्रथम उल्लेख जयसेनाचार्य ने अपने गोत्र के रूप में किया है । आचार्य जयसेन 11वी–12वीं शताब्दी के आचार्य थे ।

इस गोत्र का संवत् 1586 के मूर्ति लेख एवं ग्रंथ प्रशस्ति दोनों में नामोल्लेख हुआ है ।

(1) संवत् 1586 के फाल्गुन सुदी 10 को मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से खण्डेलवालान्वय साधु गोत्रीय श्रावक सा. गूजर एवं उसके परिवार अर्हत् यंत्र की स्थापना की थी । यह यन्त्र टोडारायसिंह के आदिनाथ स्वामी के मन्दिर में विराजमान है ।

इसी तरह सवाई माधोपुर के पार्श्वनाथ पंचायती मन्दिर में धातु की चौबीसी है जिसे साधु गोत्रीय सा. राघो एवं उसके परिवार ने मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से उसे विराजमान की थी ।

(2) ठाकुल्यावाल

इस गोत्र का एक लेख सवत् 1510 का प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार 18—12 आकार की तीर्थंकर प्रतिमा को खण्डेलवालान्वय ठाकुल्यावाल गोत्रीय श्रावक सा. लाखू एवं उसके परिवार ने विराजमान की थी । यह प्रतिमा भी सवाई माधोपुर के मुसावडियों के मन्दिर मे विराजमान हैं ।

(3) मेलूका

मेलूका गोत्र का उल्लेख एक यन्त्र की प्रशस्ति में निम्न प्रकार हुआ है—

"सम्वत् 1592 जेष्ठ सुदी 1 श्री मूलसंघे मंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्राय देवा खण्डेलवाल मेलूका गोत्र साह घरिया ।"

—दि. जैन मन्दिर, दूनी (टोंक)

(4) नायक

नायक गोत्र का उल्लेख सम्वत् 1511 चैत्र बुदी 2 की एक ग्रन्थ प्रशस्ति मे हुआ है । उसमें खण्डेलवालान्वय नायक गोत्रे साह उधर तस्य भार्या उधरश्री तयो: पुत्र माल्हा, सोढा डालू इदं शास्त्रं (श्रीचन्दमुनिकृत पदमनन्दि टिप्पणकं) लिखायित कर्मक्षय निमित्त । प्रस्तुत ग्रन्थ भट्टारक पदमनन्दि के शिष्य मुनि मदनकीर्ति तत शिष्य ब्रह्म नरसिंह के निमित्त लिखा गया था ।

—ग्रन्थ सूची पचम भाग, पृष्ठ 278

नायक गोत्र का एक और उल्लेख $7\frac{1}{3}$ इन्च आकार के यन्त्र में हुआ है । जो सांवला जी के मन्दिर आमेर मे विराजमान है । जिसका लेख निम्न प्रकार है—

संवत् 1534 वर्षे माघ सुदी 11 मूलसघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक जिनचन्द्र देवा तत शिष्य मुनि रत्नकीर्ति उपदेशात् खण्डेलवालान्वये नायक गोत्रे सं. ताल्ह भार्या बीना तस्य पुत्र सघी थाल्हा भार्या साह तत्पुत्र सा. रणमल्ल कालू वाचा मोल्हा यन्त्र कारापितं ।

(5) खाटड्या

इस गोत्र का उल्लेख भी आमेर के सांवला जी के मन्दिर के एक चौबीसी प्रतिमा के लेख में हुआ है ।

(6) सरस्वती गोत्र

सरस्वती गोत्र का उल्लेख अभी तक संवत् 1508 एवं संवत् 1512 की प्रशस्तियों में मिला है।

दूनी (राज.) के पार्श्वनाथ मन्दिर में षोडशकारण यन्त्र मे खण्डेलवालान्वय सरस्वती गोत्र का उल्लेख हुआ है। जिसमें भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य मुनि नेमानंदि के उपदेश से संघी काल्हा भार्या साधीरानी तयोः पुत्राः सं. भीटवा सा. माधो सा. लाल एते सपरिवारा नित्यं प्रणमति।

—जैन लेख संग्रह—भाग II, पृष्ठ 210

दूसरा लेख श्रीपाल चरित्र (नरसेन) की एक लेखक प्रशस्ति में लिखा हुआ है। इस ग्रन्थ को भी सरस्वती गोत्रीय साहू माधो एवं उनके परिवार ने इस ग्रन्थ को लिखवा कर अतिशय पुण्य अर्जन किया था।

—प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ 177

(7) कुरकुरा गोत्र

जयपुर के सिरमोरियों के मन्दिर में एक ह्रींकार का यन्त्र है जिसमें खण्डेलवालान्वये कुरकुरा गोत्रीय साह कालू पुत्र तीकु पुत्र साह चेला, मांगा, नाथू, चेला पुत्र छाजु बाजु आनन्दा आदि ने यन्त्र की स्थापना की थी।

(8) वोटवाड

जयपुर के लश्कर के मन्दिर में ताम्बे का यन्त्र है जिसकी प्रतिष्ठा सम्वत् 1571 में ज्येष्ठ सुदी 2 को हुई थी। इस यन्त्र को वोटवाड गोत्रीय श्रावक सेड भार्या सुहागदे एवं उनके पुत्रों ने विराजमान किया था।

(9) काटरावाल

इस गोत्र का उल्लेख महासेनाचार्य के प्रद्युम्न चरित्र की प्रशस्ति मे हुआ है। प्रशस्ति संवत् 1595 की है। रामसरनगर के निवासी काटरावाल गोत्रीय श्रावक सा. चेला ने उक्त ग्रन्थ को लिखवा कर धर्मचन्द्र को दिया था।

—ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ 181

(10) भसावड्या

इस गोत्र के श्रावक चम्पावती (चाकसू) में रहते थे तथा उन्होंने सम्वत् 1636 मे तत्व धर्मामृत की पाण्डुलिपि लिखवा कर मंडलाचार्य चन्द्रकीर्ति को भेंट की थी। इस गोत्र की 84 गोत्रो मे भी गणना की गयी है।

—चतुर्थ भाग, पृष्ठ 328

(11) बीजुवा

बीजुवा गोत्र के श्रावक श्रीपथा के निवासी थे । साह मदन भार्या हरिसिणी ने देवागम स्तोत्र टीका की पाण्डुलिपि मुनि धर्मचन्द्र को प्रदान की थी ।

—ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ 395

(12) कांधावाल

उक्त गोत्र का उल्लेख गुणभद्राचार्य के धन्यकुमार चरित्र की प्रशस्ति में हुआ है । जिसके अनुसार उसे कांधावल गोत्रीय श्रावक चोखा तद् भार्या चोखसिरि एवं पुत्र नाथू ने मंडलाचार्य धर्मचन्द्र को प्रदान किया था । उस समय सम्वत् 1595 ज्येष्ठ सुदी 11 बृहस्पतिवार था । वर्तमान मे यह पाण्डुलिपि इन्दरगढ के शास्त्र भण्डार में संग्रहित है ।

(13) रिन्धिया

इस गोत्र के परिवार दिल्ली एवं मांदीखेरा (फिरोजपुर झिरका) में मिलते है । इनका सम्बन्ध खण्डेलवाल जैनो मे होता है ।

(14) सांगरिया

यह गोत्र भी मिलता है । इस गोत्र का एक घर पटना सिटी मे चुन्नीलाल आनन्द स्वरूप का है । यह पजाबी खण्डेलवाल जैन है । इनका सम्बन्ध भी पजाब के खण्डेलवाल जैनो से होता है ।

□ □ □

अध्याय 5

आचार्य, मुनि एवं भट्टारक

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् 62 वर्षों मे गौतम स्वामी सुधर्मा-स्वामी एव जम्बू स्वामी ये तीन केवल ज्ञानी हुए और निर्वाण प्राप्त किया । इसके पश्चात् आगामी 100 वर्षों में पाँच श्रुतकेवली हुये । श्री भद्रबाहु स्वामी अन्तिम श्रुतकेवली थे । वीर निर्वाण सम्वत् 162 के पश्चात् 183 वर्ष में दश पूर्व धारी 10 आचार्य हुए इनमें विशाखाचार्य प्रथम एवं धर्मसेनाचार्य अन्तिम आचार्य थे । वीर निर्वाण सम्वत् 345 के पश्चात् 123 वर्ष मे एक दशांगधारी पाँच आचार्य हुये । जिनके नाम नक्षत्राचार्य, जयपालनाचार्य, पाण्डवाचार्य, ध्रुवसेनाचार्य एवं कंसा-चार्य है । इनके पश्चात् 97 वर्षों में फिर पाँच आचार्य हुये जो दश, नव एव अष्टांग ज्ञान के ज्ञाता थे । इस परम्परा में लोहाचार्य अन्तिम आचार्य माने जाते है । वीर निर्वाण सम्वत् 565 के पश्चात् आगामी 118 वर्ष तक एकांगधारी आचार्य होते रहे इनमें आचार्य भूतबलि अन्तिम आचार्य थे ।

वीर निर्वाण सं. 470 के पश्चात् विक्रम सम्वत् 101 में दिगम्बर जैन समाज में खण्डेलवाल जैन जाति का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार अन्तिम एकांगधारी पाँच आचार्य—अर्हद्बलि, माधनन्दि, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्ताचार्य एवं आचार्य भूतबलि ये सभी आचार्य विक्रम सम्वत् 101 के पश्चात् हुये । लेकिन नन्दिसंघ पट्टावली में उक्त आचार्यों को सम्मिलित नहीं किया गया और उस परम्परा में आचार्य भद्रबाहु को प्रथम आचार्य के रूप में मान्यता दी गयी । पहिले इस परम्परा में होने वाले आचार्यों की आचार्य परम्परा के रूप में गणना की जाती रही लेकिन 14–15वी शताब्दी से जब आचार्यों को भट्टारको की संज्ञा दी जाने लगी तो इन भट्टारकों ने आचार्य परम्परा को भी भट्टारक परम्परा के रूप मे प्रचारित किया और सभी आचार्यों को भट्टारक के रूप में मान्यता दी गयी ।

राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में इन भट्टारकों की अनेक पट्टावलियाँ मिलती हैं । कुछ पट्टावलियों मे आचार्यों अपर नाम भट्टारको के नाम के आगे उनकी जाति का भी उल्लेख किया गया है । यह एक महत्वपूर्ण जानकारी है जो इन पट्टावलियों

में हमें मिलती है। इन पट्टावलियों की सत्यता मे किसी को सन्देह नही होना चाहिये क्योंकि उनमें जो कुछ लिखा हुआ है वह उपलब्ध होने वाले अन्य प्रमाणों के आधार पर भी सत्य सिद्ध होता है। इन्ही पट्टावलियों में कुछ आचार्यों/भट्टारकों को खण्डेलवाल जैन जाति एवं उनके गोत्रों से निर्दिष्ट किया गया है।

खण्डेलवाल जैन जाति मे उत्पन्न होने वाले मुनि श्री मेघचन्द्र प्रथम आचार्य थे। उन्होंने 24 वर्ष 3 माह 27 दिन गृहस्थावस्था मे रहने के पश्चात् मुनि दीक्षा धारण की और 6 वर्ष 7 माह 13 दिन तक मुनि अवस्था मे रहे। इसके पश्चात् उन्होने आचार्य पद प्राप्त किया और 12 दिन के अन्तराल के पश्चात् पौष कृष्णा 3 विक्रम सम्वत् 601 में इनका आचार्य पद पर अभिषेक किया गया। आचार्य पद पर वे 25 वर्ष 5 मास 20 दिन तक रहे और अन्त मे 56 वर्ष 2 दिन की आयु मे स्वर्गवास प्राप्त किया। आचार्य मेघचन्द्र आचार्य परम्परा के 24वे आचार्य थे।

आचार्य मेघचन्द्र के पश्चात् दूसरी जैन जातियो मे से आचार्य पद प्राप्त करते रहे। एक के पश्चात् दूसरे 52 आचार्य होते रहे लेकिन खण्डेलवाल जैन जाति के कोई भी मुनि इस उत्कृष्ट पद को प्राप्त नही कर सके। लेकिन आचार्य चारुकीर्ति के शिष्य **आचार्य बसन्तकीर्ति** हुये जो साह गोत्रीय खण्डेलवाल जैन जाति के सदस्य थे। वे जब 12 वर्ष के थे तभी मुनि दीक्षा धारण कर ली। 20 वर्ष तक मुनि अवस्था मे रहने के पश्चात् माघ शुक्ला 5 विक्रम सवत् 1264 में आचार्य पद प्राप्त किया। लेकिन इस पद पर केवल 1 वर्ष 4 माह 22 दिन तक रहने के पश्चात् केवल 33 वर्ष 5 माह की अल्पायु मे ही स्वर्गारोहण किया। आचार्य बसन्तकीर्ति ग्वालियर पट्ट के अन्तिम भट्टारक थे। लेकिन मूलसंघ की आचार्य परम्परा मे अतिरिक्त देश में और भी कितने ही आचार्य हो गये है जिन्होने जैन साहित्य एवं सस्कृति की अपूर्व सेवा की थी और जिनके नाम आज भी श्रद्धापूर्वक लिये जाते हैं। इन्ही आचार्यो में कितने आचार्य जन्म मे खण्डेलवाल जातीय थे इसका अभी तक कोई पता नही चल सका है और न किसी ने इन आचार्यो की जाति विशेष की खोज ही की है। अभी मुझे अकस्मात ही आचार्य जिनसेन की जाति एव गोत्र का पता लग सका। ये आचार्य वे ही है जिन्होने कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय की संस्कृत में तात्पर्यय टीका लिखी जो जैन समाज में बडी श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती है। उक्त आचार्य जयसेन द्वारा सवत् 1144 में प्रतिष्ठित एक प्रतिमा अलवर के दिगम्बर जैन अग्रवाल मन्दिर में मिली है। जयसेन आचार्य साधु गोत्रीय खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। साधु गोत्र का उल्लेख स्वयं आचार्य ने अपनी पचास्तिकाय की प्रशस्ति में किया है तथा साधु गोत्र खण्डेलवाल जाति का एक गोत्र था यह टोडारायसिंह के मन्दिर के एक मूर्ति लेख से पता चलता है।

इस प्रकार आचार्य मेघचन्द्र के पश्चात् 11वीं शताब्दी में होने वाले आचार्य जयसेन दूसरे आचार्य हैं जो खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे।

ग्वालियर के पश्चात् दिगम्बर जैनाचार्यो का अजमेर केन्द्र बन गया। वहां संवत् 1266 से 1285 तक पाच आचार्य हुये जिनमें आचार्य शांतिकीर्ति एव धर्मचन्द्राचार्य ये दो ही आचार्य खण्डेलवाल जातीय थे। आचार्य शांतिकीर्ति छाबडा गोत्र के थे तथा कार्तिक कृष्णा अमावस्या विक्रम संवत् 1268 में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए थे। ये 18 वर्ष तक गृहस्थ रहे। 23 वर्ष तक मुनि अवस्था में रहने के पश्चात् 2 वर्ष 9 महिने 7 दिन तक आचार्य पद पर रहे और 44वे वर्ष में समाधि मरण प्राप्त किया।

आचार्य शांतिकीर्ति के पश्चात् आचार्य धर्मचन्द्र हुए जो सेठी गोत्रीय खण्डेलवाल जैन जाति के थे। श्रावण शुक्ला 15 विक्रम संवत् 1271 में इनका पट्टाभिषेक हुआ और 25 वर्ष 5 दिन तक इस पद पर रहने के पश्चात् 65 वर्ष 13 दिन की आयु में स्वर्गवास किया। इन्होंने संवत् 1272 कार्तिक शुक्ला 6 को खण्डार (राजस्थान) के पहाड़ की प्रतिष्ठा करवाई थी इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां राजस्थान के कितने ही स्थानो पर विराजमान की हुई मिलती है। सभी प्रतिष्ठित मूर्तियां अत्यधिक मनोज्ञ एवं कलापूर्ण है।

इसके पश्चात् ग्रंथ प्रशस्तियो एवं लेखक प्रशस्तियों में कुछ आचार्यो के नाम अवश्य आते है। इसलिए आचार्यों एवं मुनियों की यह परम्परा कभी बन्द नही हुई। संवत् 1730 में मुनि जयकीर्ति हुये जो भट्टारक जिनचन्द्रदेव के शिष्य थे[1] संवत् 1693 मे पुष्पदन्त के आदिपुराण की एक पाण्डुलिपि नरेश मुनि को प्रदान की गयी।[2] संवत् 1577 में मुनि माघनन्दि का उल्लेख आता है जिनको क्रियाकलाप की पाण्डुलिपि दी गई है।[3] इसी तरह संवत् 1582 में रत्नकरण्ड शास्त्र की लेखक प्रशस्ति में मुनि हेमकीर्ति का उल्लेख आता है।[4] संवत् 1632 में निवाई (राज) का उल्लेख आता है जहां महाराज साह ने सुदर्शन चरित्र नामक ग्रन्थ लिखवाकर आचार्य हेमचन्द्र को प्रदान किया था।[5]

आ भट्टारक पद की प्रमुखता

लेकिन 13वीं शताब्दी के पश्चात् आचार्य पद गौण हो गया और भट्टारक कहलाना अधिक गौरव की बात समझी जाने लगी। इसलिये भट्टारक धर्मचन्द्र के पीछे एक लम्बी परम्परा चली और एक के पश्चात् दूसरे भट्टारक होते रहे। यह भट्टारक परम्परा सं. 1974 तक अक्षुण्ण रूप से चलती रही।

---

1. प्रशस्तिसंग्रह–डा. कासलीवाल पृष्ठ सं. 63
2. वही पृष्ठ सं. 80
3. वही पृष्ठ सं. 98
4. वही पृष्ठ सं. 190
5. वही

यहां हम उस भट्टारक पट्टावली को दे रहे हैं जो मूल परम्परा के भट्टारक कहलाते थे ।

1. संवत् 1296 भादवा बदि 13 रत्नकीर्ति जी अजमेर गादी के भट्टारक बने । वे 19 वर्ष तक गृहस्थ रहने के पश्चात् 25 वर्ष तक साधु अवस्था में रहे और फिर 14 वर्ष 4 महिने 10 दिन तक भट्टारक पद पर रहे । वे जाति से नागद्रहा थे ।

2. संवत् 1310 पोस सुदि 14 प्रभाचन्द्र जी भट्टारक गादी पर अभिशिक्त हुये । ये 12 वर्ष तक गृहस्थ एव 12 वर्ष तक साधु रहने के पश्चात् 74 वर्ष 1। महिने एवं 15 दिन तक भट्टारक पद पर रहे और फिर 98 वर्ष 11 महिने एव 15 दिन की आयु में स्वर्ग सिधार गये । ये जाति से पद्मावती पोरवाल थे ।

नोट—ये सभी अजमेर पट्ट पर हुए ।

3. संवत् 1385 पोस सुदि 7 भट्टारक पद्मनन्दि जी गृहस्थ वर्ष 10 मास 7 दीक्षा वर्ष 23 मास 5 पट्टस्थ वर्ष 65 मास 5 दिन 18 अन्तर दिन दिन 10 सर्व वर्ष 99 मास दिन 28 ।

4. संवत् 1450 माह सुदि 5 भट्टारक शुभचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष 16 दीक्षा वर्ष 14 पट्टस्थ वर्ष 56 माह 3 दिन 4 अन्तर दिन 11 सर्व वर्ष 96 मास 3 दिन 15, जाति अग्रवाल ।

5. संवत् 1507 जेठ बदि 5 भट्टारक जिनचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष 12 दीक्षा वर्ष 15 पट्टस्थ वर्ष 64 मास 8 दिन 17 अन्तर दिन 10 सर्व वर्ष 91 मास 8 दिन 27, जाति अग्रवाल ।

6. संवत् 1571 फागुण बदि 2 भट्टारक प्रभाचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष 15 दीक्षा वर्ष 35 पट्टस्थ वर्ष 9 मास 4 दिन 25 अन्तर दिन 8 सर्व वर्ष 59 मास 8 दिन 3, जाति खण्डेलवाल गोत्र वैद ।

प्रभाचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध एवं समर्थ भट्टारक थे । एक लेख प्रशस्ति मे इनके नाम के पूर्व पूर्वाचलदिनमणि षड्तर्कतार्किकचूडामणि आदि विशेषण लगाये गये हैं जिससे इनकी विद्वता एव तर्कशक्ति का परिज्ञान होता है । अपने 9 वर्ष 4 महिने एवं 25 दिन के भट्टारक काल में इन्होंने धार्मिक क्षेत्र मे अद्भुत् कार्य किया और जन-जन के जीवन में धार्मिक संस्कार डालने का प्रयास किया । इनका पट्टाभिषेक सम्मेदशिखर पर संवत् 1571 फागुण सुदी 2 के शुभ दिन हुआ था । ये रणथम्भोर के निवासी वैद्यराजा वीझराज के पुत्र थे ।

प्रभाचन्द्र ने सारे राजस्थान में विहार किया । शास्त्रभण्डारो का अवलोकन किया और उनमे नयी-नयी प्रतिया लिखवाकर प्रतिष्ठापित की । राजस्थान के

शास्त्रभण्डारों में इनके समय में लिखी हुई सैकड़ों प्रतियां संग्रहीत है और इनका यशोगान गाती हैं। संवत् 1575 की मार्गशीष शुक्ला 4 को बाई पार्वती ने पुष्पदन्त कृत जसहरचरिउ की प्रति लिखवाई और भट्टारक प्रभाचन्द्र को भेंट स्वरूप प्रदान की।

संवत् 1579 के मंगसिर मास में इनका टोंक नगर मे विहार हुआ। चारो ओर आनन्द एव उत्साह का वातावरण छा गया। इसी विहार की स्मृति में पण्डित नरसेन कृत "सिद्धचक्रकथा" को प्रतिलिपि खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न टोंग्या गोत्र वाले साह धंरमसी एवं उनकी भार्या खातू ने करवायी और उसे बाई पदमसिरी को स्वाध्याय के लिये भेंट की।

संवत् 1580 मे सिकन्दराबाद नगर में इन्ही के एक शिष्य ब्र. बीडा को खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न साह दौदू ने पुष्पदन्त कृत जसहरचरिउ की प्रतिलिपि लिखवाकर भेंट की। उस समय भारत पर बादशाह इब्राहिम लोदी का शासन था। उसके दो वर्ष पश्चात् सवत् 1582 में घटियालीपुर में इन्ही के आम्नाय के एक मुनि हेमकीर्ति को श्रीचन्दकृत रत्नकरण्ड की प्रति भेंट की गयी। भेंट करने वाली थी बाई मोली। इसी वर्ष जब इनका चम्पावती (चाँटसू) नगर में विहार हुआ तो वहाँ के साह गोत्रीय श्रावकों द्वारा सम्यक्त्व-कौमुदी की एक प्रति बूचा (बूचराज) को भेंट दी गयी। ब्रह्म–बूचराज भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान थे। संवत् 1583 की आषाढ़ शुक्ला तृतीया के दिन इन्हीं के प्रमुख शिष्य मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से महाकवि यश:कीर्ति विरचित "चन्दप्पहचरित" की प्रतिलिपि की गयी जो जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

जब भट्टारक प्रभाचन्द्र चित्तौड पधारे तो उनका वहां भी जोरदार स्वागत किया गया तथा उनके उपदेश से "मेघमालाव्रत काव्य" की पार्श्वनाथ मन्दिर में रचना की गयी।

संवत् 1584 में महाकवि धनपाल कृत बाहुबलि चरित की बघेरवाल जाति मे उत्पन्न साह माधो द्वारा प्रतिलिपि करवायी गयी और प्रभाचन्द्र के शिष्य ब्र. रत्नकीर्ति को स्वाध्याय के लिए भेंट दी गयी। इस प्रकार भट्टारक प्रभाचन्द्र ने राजस्थान में स्थान-स्थान में विहार करके अनेक जीर्ण ग्रन्थों का उद्धार किया और उनकी प्रतियां करवाकर शास्त्र भण्डारों में विराजमान की। वास्तव में यह उनकी सच्ची साहित्य सेवा थी जिसके कारण सैकड़ों ग्रन्थों की प्रतियां सुरक्षित रह सकीं अन्यथा न जाने कब ही काल के गाल में समा जाती।

भट्टारक प्रभाचन्द्र ने प्रतिष्ठा कार्यों में भी पूरी दिलचस्पी ली। भट्टारक

गादी पर बैठने के पश्चात् कितनी ही प्रतिष्ठाओं का नेतृत्व किया एवं जनता को मन्दिर निर्माण की ओर आकृष्ट किया। सवत् 1571 की ज्येष्ठ शुक्ला 2 को षोडशकारण यन्त्र एवं दशलक्षण यन्त्र की स्थापना की। इसके दो बर्ष पश्चात् संवत् 1573 की फाल्गुन कृष्णा 3 को एक दशलक्षण यन्त्र स्थापित किया।

संवत् 1578 की फाल्गुन सुदी 9 के दिन तीन चौबीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी और इसी तरह संवत् 1583 में भी चौबीसी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई। राजस्थान के कितने ही मन्दिरों में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां मिलती हैं। इनकी एक निषेधिका आवां एवं दूसरी टोडारायसिंह में बनी हुई है।

7. भट्टारक धर्मचन्द्र

–संवत् 1581 सावण बदि 5 भट्टारक धर्मचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष 9 दीक्षा वर्ष 31 पट्टस्थ वर्ष 21 मास 8 दिन 13 अंतर 5 सर्व वर्ष 61 मास 8 दिन 28, जाति खण्डेलवाल–गोत्र -गंगवाल।

भट्टारक प्रभाचन्द्र के स्वर्गवास के पश्चात् उन्ही के शिष्य भट्टारक धर्मचन्द्र का पट्टाभिषेक सवत् 1581 श्रावण बदि 5 के शुभ दिन चित्तोड मे हुआ। इस समय इनकी आयु 40 वर्ष की थी। इसके पूर्व 31 वर्ष तक इन्होने भट्टारक प्रभाचन्द्र के साथ ग्रन्थों का खूब अध्ययन किया था तथा प्रतिष्ठा विधि आदि के सम्बन्ध मे पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन्होंने सर्वप्रथम संवत् 1583 माह सुदी 5 क दशलक्षण यन्त्र की प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी। इसके प्रतिष्ठाकारक थे सघी माल्ह एवं उनकी धर्म पत्नी गौरी तथा पुत्र नेमदास विमलदास। वर्तमान में यह यन्त्र पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर टोंक मे उपलब्ध है। इसके पूर्व इनके उपदेश के आधार पर राणा संग्रामसिंह के शासनकाल मे चम्पावती नगर (चाटसू) मे किसी साह गोत्रीय श्रावक ने पचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी थी। इस लेख में धर्मचन्द्र को मण्डलाचार्य कहा है। पंचायती मन्दिर पार्श्वनाथ जी सवाई माधोपुर (राजस्थान) में एक चौबीसी जी की मूर्ति है जो सवत्–.586 फागुन सुदी 10 के शुभ दिन इन्ही धर्मचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी। प्रतिष्ठा के आयोजक खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न साह गोत्र के श्रावक थे। सवत् 1590 के ऐसे दो लख मिलते है जिनमें भट्टारक धर्मचन्द्र का उल्लेख है। एक लेख है सवत् 1590 माघ सुदी 7 का जिसमें चम्पावती नगर एव वहां के सम्भवनाथ चैत्यालय का उल्लेख है। यह प्रतिष्ठा बाकलीवाल गोत्र के स. तालु धर्म पत्नी तोला ने एव उनके पुत्र लल्लू बल्लू ने सम्पन्न करायी थी। दूसरा लेख सवत् 1590 माह सुदी 4 का है जिसमें भट्टारक धर्मचन्द्र का प्रभाचन्द्र के शिष्य रूप में उल्लेख है तथा लुहाड़िया गोत्र वाले श्रावक लाला एव उनके परिवार ने यन्त्र की प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी थी।

संवत् 1593 ज्येष्ठ सुदी 3 के दिन आयोजित समारोह भट्टारक धर्मचन्द्र के जीवन का सबसे बड़ा समारोह था। इस दिन आवां (राजस्थान) में एक बड़ी भारी प्रतिष्ठा आयोजित की गयी थी। इसमें शान्तिनाथ स्वामी की एक विशाल एवं मनोज्ञ प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई जो वहाँ के मन्दिर में विराजमान है। एक प्रतिष्ठा पाठ में इस प्रतिष्ठा का निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है।

"सवत् 1593 के साल गाँव आँवा में प्रभाचन्द्र धर्मचन्द्र के बारे वेणीराम छाबडो प्रतिष्ठा करायी। राजा सूर्यसेन कूं जैनी कर्यो। श्री भट्टारक दो घड़ी में गिरनारजी सूं आवा। बड़ी अजमत दिखाई। देव माया सूं घृत, खांड व गुड़ का कुंआ भर दीना। जीम्णार में 750 मण मिरच मुसाला में लागी। सबकूं जैनी कर्या। मूलनायक प्रतिमा शान्तिनाथ स्वामी की विराजमान की।"

उक्त उल्लेख से ज्ञात होता है यह प्रतिष्ठा प्रतिष्ठाओं के इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण थी जब उसमें सम्मिलित होने वाले दर्शनार्थियों को जैन धर्म में दीक्षित किया गया तथा धर्मचन्द्र ने अपनी विद्याओं का चमत्कार दिखलाया। इसी वर्ष आवां की एक पहाड़ी पर भट्टारक शुभचन्द्र, भट्टारक जिनचन्द्र एवं भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधकाएं स्थापित की गयी।

संवत् 1577 में भट्टारक धर्मचन्द्र मुनि कहलाते थे। उत्तरपुराण की टीका वाली प्रशस्ति में भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवा: तत् शिष्य मुनि धर्मचन्द्रदेवा उल्लेख मिलता है। एक दूसरी प्रशस्ति मे इसी संवत् में प्रवचनसार वृत्ति की एक पाण्डुलिपि को नागौर मे लिखवाकर साह खोंराज एवं उनके परिवार ने मुनि धर्मचन्द्र को भेंट की ऐसा उल्लेख मिलता है। संवत् 1595 में माघ शुक्ला 6 रविवार को साखोण नगर में वरांग चरित्र की एक पाण्डुलिपि मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शासन में लिखी गयी थी तथा उसमे धर्मचन्द्र को "सदगुरू" की उपाधि से सम्बोधित किया गया है। सवत् 1583 में चाटसू नगर में अपभ्रंश काव्य सिरिचन्दप्पह चरिउ की पाण्डुलिपि सा. काथिल एवं अन्य श्रावकों ने लिखवायी थी और उसे इनको भेंट की गयी थी। धर्मचन्द्र के एक शिष्य का नाम कमलकीर्ति था। इनको स्वाध्याय के लिये सवत् 1602 मेअपभ्रंश के पाण्डवपुराण–यश: कीर्तिकृत की सा. कोला अजमेरा ने पाण्डुलिपि तैयार करवायी और कमलकीर्ति को श्रद्धापूर्वक समर्पित की। इससे जान पड़ता है उस शताब्दी में अपभ्रंश क काव्यों को पढ़ने की ओर विद्वानों में रुचि थी। संवत् 1611 आषाढ़ बदी 9 शुक्रवार को अपभ्रंश के महाकाव्य "पासणाह चरिउ" (पद्मकीर्ति) की रचना भट्टारक धर्मचन्द्र के लिए की गयी थी। इस प्रशस्ति में धर्मचन्द्र को "**वसुन्धराचार्य**" की उपाधि से सम्बोधित किया गया है।

धर्मचन्द्र अपने साथ ब्र. एवं मुनियों के अतिरिक्त आर्यिकाएं भी रखते थे।

संवत् 1595 में इनकी एक शिष्या आर्यिका विनयश्री को पढ़ने के लिये कवि सिंह कृत "पज्जुण्णचरिउ" की पाण्डुलिपि साह सुरजन एव उसकी धर्मपत्नी सुनावत द्वारा भेंट की गयी थी । इनके एक शिष्य का नाम ब्र. कोल्हा था जिन्हें भी संवत् 1595 में धनपाल कृत भविसयत्तकहा की पाण्डुलिपि भेट मे दी गयी थी । धर्मचन्द्र अपने युग के बड़े भारी सन्त एवं प्रभावक आचार्य थे और जिन्होंने जैन साहित्य एवं संस्कृति की भारी सेवा की थी ।

भट्टारक धर्मचन्द्र के पश्चात् निम्न भट्टारक और हुये ।

भ. ललितकीर्ति–गृहस्थ वर्ष–7 दीक्षा वर्ष–25, पट्टस्थ वर्ष 19, दिन 15 अन्तर दिन–25 पट्टस्थ वर्ष–सवत् 1603 चैत्र सुदी 8 खण्डेलवाल जातीय गोधा गोत्र/भ. ललितकीर्ति का पट्टाभिषेक चित्तौड़ मे हुआ था ।

भट्टारक चन्द्रकीर्ति–पट्टस्थ वर्ष सवत् 1622 वैशाख सुदी अमावस, भट्टारक काल-40 वर्ष 9 मास अन्तर दिन–7/जाति खण्डेलवाल, गोत्र गोधा । इनका पट्टाभिषेक सम्मेद शिखर जी में सम्पन्न हुआ था ।

8 भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति–पट्टाभिषेक संवत् 1662 फागुन सुदी अमावस पट्टाभिषेक स्थान, सांगानेर/भट्टारक काल–28 वर्ष 7 मास 25 दिन अन्तर दिन 5/जाति खण्डेलवाल, गोत्र–सेठी

भट्टारक चन्दकीर्ति के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् 1662 फागुण सुदी अमावस्या को देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक गद्दी पर बैठे । ये 28 वर्ष 7 मास 25 दिन तक भट्टारक गादी पर रहे और इन वर्षों में राजस्थान के विभिन्न भागो मे विहार करके जैन धर्म एव सस्कृति के प्रचार एवं प्रसार मे योग दिया ।

एक जखडी के अनुसार भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति सेठ नवलशाह के पुत्र थे । उनकी माता का नाम सोभा था । बचपन मे ही इन्होने सयम धारण कर लिया और पाँच महाव्रत, तीन गुणव्रत एव चार शिक्षाव्रत की पालना करने लगे । वे शास्त्रार्थ में बहुत प्रवीण थे । और अपने विरोधियो को सहज ही में जीत लेते थे । उनका दिव्य मुख सूर्य के समान तेजस्वी लगता था । सिंहासन पर विराजमान होकर जब वे सूत्र एव सिद्धान्त ग्रन्थो पर व्याख्यान देते थे तब वे गौतम गणधर के समान लगने लगते थे ।

जनश्रुति के अनुसार एक कामदेव ने जब उनके संयम की प्रशंसा सुनी तो वह उस प्रशंसा को सहन नही कर सका और अपनी पत्नी रति को बुलाकर देवेन्द्रकीर्ति के सयम को भंग करने का आदेश दिया । रति ने अब तक किसी से भी

हार स्वीकार नहीं की थी इसलिए वह शीघ्र ही उनके पास गयी और विभिन्न साधनों से उनके संयम को भंग करना चाहा। लेकिन देवेन्द्रकीर्ति को वे पराजित नहीं कर सकी और अन्त में कामदेव एवं रति को अपनी हार माननी पड़ी।

देवेन्द्रकीर्ति पहले मुनि थे और बाद में भट्टारक कहलाने लगे थे। उनके संघ मे मुनिगण एवं बड़े-बड़े पंडित रहते थे। संवत् 1663 कार्तिक मास में ही वे अपने सघ के साथ मौजमाबाद चले गये और वहाँ संवत् 1664 में नानू गोधा द्वारा निर्मित विशाल मन्दिर में प्रतिष्ठा करायी। यह प्रतिष्ठा अपने समय की सबसे भारी प्रतिष्ठा थी जिसमें देहली के अकबर बादशाह एवं आमेर के महाराजा मानसिंह का पूरा सहयोग था। तीन शिखरों वाला यह मन्दिर नानू गोधा ने बादशाह अकबर के आदेश से बनवाया था इसलिए इस प्रतिष्ठा में असंख्य द्रव्य खर्च किया गया था। इस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हजारों विशाल मूर्तियाँ न केवल राजस्थान में उपलब्ध होती हैं किन्तु उत्तरी भारत के सभी प्रमुख मन्दिरों में विराजमान हैं।

9. भ. नरेन्द्रकीर्ति

संवत् 1691 कार्तिक बदि 4 भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति जी भट्टारकीय गादी पर बैठे। वे गृहस्थ वर्ष 11 पट्टस्थ वर्ष 30 मास 8 दिन 15 अंतर दिन 8, जाति–खण्डेलवाल, गोत्र–सौगानी।

नरेन्द्रकीर्ति अपने समय के जबरदस्त भट्टारक थे। ये शुद्ध बीसपन्थ को मानने वाले थे। ये खण्डेलवाल श्रावक थे और सोगाणी इनका गोत्र था। एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार ये संवत् 1691 मे भट्टारक बने थे। इनका पट्टाभिषेक सांगानेर में हुआ था। इसकी पुष्टी बख्तराम साह ने अपने बुद्धिविलास मे निम्न पद्य से की है :—

नरेन्द्रकीरति नाम, पट इक सांगानेरि में।
भये महागुन धाम, सोलह से इक्याणवे।।

ये भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। जो आमेर गादी के संस्थापक थे। सम्पूर्ण राजस्थान मे ये प्रभावशाली थे। मालवा, मेवात, तथा दिल्ली आदि के प्रदेशो मे इनके भक्त रहते थे और जब वे जाते, तब उनका खूब स्वागत किया जाता था। दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरह पन्थ की उत्पत्ति भी इन्हीं के समय में हुई थी। बख्तराम साह ने अपने मिथ्यात्व खण्डन में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है :—

भट्टारक आंबेरिके, नरेन्द्र कीरति नाम।
यह कुपंथ तिनकें समै, नयौ चल्यो अघ धाम।।

इस पद्य से ज्ञात होता है कि नरेन्द्रकीर्ति का अपने समय में ही विरोध होने

लगा था और इनकी मान्यताओं का विरोध करने के लिए कुछ सुधारकों ने तेरहपन्थ नाम से एक पन्थ को जन्म दिया। लेकिन विरोध होते भी नरेन्द्रकीर्ति अपने मिशन के पक्के थे और स्थान-स्थान पर घूमकर साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार किया करते थे।

कितने ही स्तोत्रो की हिन्दी गद्य टीका करने वाले अखयराज इन्ही के शिष्य थे। संवत् 1717 मे सस्कृत मजरी की प्रति इन्हें भेंट की गयी थी। टोडारायसिंह के प्रसिद्ध पण्डित कवि जगन्नाथ इन्ही के शिष्य थे। प. परमानन्द जी ने नरेन्द्रकीर्ति के विषय मे लिखते हुए कहा है कि इनके समय मे टोडारायसिंह में संस्कृत पठन पाठन का अच्छा कार्य चलता था। शास्त्रो के अभ्यास द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। यहाँ शास्त्रों का भी अच्छा संग्रह था। लोगों को जैनधर्म से विशेष प्रेम था अष्टसहस्री और प्रमाण निर्णय आदि न्याय ग्रन्थो का लेखन, प्रवचन, पंचास्तिकाय आदि सिद्धान्त ग्रन्थो आदि का प्रति लेखन कार्य तथा अनेक नूतन ग्रन्थों का निर्माण हुआ था।

प्रतिष्ठा कार्य

भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति ने राजस्थान के विभिन्न भागो में विहार करके अनेक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं सास्कृतिक समारोह सम्पन्न कराये। सवत् 1710 में मालपुरा (टोंक) में एक बड़ा भारी प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया गया। स्वयं भट्टारक जी ने उसमें सम्मिलित होकर प्रतिष्ठा महोत्सव की शोभा में चार चाँद लगाये। इसके एक वर्ष पूर्व ही ये गिरनार ससघ गये थे। और वहाँ भी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया गया था। सवत् 1716 में ये संघ के साथ हस्तिनापुर गये। इसके संघ में आमेर एवं अन्य स्थानो के अनेक श्रावकगण थे। वहाँ पर जाने पर उनका भव्य स्वागत किया गया।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के अनेक शिष्य थे। इनमे प दामोदरदास प्रमुख थे। और ये ही इनके पश्चात् भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के नाम से भट्टारक बने थे।

10 भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति
(संवत् 1722 से 1733 तक)

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनकी गृहस्थ अवस्था का नाम दामोदरदास था। ये बड़े भारी विद्वान एवं संयमी श्रावक थे। प्रारम्भ से ही उदासीन रहते थे। ये भट्टारकों के सम्पर्क मे ये कब आये इसका तो कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन ये उनके प्रिय शिष्यों में से थे और इन पर नरेन्द्रकीर्ति का सबसे अधिक विश्वास था। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति सवत् 1722 के श्रावण मास तक भट्टारक

रहे। इनके पश्चात् भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पद पर अभिषिक्त हुये। ये केवल 10 वर्ष 11 महिने 10 दिन तक भट्टारक पद पर रहने के पश्चात् संवत् 1733 में स्वर्ग सिधार गये।

भट्टारक जगत्कीर्ति
(संवत् 1733 से 1771 तक)

जगत्कीर्ति भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। संवत् 1733 में इन्हें भट्टारक गादी पर अभिषिक्त किया गया। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की मृत्यु के पश्चात् जब उनके शिष्य की तलाश हुई तो आमेर एवं सांगानेर के जैन समाज ने जगत्कीर्ति को भट्टारक पद समर्पित करने का निश्चय किया। इस शुभ कार्य में रत्नकीर्ति, महीचन्द्र एवं यशकीर्ति ने मिलकर जगत्कीर्ति को अपने समय की सबसे गौरवशाली भट्टारक गादी पर बिठलाया। जगत्कीर्ति के भट्टारक बनते ही चारो ओर हर्ष छा गया।

जगत्कीर्ति विद्यावारिधि थे। महान् तपस्वी एवं संयमी थे। अपरिग्रह व्रत धारक थे। मन्त्र विद्या के आराधक थे तथा अमृतवाणी के प्रस्तोता थे।

जगत्कीर्ति का पट्टाभिषेक आमेर नगर में हुआ था। भट्टारकजी खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न हुए थे और साखूण्या उनका गोत्र था। उनके पट्टाभिषेक के दिन श्रावण बदी पंचमी संवत् 1733 का शुभ दिन था।

भट्टारक जगत्कीर्ति की अध्यक्षता में चांदखेड़ी में संवत् 1746 में एक विशाल प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया। प्रतिष्ठा में जगत्कीर्ति को सादर एवं श्रद्धा के साथ आमन्त्रित किया गया। 18वीं शताब्दी में होने वाली प्रतिष्ठाओं में चांदखेड़ी की प्रतिष्ठा का बड़ा महत्व है। एक प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार इसमे 11 भट्टारक सम्मिलित हुए थे और उन सबमें प्रमुख भट्टारक जगत्कीर्ति थे। किशनदास बघेरवाल प्रतिष्ठाकारक थे। हाथियों वाला रथ था और जिसके सारथी थे कोटा और बूंदी दरबार। एक यती द्वारा जब रथ को मन्त्र द्वारा कील दिया गया तो भट्टारक जगत्कीर्ति ने ही उसका प्रबन्ध किया था।

भट्टारक जगत्कीर्ति के कितने ही शिष्य थे। इनमें प्रमुख थे पण्डित नेमीचन्द। इनके शिष्य डूंगरसी, रूपचन्द, लिखमीदास एवं दोदराज थे। ये सभी खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे। पं. नेमीचन्द ने हरिवंशपुराण की रचना में अपने गुरु का अच्छा उल्लेख किया है।

संवत् 1761 में करवर (हाड़ोती) नगर में फिर एक विशाल प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठा कराने वाले श्रावक सोनपाल छाबड़ा थे, जो टोडारायसिंह के रहने वाले थे। प्रतिष्ठा में चारों ही संघ एकत्रित हुए

था। इस प्रतिष्ठा में यतियों ने अपनी मन्त्र शक्ति के द्वारा खाद्य पदार्थों को आकाश में उड़ा दिया। इसके उत्तर में भट्टारक जगत्कीर्ति ने अपने कमण्डलु में से पानी छिड़क कर विघ्न को शान्त किया तथा वह सामग्री भी आकाश से नीचे आ गिरी। इससे जगत्कीर्ति की चारों ओर प्रशंसा होने लगी और लोग उनके भक्त बन गये।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति द्वितीय

(संवत् 1771 से 1792 तक)

देवेन्द्रकीर्ति (द्वितीय) भट्टारक जगत्कीर्ति के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् **1770** की माह बदी 11 को आमेर में भट्टारक गादी पर बैठे। उस समय आमेर अपने पूर्ण वैभव पर था और महाराजा सवाई जयसिंह आमेर के शासक थे। देवेन्द्रकीर्ति खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे और ठोलिया इनका गोत्र था। जगत्कीर्ति जैसे यशस्वी भट्टारक का उत्तराधिकारी होना ही देवेन्द्रकीर्ति के प्रखर व्यक्तित्व क द्योतक है।

देवेन्द्रकीर्ति का पट्टाभिषेक जिस शानदार ढंग से हुआ वह किसी सम्राट् के राज्याभिषेक से कम नहीं था। एक सप्ताह पूर्व ही आमेर को सजाया जाने लगा था। तोरण द्वार बांधे गये थे और मन्दिरों में विशेष उत्सव आयोजित किये गये थे। आमेर, सांगानेर, मौजमाबाद, सांभर, नारायणा, चाकसू, टोडारायसिंह जैसे अनेक गांवों एवं नगरो में सहस्रों की संख्या में श्रावक एवं श्राविकाएं तथा पण्डितगण सम्मिलित हुए थे। अनेक विद्वानों को विशेष रूप से सादर आमन्त्रित किया गया था। माह बदी 11 को शुभ मुहूर्त में उनका पट्टाभिषेक हुआ। नौबत बजने लगे और जनता ने भगवान् महावीर की जय, जैनधर्म की जय, भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की जय के नारों से आकाश गुंजा दिया। देवेन्द्रकीर्ति द्वारा पूर्ण संयम एवं महाव्रतों को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा ली गयी।

सर्वप्रथम उन्होंने अपने क्षेत्र का और फिर राजस्थान का विहार किया। इनके भट्टारक बनने के पश्चात् सर्वप्रथम संवत् 1773 की फाल्गुन सुदी 3 को धूलेटनगर में एक प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया। यह प्रतिष्ठा सघी हृदयराम द्वारा करायी गयी थी और भट्टारक जगत्कीर्ति के शिष्य पं. खीवसीजी ने प्रतिष्ठा कार्य करवाया था।

संवत् 1783 वैशाख सुदी 8 का दिन भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के जीवन में विशेष महत्व का रहा। इस दिन उन्होंने बांसखोह में एक बड़ी भारी प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न कराया। संवत् 1746 में चांदखेड़ी के बाद होने वाली राजस्थान की

यह सबसे बड़ी प्रतिष्ठा थी जिसमें हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रतिष्ठापित सैंकड़ों मूर्तियां आज राजस्थान के विभिन्न मन्दिरों में मिलती है। बांसखोह जयपुर राज्य के अधीन ठिकाना था, जिसके शासक का नाम चूहड़सिंह था। इस प्रतिष्ठा को संघी श्री हृदयराम एवं उनके परिवार ने सम्पन्न करवायी थी। इन्हीं हृदयराम ने संवत् 1773 में भी एक प्रतिष्ठा का आयोजन करवाया था।

भट्टारक महेन्द्रकीर्ति

(संवत् 1792 से 1815 तक)

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति द्वितीय के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् 1792 में महेन्द्रकीर्ति भट्टारक गादी पर पदस्थ हुए। उस दिन पौष सुदी 10 का दिन था। इनका पट्टाभिषेक देहली में हुआ था। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भट्टारकों के प्रभाव में और वृद्धि होने लगी थी और देहली निवासियों में इन भट्टारकों के प्रति श्रद्धा हो गई थी। ये खण्डेलवाल जाति के पापड़ीवाल गोत्रीय श्रावक थे। ये 23 वर्ष तक भट्टारक रहे।

भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति

(संवत् 1815 से 1822 तक)

भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति का पट्टाभिषेक 1815 में जयपुर में ही हुआ। भट्टारक गादी का प्रमुख केन्द्र जयपुर का दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी था इसलिए जयपुर के मन्दिर में उनका समाज की ओर से अभिषेक किया गया। ये खण्डेलवाल जातीय पाटनी गोत्र के श्रावक थे। केवल 7 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहने के पश्चात् स्वर्गवासी बन गये।

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति

(संवत् 1822 से 1852 तक)

जयपुर में पट्टाभिषेक होने वाले भट्टारकों में सुरेन्द्रकीर्ति दूसरे भट्टारक थे। भट्टारक पट्टावली में इनके पट्टाभिषेक की तिथि संवत् 1822 फाल्गुन सुदी 4 है। किन्तु तत्कालीन जयपुरिया विद्वान बख्तराम साह ने बुद्धि विलास में पट्टाभिषेक का सम्वत् 1823 लिखा है। सुरेन्द्रकीर्ति खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे तथा पहाड़िया इनका गोत्र था। ये भट्टारक गादी पर सम्वत् 1852 तक रहे।

सुरेन्द्रकीर्ति जब भट्टारक गादी पर बैठे तब महापण्डित टोडरमल की सारे जयपुर नगर में बड़ी भारी प्रतिष्ठा थी तथा तेरहपंथ वाले श्रावकों का चारों भ्रोर बहुत जोर था । ऐसे समय में सुरेन्द्रकीर्ति का उन्ही के नगर में पट्टाभिषेक होना भी आश्चर्य सा लगता है । लेकिन इससे यह भी लगता है कि भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति विद्वत्ता एवं संयम दोनों ही दृष्टि से प्रशंसनीय व्यक्तित्व के साधु थे । भट्टारक बनते ही इन्होंने सारे प्रदेश में बिहार करना प्रारम्भ किया भ्रौर जनसम्पर्क के माध्यम से चारों भ्रोर अपने श्रद्धालु भक्त बना लिये ।

सम्वत् 1826 में इन्होंने सवाई माधोपुर में एक वृहद् पंचकल्याणक महोत्सव को सानन्द सम्पन्न कराया । इस प्रतिष्ठा मे देश के विभिन्न भागों मे हजारों प्रतिनिधियों ने भाग लिया भ्रौर महोत्सव की सफलता में अपना महत्वपूर्ण योग दिया । एक प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार इस प्रतिष्ठा समारोह में 5 लाख रुपये खर्च हुए थे । सम्वत् 1783 के पश्चात् जैनों का ऐसा विशाल समारोह प्रथम बार हुआ था । जयपुर में सम्वत् 1821 में आयोजित इन्द्र ध्वज पूजन विधान भी सम्भवत: इससे बडा समारोह नही होगा । इस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हजारों मूर्तियां देश के विभिन्न भागो में प्राप्त हुई हैं । सबको भगवान बनाकर विभिन्न मन्दिरो ने विराजमान किया गया ।

सम्वत् 1841 में फाल्गुन सुदी 6 के शुभ दिन भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति अपने संघ के साथ खण्डार पधारे । वहा के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर एक बड़ा भारी मेला करवाया ।

भट्टारक गादी पर बैठने के पश्चात् इन्होंने अपनी गादी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में स्थानान्तरित की भ्रौर संस्कृत में चांदनपुर महावीर पूजा की रचना की । इससे ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र पर इन भट्टारकों का पूर्ण अधिकार था भ्रौर वे अपने विहार के अतिरिक्त वही रहते थे तथा क्षेत्र पर आने वाले श्रावकों को धर्मोपदेश दिया करते थे । भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने जयपुर, सवाई माधोपुर एवं चाकसू आदि नगरो में अपना प्रभाव पुनः स्थापित किया भ्रौर जनसामान्य में भट्टारक संस्था के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत किये ।

भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति

ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जातीय तथा अनोपड़ा गोत्र वाले श्रावक थे । सम्वत् 1852 मंगसिर सुदी अष्टमी को इनका जयपुर में पट्टाभिषेक हुआ । 28 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहने के पश्चात् इनका सम्वत् 1880 में स्वर्गवास हो गया ।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति

ये बड़जात्या गोत्रीय खण्डेलवाल जैन श्रावक थे । 20 वर्ष की अवस्था में जयपुर में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के रूप में पट्टाभिषेक हुआ, उस दिन आषाढ़ सुदी 10 सम्वत् 1880 था । लेकिन वे अधिक समय तक पद पर नहीं रह सके और सम्वत् 1883 में उनका स्वर्गवास हो गया ।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति जी

इनका जयपुर मे सम्वत् 1883 में माघ सुदी पंचमी को पट्टाभिषेक हुआ । ये काला गोत्रीय खण्डेलवाल श्रावक थे । सम्वत् 1839 तक 35 वर्ष तक वे भट्टारक जैसे पद पर रहते हुये उन्होंने समाज की अपूर्व सेवा की थी ।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति जी के पश्चात् भट्टारक महेन्द्रकीर्ति जी, एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति जी भट्टारक हुये । ये दोनों ही खण्डेलवाल जातीय थे । भट्टारक चन्द्रकीर्ति के पश्चात् भट्टारक परम्परा ही समाप्त हो गयी ।

अजमेर पट्ट

नागौर गद्दी के भट्टारक रत्नकीर्ति जी के दो शिष्य थे । एक ज्ञानभूषण जी और दूसरे विद्यानन्द जी । संवत् 1766 में विद्यानन्दजी अजमेर पट्ट बैठे । इनका पट्टाभिषेक रूपनगर में मिति फाल्गुन बदि 4 को हुआ था । ये खण्डेलवाल जाति के झाझरी गोत्रीय थे ।

स. 1769 मंगसिर (अगहन) बदि 8 महेन्द्रकीर्ति जी पट्ट बैठे । इनका पट्टा-भिषेक कालाडेरा में हुआ था । ये 4 वर्ष 2 माह 28 दिन पट्ट पर रहे । ये खण्डेल-वाल जाति के झांझरी गौत्रीय थे ।

संवत् 1773 फाल्गुन बदि 3 को अनन्तकीर्ति जी पट्ट बैठे । इनका पट्टाभिषेक अजमेर में हुआ था । इनके द्वारा संवत् 1794 में मारोठ नगर में साहों के मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी । प्रतिष्ठाकारक रामसिंह जी उनके पुत्र गिरधरदास जी तथा पौत्र मनोहरदास, दौलतराम, वक्तराम, चौखचन्द्र और बालचन्द्र थे । यह मन्दिर मारोठ नगर में अभी भी अवस्थित है । ये पट्ट पर 24 वर्ष 4 माह 12 दिन रहे । ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे ।

सम्वत् 1797 आषाढ़ सुदि 10 भवनभूषणजी पट्ट पर रहे । ये 4 वर्ष 6 माह 12 दिन पट्ट पर रहे । इनका पट्टाभिषेक कालाडेरा में हुआ था । ये खण्डेलवाल जाति के छाबड़ा गोत्रीय थे ।

सम्वत् 1802 आषाढ़ सुदि 1 विजयकीर्ति जी पट्ट बैठे । इनका पट्टाभिषेक

अजमेर में हुआ था। ये 20 साल पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे।

सम्वत् 1822 त्रैलोक्यकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये 18 वर्ष तक पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के बड़जात्या गोत्रीय थे।

सम्वत् 1840 भवनकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये 40 वर्ष तक पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के बाकलीवाल गोत्रीय थे।

सम्वत् 1880 वैशाख बदि 13 रत्नभूषण जी पट्ट बैठे। सीकर के बीसपन्थी बडा मन्दिर की बिम्ब प्रतिष्ठा स० 1918 मे इनके द्वारा सम्पन्न हुई थी। उस समय सीकर में राव राजा भैरवसिंह का राज्य था। ये खण्डेलवाल जाति के गगवाल गोत्रीय थे।

सम्वत् 1922 वैशाख सुदि 3 को ललितकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये पट्ट पर 90 वर्षों तक आसीन रहे। ये खण्डेलवाल जाति के लुग्या गोत्रीय थे। ये जयपुर निवासी थे।

संवत् 2012 वैशाख सुदि 9 को हर्षकीर्ति जी पट्ट बैठे। इनके साथ ही अजमेर पट्ट की इतिश्री हो गई। ये खण्डेलवाल जाति के गोधा गोत्रीय थे।

नागौर पट्ट

इस पट्ट का प्रारम्भ भट्टारक जिनचन्द्र देव जी के शिष्य भट्टारक रत्नकीर्ति जी से प्रारम्भ होता है। स० 1581 श्रावण सुदी पंचमी को इनका पट्टाभिषेक दिल्ली मे हुआ था। इनके उपदेश से नागौर के शासक नागौरी खा के दीवान पर्वतशाह पाटनी ने सवत् 1581 मे भगवान आदिनाथ का मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठा कराई थी। भट्टारक रत्नकीर्ति जी 21 वर्ष 8 माह 13 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के सोनी गोत्रीय थे।

सम्वत् 1586 में भट्टारक भुवनकीर्ति जी माघ बदि 3 को पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषेक अजमेर में हुआ। इनके गुरु भाई हेमचन्द्र भी थे। भुवनकीर्ति जी को मण्डलाचार्य की उपाधि प्राप्त हुई। नागौर, मेड़ता, मारोठ, खण्डेला, जोबनेर, कालाडेरा, सामोद, महलां वगैरहा इनके गच्छ की मर्यादा के अन्तर्गत निश्चित किये थे। ये 4 वर्ष 9 महिना 26 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के छाबड़ा गोत्रीय थे।

सम्वत् 1590 चैत्र बुदि 9 को भट्टारक धर्मकीर्ति जी पट्ट बैठे। इनका पट्टा-

भिषेक अजमेर में हुआ। ये 10 वर्ष 1 माह 20 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्रीय थे।

संवत् 1601 वैसाख सुदि 1 को विशाल कीर्ति जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषक जोबनेर में हुआ। भट्टारक गादी पर ये 9 वर्ष 10 माह 20 दिन रहे। ये खण्डेलवाल जाति के पाटोदी गोत्रीय थे।

सवत् 1611 आश्विन बदि 4 को लक्ष्मीचन्द्र जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषेक जोबनेर में हुआ। ये 19 वर्ष 11 माह 20 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के छाबडा गोत्रीय थे।

संवत् 1631 ज्येष्ठ सुदि 5 को सहसकीर्ति जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषेक जोबनेर में हुआ। ये पट्ट पर 18 वर्ष 2 माह 8 दिन रहे। ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे।

संवत् 1650 श्रावण सुदि 13 को नेमिचन्द जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषेक जोबनेर मे हुआ। ये 22 वर्ष 6 माह 22 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के ठोल्या गोत्रीय थे।[1]

संवत् 1672 फाल्गुण सुदि 5 को यशःकीर्ति जी पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषेक रेवासा नगर में हुआ। इनके पट्ट बैठने का समय संदिग्ध है। क्योंकि इनके द्वारा संवत् 1661 में जीतमल नथमल छाबडा के द्वारा बनवाया गया रेवासा का प्रसिद्ध मंदिर की प्रतिष्ठा हुयी थी। ये पट्ट पर 18 वर्ष 11 माह 8 दिन रहे। ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे।[2]

संवत् 1690 में भानुकीर्ति जी पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषेक नागौर में हुआ। ये 14 वर्ष 9 माह 21 दिन पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के गंगवाल गोत्रीय थे।

संवत् 1705 में आश्विन सुदि 3 को श्री भूषण जी पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषेक नागौर में हुआ। ये पट्ट पर 7 वर्ष रहे तथा अपने जीवन काल में ही धर्मचन्द जी को पट्ट बैठा दिया था। उसके बाद ये 12 वर्ष तक जीवित रहे। इनका देहान्त संवत् 1728 में हुआ। ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे।

संवत् 1712 के चैत सुदि 11 को धर्मचंद जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषेक मारोठ में हुआ था। ये 15 वर्षों तक पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्रीय थे। इनके द्वारा संवत् 1726 में गोत्तम चरित्र की रचना हुई थी।

संवत् 1729 में देवेन्द्रकीर्ति जी पट्ट बैठे। इनका पट्टाभिषेक मारोठ में हुआ

---

1. रतनलाल भाट की पोथी के अनुसार ये पाटनी गोत्रीय थे।
2. भाट् की पोथी के अनुसार ये सेठी गोत्रीय थे।

था। ये पट्ट पर 10 वर्ष 9 माह 9 दिन तक रहे। ये खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्रीय थे।

संवत् 1738 ज्येष्ठ सुदि 11 को अमरेन्द्रकीर्ति जी पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषेक मारोठ में हुआ था। इनका दूसरा नाम सुरेन्द्र कीर्ति भी था। ये 6 वर्ष 11 माह पट्ट पर रहे। ये खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्रीय थे।

सवत् 1745 वैशाख सुदि 9 को रत्नकीर्ति जी पट्ट पर बैठे। इनका पट्टाभिषक कालाडेहरा में हुआ था। उस समय इनकी आयु 99 वर्ष की थी। 21 वर्षों तक ये पट्ट पर रहे। इस तरह सर्व आयु 98 वर्ष की पाई। ये खण्डेलवाल जाति के गोधा गोत्रीय थे। संवत् 1751 मे जोबनेर मे एक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह हुआ जिसकी प्रतिष्ठा संपन्न कराने वाले भट्टारक रत्नकीर्ति–11 ही थे। संघी जैसाने उक्त प्रतिष्ठा आयोजित की थी।

इनके शिष्य ज्ञानभूषण जी सवत् 1792 मे पट्ट पर बैठे। इन्होने अजमेर मे नागौरी आमनाय का मंदिर बनवाया था।

संवत् 1786 भट्टारक चन्द्रकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये मंत्र-तंत्र के बड़े भारी ज्ञाता थे। इन्होने नागौर गद्दी की रक्षा के लिये जोधपुर महाराज से फरमान प्राप्त किये थे।

संवत् 1822 में भट्टारक पद्मनन्दी जी पट्ट बैठे।

संवत् 1843 में सकल भूषणजी पट्ट पर बैठे। ये खण्डेलवाल जाति के पहाड़या गोत्रीय थे।

संवत् 1863 में सहसकीर्ति जी पट्ट बैठे।

संवत् 1866 मे अनन्त कीर्ति जी पट्ट बैठे।

सवत् 1896 मे हर्षकीर्ति जी पट्ट बैठे।

संवत् 1909 में विद्या भूषण जी पट्ट बैठे।

सवंत् 1910 माघ शुक्ला द्वितीया सोमवार 1910 मे हेमकीर्ति जी पट्ट पर बैठे।

सवत् 1936 में क्षेमेन्द्रकीर्ति जी पट्ट पर बैठे। गजपथ क्षेत्र के मंदिरो का जीर्णोद्धार कराया। पचकल्याणक होने के पूर्व ही गजपथ क्षेत्र पर शरीर शांत हो गया।

सवत् 1943 में मुनीन्द्र कीर्ति जी पट्ट बैठे। ये खण्डेलवाल जाति के बाकलीवाल गोत्रीय थे। इनका पट्टाभिषेक गजपंथा क्षेत्र पर हुआ। इन्होने गजपंथ क्षेत्र पर पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न करवाया। इनके समय में 13 तथा 20 पंथ में समाज विभक्त होने लगी थी।

सवत् 1960 में भट्टारक कनककीर्ति जी पट्ट बैठे। ये खण्डेलवाल जाति के बडजात्या गोत्रीय थे।

संवत् 1966 में भट्टारक हर्षकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये खण्डेलवाल जाति के बाकलीवाल गोत्रीय थे।

संवत् 1980 में भट्टारक महेन्द्रकीर्ति जी पट्ट बैठे। ये खण्डेलवाल जाति के बाकलीवाल गोत्रीय थे। इनके समय में नागौर में नशीयां का निर्माण हुआ था।

सवत् 1995 में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति जी पट्ट बैठे। इनका स्वर्गवास संवत् 2024 में हैदराबाद मे हो गया। इनके साथ ही नागौर गद्दी पर भट्टारक परम्परा समाप्त हो गई।

इस प्रकार वर्तमान मे श्रीमहावीरजी, अजमेर एव नागौर तीनो ही भट्टारक गादियां खाली पडी है और अब किसी नये भट्टारक बनने की आशा नही है। विगत 50 वर्षों में मुनि परम्परा का जो पुनः विकास हुआ है वह भी इसमे एक कारण है। लेकिन भट्टारको ने जैनधर्म एव सस्कृति की महान् सेवाये की है वे सदैव इतिहास में स्वर्णाक्षरों मे अंकित रहेगी। खण्डेलवाल जैन समाज ने मूलसंघ परम्परा के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा को ही जीवित रखा है। खण्डेलवाल जैन समाज की यह सबसे बड़ी देन है।

काष्ठा संघ के भट्टारक

खण्डेलवाल जैन समाज प्रारम्भ से ही मूलसघी रहे हैं इसलिए अजमेर, आमेर, नागौर की भट्टारक गादियाँ भी मूलसघ आम्नायी रही। इसलिए राजस्थान मे काष्ठा संघ के भट्टारकों का कोई विशेष परिचय नही मिलता लेकिन अग्रवाल जैन समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि सभी कार्य काष्ठा संघी भट्टारको द्वारा करवाया जाता था तथा वह काष्ठा सघ के भट्टारको को ही मान्यता देता था। यहां हम कुछ भट्टारकों के नाम दे रहे है जो काष्ठाम्नायी थे और जिन्होंने अपने पूर्व भट्टारकों के नामों का उल्लेख किया है—

(1) बसवा (राज.) मे संवत् 1548 वैशाख सुदी 5 शुक्रवार को एक नंदीश्वर द्वीप (पचमेरू) की प्रतिमा है जिसमें—काष्ठा संघ मथुरान्वये पुष्करगण के भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक यशःकीर्ति, भट्टारक मलय कीर्ति एव भट्टारक गुणचन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है।

(2) संवत् 1530 के एक मूर्तिलेख में भी उक्त भट्टारकों का उल्लेख मिलता है।

(3) संवत् 1736 के एक लेख में काष्ठा संघे कोहचार्यान्वये भट्टारक मेघ कीर्ति एवं भट्टारक गुणभद्र के नामों का उल्लेख किया गया है।

(4) भरतपुर में पंचायती मन्दिर में एक सिमंधर स्वामी की प्रतिमा पर संवत् 1517 वर्षे वैशाख सुदी 6 शुक्रे पुनर्वसुनक्षत्रे गोपाचले श्रीतोमर वंश डूंगरेन्द्रराज्ये श्री काष्ठा सघ भट्टारक गुणकीर्ति से भट्टारक परंपरा प्रारम्भ की है।

(5) आमेर में जहाँ मूलसंघी भट्टारको की गादी थी उनके मन्दिर में काष्ठा संघी भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ है। एक संवत् 1469 की प्रतिमा में भावसेन, सहस्रकीर्ति एव गुणकीर्ति का उल्लेख किया है।

(6) काष्ठा सघी भट्टारको के समान माथुर सघ द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ सांगानेर के सघीजी के मन्दिर मे विराजमान है। सवत् 1224 जेठ सुदी 12 को प्रतिष्ठापित मूर्ति माथुर सघ मे प. यश कीर्ति का उल्लेख मिलता है।

(7) इसी तरह मालपुरा के मण्डी के मन्दिर मे सवत् 1223 मे प्रतिष्ठित एक प्रतिमा है जिस पर माथुर सघ के प. कनकचन्द्र की शिष्या णाणश्री और प्रतिष्ठाचार्य वीरनाथ का उल्लेख किया है।

इस प्रकार राजस्थान मे भी काष्ठा सघी भट्टारको का विहार होता था और वे भी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित किया करते थे तथा मूल सघ आम्नाय के मन्दिरो में ही मूर्तियां को विराजमान किया करते थे।

अध्याय 6

पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठाएं

खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाज ने प्रारम्भ से ही संस्कृति एवं धर्म के पल्लवन में विशेष रूचि ली है। बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण करवाने, मूर्तियां विराजमान करने एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं के आयोजन में उसने समस्त दिगम्बर जैन समाज का नेतृत्व किया है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, आसाम जैसे प्रदेशों में समाज द्वारा निर्मित हजारों मंदिर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। अकेले जयपुर मे विगत 250 वर्षों में 200 से अधिक मंदिरों का निर्माण करवाकर उसने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। एक ही नगर की दृष्टि से जितने जैन मन्दिर जयपुर में मिलते हैं उतने देश के किसी नगर में नही मिलते। आमेर, सांगानेर सवाईमाधोपुर, बसवा, मोजमाबाद, अजमेर, सांभर, सीकर, लाडनूं, रेवासा, भीलवाड़ा जैसे नगरों के मंदिर कला एव प्राचीनता की दृष्टि से सर्वथा उल्लेखनीय है। मंदिरों के निर्माण के अतिरिक्त उन्होने सैंकड़ों हजारों पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें सम्पन्न कराई। पंच कल्याणक प्रतिष्ठाये जैन संस्कृति की जीवन्त प्रमाण है। जो नव इतिहास का निर्माण करती है।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् देश में कितनी पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें सम्पन्न हुई, ये पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें किन-किन श्रेष्ठियों ने करवाई, किस ग्राम मे ये प्रतिष्ठायें हुई, इन सबका इतिवृत्त ढूंढना एवं लिखना सरल कार्य नही है। जैन समाज संख्या की दृष्टि से छोटा समाज होते हुए भी सारे देश में फैला हुआ है। सभी गांवों एवं नगरो में उसके मन्दिर है। मंदिरों में प्रतिष्ठित मूर्तियां हैं। मंदिर निर्माण की अपनी-अपनी कला है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पूर्वाञ्चल प्रदेश, देहली एवं हरियाणा उसके घनी आबादी वाले प्रदेश है। इसलिये अब तक होने वाली अनगिनत पंचकल्याणकों का इतिहास प्रस्तुत करना सम्भव नहीं लगता। फिर भी यहां खण्डेलवाल जैन समाज द्वारा विभिन्न नगरों एवं ग्रामों में आयोजित पंच कल्याणकों का संक्षिप्त इतिहास/परिचय दिया जा रहा है।

1. अजमेर

अजमेर नगर राजस्थान के प्राचीनतम नगरों में से हैं। जैन धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। यह नगर भट्टारकों का प्रमुख केन्द्र रहा और यहां से वे सम्पूर्ण उत्तर भारत मे धर्म की प्रभावना करते रहे। अजमेर में विगत डेढ हजार वर्षों मे कितनी पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं सम्पन्न हुई इसका कोई व्यवस्थित इतिवृत्त नहीं मिलता। प्रतिष्ठा पाठ एवं मूर्ति लेखों के आधार पर जो कुछ हमे पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं की जानकारी मिली है उसका विवरण निम्न प्रकार है —

1. अजमेर नगर मे पहली प्रतिष्ठा संवत् 701 मे सम्पन्न हुई थी। वीरमजी काला[1] ने सर्वप्रथम 9 लाख रुपये लगाकर विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराया। पूरा मंदिर संगमरमर पाषाण का था. इसके पश्चात् वृहद पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी जिस पर उन्होने 9 लाख रूपये लगाये। मुसलमानों ने आक्रमण के समय उस पर कब्जा करके एक जन श्रुति के अनुसार उसे दरगाह मे परिवर्तित कर दिया।

2 अजमेर मे दूसरी प्रतिष्ठा संवत् 776 मे सिंघटजी गंगवाल ने गगवाडा मे प्रतिष्ठा करवायी थी। आचार्य अनन्तकीर्ति इसके प्रतिष्ठाचार्य थे। इस प्रतिष्ठा मे करीब 70 लाख रुपये खर्च हुये थे।

3. अजमेर में तीसरी प्रतिष्ठा वीरमजी गोधा ने 24 लाख रुपया लगाकर करवायी थी। संवत् 998 मे यह प्रतिष्ठा हुई तथा आचार्य माघनन्दि ने प्रतिष्ठाचार्य बनकर इसका सफल संचालन किया।

4 इसी नगर में चौथी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 1112 वैशाख सुदी 10 को गोसला के पौत्र एव केला के पुत्र छोटे बीरमजी काला द्वारा सम्पन्न हुई। कहते हैं पहिले 20 चौक का विशाल मन्दिर बनवाया और आचार्य महाचन्द्रजी के सानिध्य मे यह आयोजन हुआ। प्रतिष्ठा मे इतनी अधिक सख्या मे चतुर्विध संघ सम्मिलित हुआ कि उसमे 84 मन खांड़ लग गयी और इतने ही वजन के पत्तल दीने खर्च हो गये। उस समय अजमेर पर माणक चौहान का शासन था।[2]

---

1. एक अन्य पाठ मे संवत् 717 तथा वीरम अजमेरा नाम दिया हुआ है।
2. संवत् 1112 की वैशाख सुदी 10 अजमेर मे छोटा बीरमजी काला 1 बीस चौक को मन्दिर करायो। प्रतिष्टा कराई। जीमे ईतो सध भेलो हो जी मे घी खांड की तो गिनती नहीं। और चौरासी मण पाकी पातला लागी। रुपया 27 लाख लाग्या। आचार्य महीचन्द्र के वारे। राजा माणक चौहान की वार म। गोसला के पुत्र केला के पुत्र बीरम। घटियाली के मल्लू शाह ने माल 125 मोहरा मे ली थी।

इसके पश्चात् अजमेर जैसे नगर में 700 वर्षों तक किसी प्रतिष्ठा का आयोजन नहीं होना भी आश्चर्यजनक बात है। स्वयं अजमेर में भी इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। एक जनश्रुति के अनुसार "अढाई दिन का झोपड़ा" भी पहिले दिगम्बर जैन मन्दिर था लेकिन उसे भी मुस्लिम शासन काल में यह रूप दे दिया गया।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं की कड़ी में संवत् 1852 में संघी धर्मदास गंगवाल ने एक वृहद् पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया, जिसमें सैकड़ों मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। इस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित कितनी ही प्रतिमाएँ जयपुर में विराजमान है। दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा दीवानजी में तीनों विशाल प्रतिमाएँ अजमेर में ही प्रतिष्ठित हुई थी।

संवत् 1912 वैशाख सुदी 12 को एक विशाल मन्दिर का निर्माण सेठ मूलचन्द सोनी ने कराया। इस मन्दिर के निर्माण में पं० सदासुखजी कासलीवाल की मुख्य प्रेरणा रही थी। इस मन्दिर की तीसरी मंजिल पूर्व की ओर एक चंवरी मे चन्द्रप्रभ स्वामी की स्फटिक मणि की मूल नायक प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा फागुन बुदी 11 संवत् 1942 मे मानपुरा मे हुई थी।

शहर के बाहर दौलत बाग के पास बडे घडे की नसियां है, जिसमें संवत् 1939 वैसाख सुदी 3 को भट्टारक ललितकीर्ति ने अपने गुरु रत्नभूषण की स्मृति मे एक मनोज्ञ छत्री का निर्माण करवाया। छत्री कलापूर्ण है, इसके निर्माण में उस समय 11,741/- रुपये लगे थे।

2. अहार क्षेत्र

टीकमगढ़ जिले मे स्थित अहार क्षेत्र की खोज सं० 1884 मे हुई थी। इसके पूर्व यह क्षेत्र वियावान जगल के मध्य खण्डर अवस्था मे स्थित था। अतीत मे यहा सैकडो जैन मन्दिर थे जिनके अवशेष पहाडियो पर यत्र तत्र आज भी उपलब्ध है। खोज द्वारा यह पता लगा है कि यहां 200 घर मिलावटों (मूर्ति निर्माताओं) के थे जो यही के पाषाण से मूर्तियों का निर्माण किया करते थे। यहा सवत् 588 तक की प्राचीन मूर्तिया उपलब्ध हुई है जो उस समय की मूर्ति कला का उत्कृष्ट नमूना है। यहाँ के सग्रहालय मे संग्रहित शिलालेखो से बीसो जातियो के अस्तित्व एवं इतिहास का पता चलता है। 18 फीट उत्तुग भगवान शातिनाथ की विशाल प्रतिमा सवत् 1236 की है।

इन प्रतिमाओ में निम्न प्रतिमायें खण्डेलवाल समाज द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें है :—

1.	भगवान पुष्पदन्त	संवत् 1207 माघ बुदी 8	साहु माहव
2.	प्रतिमा	संवत् 1216 माघ सुदी 13	साहु सल्हण

3.	चन्द्रप्रभ	संवत् 1223 वैशाख सुदी 8	साहू धामदेव
4.	महावीर स्वामी	संवत् 1236 मार्गसुदी 3 शुक्रवार	कमलदेव

जब भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा विराजमान की गई थी उसी समय महावीर स्वामी की प्रतिमा भी विराजमान की गयी थी। उक्त प्रतिमाओं की स्थापना से जान पड़ता है कि खण्डेलवाल जैन बन्धुओं का इस ओर अच्छा जोर था।[1]

3. अलीगढ़–रामपुरा (टोंक)

टोंक जिले में स्थित अलीगढ़ एक अच्छा कस्बा है। यहां के आदिनाथ मंदिर में संवत् 1561 का षोडशकारण यंत्र साह डूंगाराम अजमेरा द्वारा प्रतिष्ठापित है।[2]

4. आवां (टोंक)

आंवा ग्राम नागरचाल क्षेत्र का प्रमुख गांव है। यहां जैन पुरातत्व की विशाल सामग्री मिलती है। यहां के विशाल मन्दिर में भगवान शांतिनाथ की अतिशय युक्त प्रतिमा है तथा टेकरी पर भट्टारकों की तीन निषेधकाएं, दो विशाल मन्दिर यहां की समृद्धि बतलाने के लिए पर्याप्त है।

संवत् 1593 ज्येष्ठ शुक्ला 3 सोमवार के शुभ दिन आवा (टोक) में एक बहुत बड़ी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठा कारक थे साह कालू के पौत्र एवं साह रणमल्ल के पुत्र बेणीराम छाबडा एव उनके परिवार के सदस्य। सभी ने शातिनाथ स्वामी का एक विशाल मन्दिर निर्माण करवाया फिर बडी धूमधाम से शातिनाथ स्वामी की विशाल पद्मासन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी। मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ एव सुन्दर है। इसी परिवार ने भ प्रभाचन्द, भ जिनचन्द्र एव भ. शुभचन्द्र की तीन निषेधिकाओं की प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी। निषेधिकाए आंवा की पहाड़ी पर स्थित है।

आवां पर उस समय चालुक्य वश के सोलकी गोत्रोत्पन्न महाराजा सूर्यसेन महारानी सीतादे एवं सुहागदे पुत्र कंवर श्री पृथ्वीराज एवं पूरनमल का शासन था। इसकी एक वृहद् प्रशस्ति मन्दिर की दीवार पर अंकित है। पूरी प्रतिष्ठा में 1,25,000 रुपये खर्च हुए थे।

5. आबू

राजस्थान में आबू गर्मियों के लिये हिल स्टेशन है। सिरोही जिले में स्थित

1. विस्तृत परिचय के लिये वैभवशाली अहार, सम्पादक डॉ० दरबारीलाल कोठिया देखिये।
2. जैन लेख संग्रह–पृष्ठ संख्या 555

भ्राबू जैन मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध हैं। दिलवाडा के जैन मन्दिर यहीं हैं। ये सभी श्वेताम्बर मन्दिर भ्रपनी कला के लिये विश्व में प्रसिद्ध हैं। श्वेताम्बर मन्दिरों के मध्य मे एक दिगम्बरी मन्दिर बड़ा प्राचीन मन्दिर है जिसमे 23 बिम्ब है। मूल नायक प्रतिमा कुन्थनाथ स्वामी की है। इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर मन्दिर समूह के बाहर सरकारी सड़क के दाहिनी भ्रोर दिगम्बर श्रावकों का एक नेमिनाथ स्वामी का वड़ा मन्दिर भ्रौर है। इस मन्दिर में तीर्थंकरों की 16 प्रतिमाएं है। इस जिनालय की प्रतिष्ठा ईडर गादी के भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा वि. सं. 1494 वैशाख सुदी 13 को सम्पन्न हुई थी। भ. सकलकीर्ति भ्रपने समय के जबरदस्त भट्टारक थे तथा वे मुनि भ्रवस्था में रहते थे।

6. भ्रामेर

जयपुर नगर के पूर्व ढूंढाडह प्रदेश की भ्रामेर ही राजधानी थी। यहां सैकडों वर्षों तक मूलसंघ कुन्दकुन्दाम्नाय की भट्टारकीय गादी रही। जिसके भट्टारकों ने राजस्थान एवं देश के अन्य भागो मे सैकडो पच कल्याग प्रतिष्ठाए करवायी।

सर्वप्रथम संवत् **1559** माह सुदी 15 को भ्रामेर मे पहाड़ पर **कालूराम लुहाडिया** ने मन्दिर का निर्माण करवाया फिर वहा पहाड़ पर ही प्रतिष्ठा करवायी। इस मन्दिर को पहिले छोटी नशिया के नाम से जाना जाता था। इस कार्य मे दस लाख रुपये खर्च हुये थे।

सवत् **1651** मंगसिर शुक्ला पंचमी को भ्रामेर मे महाराजा मानसिंह के शासन-काल में नेमिनाथ चैत्यालय में नानू टोग्या द्वारा 15 इंच भ्राकार का धातु का ह्रींकार यन्त्र लिखवाकर विराजमान किया गया।

इस यन्त्र का निर्माता महाराजा मानसिंह के महल के मिस्त्री रायमल का पुत्र मिस्त्री नारायण था। उसी का बनाया हुआ दूसरा सिद्ध यन्त्र उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर मे विराजमान है। इसी संवत् मे प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की प्रतिमा सावलाजी के मन्दिर मे विराजमान है।

संवत् 1484 मे भी एक भ्रौर प्रतिष्ठा हुई थी ऐसा उल्लेख जागा के रिकार्ड मे मिलता है। प्रतिष्ठा के पश्चात् लोहटजी, पीथाजी ने संघ चलाया भ्रौर फिर संघी कहलाने लगे।

उक्त प्रतिष्ठाभ्रो के भ्रतिरिक्त संवत् 1484 की एक भ्रौर प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है।

सवत 1732 मे भ्रामेर निवासी संघही नरहरदास सुखानन्द साह घासीराम एवं उनके दोनो पुत्रो के साथसम्मेद शिखर पर प्रतिष्ठा करवायी थी भ्रौर महान् पुण्य भ्रर्जन किया था। उस समय भट्टारक गादी पर भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति विराज-मान थे।

आमेर का सावला बाबा का मन्दिर का वर्णन 16वीं शताब्दी में होने वाले धनपाल कवि ने भी किया है :—

अंबावती यतिव्यंब शोभिता स्याम वर्ण गहीर ।
बदहु सुम वीयहु नेमि जिणु दोइ अठु धनुस सरीर ।।

मन्दिर में यद्यपि सैकड़ो छोटी बडी धातु एव पाषाण की विराजमान है लेकिन निम्न प्रतिमाये विशेषत: उल्लेखनीय है उनकी प्रतिष्ठा खण्डेलवाल जैन बन्धुओ ने की थी । नेमिनाथ स्वामी (सावला बाबा) की मनोहारी मूर्ति संवत् 1120 मे प्रतिष्ठित है । सवत् 1586 में प्रतिष्ठित चतुर्विशाति यन्त्र, भगवान आदिनाथ की सवत् 1454 की श्वेत पाषाण की मूर्ति, सवत् 1533 मे प्रतिष्ठित चौबीसी का यन्त्र सवत् 1839 मे दीवान श्योजीराम पाटनी द्वारा द्वारा प्रतिष्ठित सिद्ध यन्त्र के अतिरिक्त संवत् 1664, 1826, 1852 मे खण्डेलवाल जैन बन्धुओ द्वारा प्रतिष्ठित अनेक प्रतिमाये दर्शनीय है ।

7. उदयपुर

उदयपुर मे खण्डेलवाल जैन समाज अल्प सख्या मे अवश्य है लेकिन समाज के विकास मे उसका पूरा योगदान रहा है । यहां एक खण्डेलवाल जैन समाज का मन्दिर है । जिसमे चार यत्र खण्डेलवाल जैन बन्धुओ द्वारा प्रतिष्ठित है । इन्हें सवत् 1530, 1571, 1641 एवं 1651 मे सर्व श्री हीरा ठोलिया, तल्हू गंगवाल, प० क्षेमेन्द्र एव धामा ठोलिया ने प्रतिष्ठित करवाकर महान् पुण्य का उपार्जन किया था ।

8. उणियारा

उणियारा टोक जिले में जागीरदारी गाव है । यहा का महावीर दिगम्बर जैन मदिर सगवगियो द्वारा निर्मित है । यहा पर सवत् 1316 माघ बुदी मे सघी देवपाल द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा यहा की प्राचीनतम प्रतिमा है । मूलनायक प्रतिमा भगवान शीतलनाथ की है जो सवत् 1664 मे नानू गोधा द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी । संवत् 1502 की चौबीसी की प्रतिमा खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न साहू दाबर एवं उनके परिवार द्वारा प्रतिष्ठित है । सवत् 1570 मे तथा सवत् 1635 में प्रतिष्ठित यंत्र भी खण्डेलवाल जैन बन्धुओ द्वारा प्रतिष्ठित है । यहां वीर निर्वाण संवत् 2487 (सवत् 2017) मे पच कल्याणक प्रतिष्ठा आचार्य शिवसागरजी के सानिध्य मे सम्पन्न हुई थी ।

9. करवर

करवर नगर हाडोती क्षेत्र में प्राचीन कस्बा है । यहां संवत् 1761 में भट्टारक जगत्कीर्तिजी के सानिध्य में टोडारायसिंह निवासी सोनपाल छाबड़ा ने एक

विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन कराया। यह प्रतिष्ठा इस प्रदेश की प्रतिष्ठाओं में उल्लेखनीय प्रतिष्ठा मानी जाती है।

10 कासली

कासली ग्राम खण्डेला प्रदेश में स्थित है। इस ग्राम के जागीरदार को कासलीवाल गोत्र दिया गया था। संवत् 1604 में लालचन्द पाटनी ने इसी ग्राम मे पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई थी। प्रतिष्ठाचार्य नागौर गादी के भट्टारक विशालकीर्तिजी थे।

11. खंडार

राजस्थान के प्रसिद्ध प्राचीन दुर्ग रणथम्भौर के पास ही खण्डार का पहाड एव नगर है। यहां पर सवत् 1272 माघ शुक्ला 5 को पूरे पहाड को उकेर कर उस पहाड की प्रतिष्ठा करवाई गई। यह प्रथम अवसर था जब किसी ने पूरे पर्वत की प्रतिष्ठा कराई हो। प्रतिष्ठा विधि का कार्य भट्टारक धर्मचन्द द्वारा सम्पन्न हुआ तथा प्रतिष्ठा कराने का श्रेय पल्लीमल चांदवाड को प्राप्त हुआ जो खण्डार के ही निवास थे। इस संवत् की प्रतिष्ठित मूर्तियां राजस्थान के कितने ही मन्दिरों मे विराजमान है। उस समय रणथम्भोर दुर्ग पर राजा हमीर का शासन था।

सवत् 1841 फागुण सुदी 6 सोमवार को जयपुर महाराजा के अधिकारी रामकुमार एव उसके प्रधान मन्त्री रामचन्द्र भागचन्द्र एव उनके पुत्र अमरचन्द भगतराम, रिखबचन्द ने खण्डार किले के मन्दिर एवं वहा के पर्वत पर प्रतिष्ठित मूर्तियो का जीर्णोद्धार कराया तथा बांयी ओर खम्भे पर लेख अंकित कराया।

12. खंडेला

1. खण्डेलवाल जैन समाज का खण्डेला उद्गम स्थान रहा है। खण्डेला नगर के कारण ही यह जाति खण्डेलवाल कहलायी और इसी नाम से वह अन्यत्र पहिचानी जाती रही। वर्तमान मे खण्डेला राजस्थान के सीकर जिले मे स्थित है।

1. खण्डेला नगर मे प्रथम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सवत् 110 वैसाख सुदी के शुभ दिन महाराज खण्डेलगिरी द्वारा सम्पन्न हुई। आचार्य जिनसेन इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य थे। इस प्रतिष्ठा मे सभी 84 गोत्रो के श्रावक एकत्रित हुये थे।
2. दूसरी पंच कल्याणक संवत् 119 मिति फागुन सुदी 13 को खण्डेला के कासली ग्राम में सम्पन्न हुई। इसके प्रतिष्ठाकारक थे कल्याणमल कासलीवाल तथा प्रतिष्ठा आचार्य भानुचन्द थे। इस प्रतिष्ठा में 24 लाख रुपया लगा था, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसमें प्रतिष्ठित प्रतिमायें कहीं उपलब्ध नहीं होती।
3. खण्डेला में तीसरी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सवत् 135 वैसाख सुदी पंचमी के

के शुभ दिन सम्पन्न हुई । प्रतिष्ठाकारक श्री रामचन्द्र दोशी[1] एवं प्रतिष्ठाचार्य थे स्वयं आचार्य उमा स्वामी थे । इस संवत् की प्रतिमा भी अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है । इस प्रतिष्ठा में भी 24 लाख रुपये खर्च हुए थे । ऐसा उल्लेख मिलता है ।

4. संवत् 174 माघ सुदी 13 के दिन तीसरी प्रतिष्ठा के 39 वर्ष पश्चात् खण्डेला में फिर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई । इस प्रतिष्ठा के आयोजक थे श्री टोडरमल टोग्या एवं प्रतिष्ठाचार्य आचार्य यशःकीर्ति थे । इस प्रतिष्ठा मे भी लाख रुपये उर्च हुए थे । खण्डेला मे अथवा अन्यत्र इस सवत् की कोई प्रतिमा नही मिलती ।

5. चतुर्थ प्रतिष्ठा के पश्चात् सवत् 182 में खण्डेला मे ही फिर प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई । इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाकारक पोखरमल पहाडिया थे तथा प्रतिष्ठाचार्य वे ही आचार्य यश कीति थे ।

6. इस प्रकार खण्डेला मे 84 वर्षों मे 5 पंच कल्याणक प्रतिष्ठाये सम्पन्न हुई । इसके पश्चात् एक अन्य प्रतिष्ठा पाठ मे सवत् 203, 290, 299, 330, 403 490, 499, 594, 606 मे भी खण्डेला मे पन्च कल्याणक प्रतिष्ठाए होने के उल्लेख मिलते है । इन प्रतिष्ठाओं के पश्चात् 8वी शताब्दी मे सवत् 785 मे साह खडगसिह द्वारा फिर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई । इसके प्रतिष्ठा-चार्य धर्मनन्दि थे । इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित मूर्ति भी अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है ।

7. उक्त प्रतिष्ठा के पश्चात् सवत् 1119 में सांढ़ा सोगाणी द्वारा पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी गयी, ऐसा उल्लेख मिलता है । प्रतिष्ठाचार्य महीचन्द्रजी थे । इसमे 24 लाख रुपये खर्च हुए । लेकिन एक अन्य पाण्डुलिपि मे संवत् 1119 के स्थान पर 1129 का उल्लेख मिलता है तथा प्रतिष्ठाकारक का नाम स्योबक्स पाटनी मिलता है ।

8. खण्डेला में अन्तिम प्रतिष्ठा सवत् 1212 मे सम्पन्न हुई । प्रतिष्ठा कारक श्री बालजी बीसलजी गंगवाल थे तथा प्रतिष्ठाचार्य आचार्य हेमकीति थे । इस प्रतिष्ठा में 20 लाख रुपये लगे थे ।

इन प्रतिष्ठाओ से यह तो स्पष्ट है कि वहां पहिले से ही मन्दिर होंगे या फिर इन पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं के अवसर पर नये मन्दिरो का निर्माण हुआ

---

1. एवं अन्य प्रतिष्ठा पाठ में प्रतिष्ठाकारक का नाम राजमल रेवडमल मिलता है ।

होगा । लेकिन वे मन्दिर कहां गये ? वे नष्ट कर दिये गये या फिर वही पर सरावगी टीले में ये दबे हुये हैं । जिनकी खोज अभी तक नही हो सकी है ।

13. खोहरि

इसको जयसिंहपुरा खोर भी कहते है । खोहरि जयपुर से रामगढ़ जाने वाली सड़क पर स्थित है । यहां के मंदिर का निर्माण संवत् 1780 में एवं सवत् 1564 में प्रतिष्ठित श्रेयांसनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान करने का श्रेय श्री कंवरपाल गौधा को प्राप्त हुआ । मंदिर निर्माण का श्रेय भी आचार्य श्री चन्द्रकीर्ति के उपदेश से ही हुआ था । इस मदिर का नाम श्री श्रेयान्सनाथ चैत्यालय है । वर्तमान में यहां जैनों का कोई भी परिवार नही रहता । मंदिर में संवत् 1780 का विस्तृत शिलालेख अंकित है ।[1] मंदिर में संवत् 1492, 1585, 1651, 1741, 1783 एव 1794 में प्रतिष्ठित प्रतिमायें और है ।

14. खोह नागौरी (जयपुर)

संवत् 1577 माघ शुकला 5 को खण्डेलवाल जाति के श्रावको ने मूर्ति की स्थापना की थी ।

15. गिरनार

संवत् 1709 में गिरनार पर जब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई तो नेवटा निवासी तेजसी उदयकरण ने सम्यग्ज्ञान शक्ति यंत्र की प्रतिष्ठा करवाकर जयपुर के मदिर श्री पाटोदियान मे विराजमान किया था ।

(2) संवत् 1858 बैशाख सुदी 10 को संघही दीवान रामचन्द्र छाबड़ा ने पच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी जिसमे सम्यग्दर्शन यंत्र सिरमोरियों का मदिर की प्रतिष्ठा करायी ।

16. चाकसू

चाकसू का प्राचीन नाम चम्पावती रहा है । जैन साहित्य एव प्रशस्तियों में इसी नाम से उसको सम्बोधित किया गया गया है । यह नगर जैन संस्कृति एवं जैन धर्म का सैकड़ों वर्षों तक केन्द्र रहा ।

(1) चाकसू नगर में संवत् 1135 में सर्वप्रथम साह पोहसिंह बाकलीवाल द्वारा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी गयी जिसमें एक लाख रुपये खर्च हुये थे । उस समय भट्टारक महीचन्द्रजी भट्टारक गादी पर आसीन थे । इसी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित आदिनाथ स्वामी की एक प्रतिमा नरायणा (जयपुर) के छोटे मन्दिर में विराजमान है । मूर्ति की साईज 24 × 30 इंच है तथा वह श्वेत पाषाण की है ।

---

1. जयपुर जैन डायरेक्टरी पृष्ठ सं० 2026

इसी संवत् में प्रतिष्ठित बाहुबली स्वामी की प्रतिमा भी इसी मन्दिर में विराजमान है। मूर्ति का आकार 18×14 इंच है। श्वेत पाषाण से निर्मित यह मूर्ति अत्यधिक मनोज्ञ है। मूर्ति के हाथों एवं चरणों पर तीन तीन बेलें छायी हुई है। एक बेल पर बन्दर लटका हुआ है। लेख संवत् 1135 फागुण सुदी 3 का अंकित है।

(2) सवत् 1548 वैशाख सुदी 3 चंपावती में सघी धेल्ह माया सूहड एवं उनके परिवार के सदस्यों ने ताम्रपत्र पर सिद्धचक्र यंत्र लिखवाकर मुण्डासा में उसकी प्रतिष्ठा कराई तथा यहां के मन्दिर मे उसे विराजमान किया।

संघी धेल्ह ठक्कुरसी के पिता थे तथा दोनों पिता पुत्र कवि थे। ठक्कुरसी के सुपुत्र धनपाल भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। यंत्र की प्रशस्ति मे भट्टारक जिनचन्द्र के नाम का उल्लेख नही करके मुनि श्री रत्नकीर्ति का उल्लेख किया है।

(3) इसी तरह सवत् 1522 वैशाख सुदी 3 को चपावती नगरी में मुनि श्री रत्नकीर्ति के उपदेश से ताम्रपत्र पर ह्रीकार यन्त्र लिखवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवायी थी। प्रतिष्ठा कारक टोग्या गोत्रीय साह मागू एव उसके परिवार के सदस्य थे। चम्पावती पर सुरित्राण गयासुद्दीन का राज्य लिखा है।

(4) संवत् 1581 ज्येष्ठ सुदी 3 को चम्पावती में फिर प्रतिष्ठा हुई। इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठापित एक ताम्रयत्र टोडारायसिंह के आदिनाथ मन्दिर में रखा हुआ है। इस यत्र को भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के सदुपदेश से खण्डेलवाल जातीय साह गोत्र वाले काधिल भार्या कवलादे ने प्रतिष्ठा करवायी थी।

(5) सवत् 1590 माह सुदी 7 के दिन चम्पावती में प्रतिष्ठापित शाति तीर्थेश्वर का ताम्रयंत्र टोडारायसिंह के आदिनाथ स्वामी के मन्दिर मे रखा हुआ है। इस यत्र को सघी ताल्हू माया तोलादे बाकलीवाल ने मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के सदुपदेश से प्रतिष्ठापित कर विराजमान किया।

(6) सवत् 1591 वर्ष में साह सांगो ने चाकसू नगर में फिर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी जिसमें एक लाख रुपये खर्च हुये। मेले के पश्चात् पचास हजार रुपये बचे जो मन्दिर के भण्डार मे जमा रहे। इस प्रतिष्ठा के पश्चात् सागा के वशज सागाका नाम से कहलाने लगे। जयपुर मे सागाको का मन्दिर भी है। सागाका का मूल गोत्र पाटनी है।

17. चन्देरी

बुन्देलखण्ड मे चन्देरी प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र है। यहा की चौबीसी के दर्शन सर्वत्र प्रसिद्ध है। चौबीसी का निर्माण सभासिंह बज ने संवत् 1893 फाल्गुन बुदी

!1 को करवाकर एक वृहद् पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया था। इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य ग्वालियर के भट्टारक के चन्द्रभूषणजी थे।

18. चांदखेड़ी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चादखेडी राजस्थान का एक विशेषत हाडौती प्रदेश का प्रसिद्ध जैन तीर्थ है। इसी क्षेत्र के पास बारह पाटी के जंगल में सम्वत् 512 में प्रतिष्ठित भगवान आदिनाथ की दिव्य एवं चमत्कारी मूर्ति के सम्बन्ध में जब कृष्णदास बघेरवाल को स्वप्न आया तो उसने एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया और सम्वत् 1746 माह सुदी 6 सोमवार को एक विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन किया। यह प्र समारोह अपने ढंग का अनूठा समारोह था जिसमें लाखों व्यक्तियों ने भाग लिया। इस प्रतिष्ठा में खण्डेलवाल समाज का पर्याप्त योगदान रहा था।

19. जयपुर

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर जैनपुरी कहलाता है। यहाँ पर जितने मन्दिर है उतनी संख्या में देश के किसी भी नगर मे नही है। आमेर एवं सांगानेर के श्रावको ने यहाँ आकर सैकड़ों मन्दिरों एवं चैत्यालयों का निर्माण करवाया और उनमे बेदी शुद्धि करवा कर आमेर एवं सांगानेर के मन्दिरो से मूर्तियाँ लाकर विराजमान कर दी।

जयपुर में प्रथम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्वत् 1861 वैशाख सुदी 5 सोमवार को संघी रायचन्द्र छाबड़ा ने सम्पन्न करवाई। भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति के सानिध्य में इस विशाल प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ था। इसके पश्चात् सन् 1966 मे चूलगिरी पर पच कल्याणक प्रतिष्ठा आचार्य देशभूषण के सानिध्य मे सम्पन्न हुई। यहाँ पर अन्तिम पच कल्याणक प्रतिष्ठा भी सन् 1981 में भी आचार्य देशभूषण के सानिध्य में खानियो मे सम्पन्न हुई।

यह मन्दिर वर्तमान में बख्शी जी के मन्दिर के नाम से जाना जाता है। इस प्रतिष्ठा मे 1 लाख रुपये खर्च हुए थे तब पूरे समाज को जिमाया था। सम्वत् 1877 आसोज शुक्ला 10 को जयपुर के संघी जी के मन्दिर में सवाई जगतसिंह के शासन काल में दीवान भूथाराम संघी ने विधान पूर्वक एक विजययन्त्र प्रतिष्ठापित किया।

20. जोबनेर

जोबनेर सैंकडों वर्षों से जैन धर्म एवं समाज का केन्द्र रहा है। संवत् 1601 वैसाख सुदी 1 के शुभ दिन नागौर गादी के भट्टारक विशालकीर्ति का पट्टाभिषेक हुआ। इससे पश्चात् सम्वत् 1611 में भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र एवं सम्वत् 1631 में भट्टारक सहस्रकीर्ति का पट्टाभिषेक तथा सम्वत् 1650 मे भट्टारक नेमीचन्द का पट्टाभिषेक इसी नगर मे हुआ था। यहाँ विद्वानों के लिए अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ हुई। पं० पन्नालाल, पं० हीरालाल एवं पं० जयचन्द यहाँ होने वाले 19वीं शताब्दी के अच्छे पण्डित थे।

जोबनेर में प्रथम प्रतिष्ठा सम्वत् 1345 वैसाख सुदी पंचमी को थेला बड़जात्या द्वारा सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठाचार्य आचार्य पद्मनन्दि थे।

(1) दूसरी प्रतिष्ठा सम्वत् 1751 ज्येष्ठ बुदी 6 के दिन जोबनेर में ठोलिया गोत्रोत्पन्न साह जैसा एवं उसके पुत्र श्यामदास खेतसी ने मिलकर पंच कल्याणक महोत्सव का आयोजन करवाया। प. वीरदास प्रतिष्टाचार्य थे जो भट्टारक रत्नकीर्ति की गादी से सम्बन्धित थे। इस अवसर पर प्रतिष्ठापित अनन्तनाथ स्वामी की धातु की प्रतिमा, महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा एव यन्त्र उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर मे विराजमान है।[1]

(2) सम्वत् 1746 में वाल ग्राम में प्रतिष्ठित एक षोडशकरण यत्र खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर मे विराजमान है। इस मच की प्रतिष्ठा साह जोग एवं उसके पुत्र खेमा द्वाहा सम्पन्न हुई थी।

---

1. संवत् 1751 वर्ष ज्येष्ठ बुदी 5 शुक्रवासरे श्री मूल सघे नंद्याम्नाये बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे कुदकुंदाचार्यान्वये मण्डलाचार्य श्री नेमिचन्द्रदेवा तत्पट्टे मं० श्री जसकीर्तिदेवा तत्पट्टे मं० भानुकीर्ति देवास्तत्पट्टे मंडलाचार्य श्री श्रीभूषण देवा तत्पट्टे मंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्र देवास्तत्पट्टे मं० श्री देवेन्द्रकीर्ति देवा: तत्पट्टे मंडलाचार्य श्री क्षेमेन्द्रकीर्ति जी देवा: तत्पट्टे मं० श्री रत्नकीर्ति जी तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये जोबनपुर वास्तव्ये राजा श्री विजयसिंह राज्ये ठोल्या गोत्रे साह दामोदर तत्पुत्र सा० जैसा तस्य भार्या जसमादे तस्य पुत्र द्वौ प्रथम पुत्र श्यामदास तस्य भार्या श्यामलदे द्वितीय लाडी सं० जैसा द्वितीय पुत्र खेतसी तस्य भार्या खेतलदे सं० जैसा तेनेदं बिम्ब प्रतिष्ठा करा पत।

नित्यं प्रणमति पं० बांरदास तस्य उपदेशात् ।[1]

21. झालरापाटन

हाडौती क्षेत्र में झालरापाटन का प्रमुख स्थान है। यह नगर दिगम्बर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। वर्तमान मे यहाँ करीब 100 परिवार रहते है जिनमे 70 परिवार खण्डेलवाल जैन समाज के हैं। यहाँ शान्तिनाथ स्वामी का विशाल एवं कलापूर्ण मन्दिर है। यह मन्दिर 11वी शताब्दी में निर्मित हुआ माना जाता है।

नगर के बाहर पहाड़ी पर पर्याप्त सख्या मे निषेधिकाएँ बनी हुई है। सबसे प्राचीन निषेधिका सम्वत् 1181 की है। जनश्रुति के अनुसार इसी स्थल पर पाडा शाह की समाधि बनी हुई है। पाडा शाह खण्डेलवाल जैन समाज के शिरोमणि सदस्य थे। पहाड़ी के नीचे दिगम्बर जैन नशियाँ में सम्वत् 1226 की प्रतिमाएँ है जिसे खण्डेलवाल साधु मोठवाल ने प्रतिष्ठित कराई थी। यहाँ सम्वत् 1955 एव सम्वत् 1979 मे पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई थी।

यह क्षेत्र भगवान पार्श्वनाथ की बिहार भूमि रहा है इसलिए पहाडी पर जो निषेधिकाएँ बनी हुई है उन सबमे नाग देवता बल खाते हुए अकित किये है। ऐसा लगता है कि भगवान पार्श्वनाथ का यहाँ कभी समवसरण आया था।

22. टोंक (राजस्थान)

टोंक का क्षेत्र जैन पुरातत्व के लिए प्रसिद्ध क्षेत्र रहा है। यहाँ के मन्दिर एवं प्राचीन प्रतिमाये इसका प्रमाण है। सवत् 1470 ज्येष्ट शुक्ला 11 को भट्टारक पद्मनन्दि द्वारा प्रतिष्ठित एव गोधा गोत्रोत्पन्न तील्हण सा० पारस डूगर आदि श्रावकों द्वारा विशाल प्रतिष्ठा कराई गई थी।

संवत् 1518 वैसाख सुदी 6 को जगमल जी गंगवाल ने पच कल्याणक समारोह आयोजित करने का श्रेय प्राप्त किया। आमेर गादी के भट्टारक धर्मचन्द्र जी इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य थे।

संवत् 1682 में सोनी तेजाजी के पुत्र चौधरी दयाराम नानूराम ने शांतिनाथ स्वामी के मन्दिर का निर्माण करवाया। इस उपलक्ष्य मे बादशाह जहाँगीर ने उन्हें नगर सेठ की उपाधि से अलंकृत किया।

---

1. जैन लेख संग्रह भाग–3, पृष्ठ सं० 389।

संवत् 1751 मे फोजमल सोनी द्वारी द्वारा ग्रामेर के भट्टारक जगत्कीर्ति के सानिध्य में पच कल्याणक प्रतिष्ठा का ग्रायोजन किया था।

टौक (राजस्थान) के नवाब के महल के पास जनवरी सन् 1903 ई० मे खुदाई होने से ग्रचानक 11 जैन प्रतिमाएँ निकली। ये प्रतिमाएँ भिन्न-भिन्न 11 तीर्थङ्करों की हैं, जो पद्मासन स्थित है, गोद के ऊपर जिनके बाये हाथ के ऊपर दाहिना हाथ है ग्रौर दाहिने हाथ की हथेली का मुख ऊपर की तरफ है। ये सब प्रतिमायें समानाकृति की है, सिर्फ पार्श्वनाथ ग्रौर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा के ऊपर सर्प का फरण है तथा ग्रौर प्रतिमाग्रो पर उनके भिन्न-भिन्न लान्छन (चिह्न) है। वे सफेद सगमरमर के पत्थर की बनी हुई है ग्रौर ग्रच्छी तरह सुरक्षित दशा में है। उनकी बनावट कुछ ग्रच्छी नही है। तीर्थङ्करो के नाम तो नही प्रकट किये गये है, पर चिन्हो से उन्हें मालूम किया जा सकता है। वे निम्नलिखित भाँति है—

1. पार्श्वनाथ (28 इच × 23 इच) सप्त फरणी सर्प सिर के ऊपर है ग्रौर सर्प चिन्ह के तौर पर है।
2. सुपार्श्वनाथ (22 × 18 इंच) पच फरणी सर्प सिर के ऊपर है ग्रौर स्वस्तिक चिन्ह है।
3. महावीर (22 18 इच) सिह का चिन्ह है।
4. नेमिनाथ (19 × 15 इच) शख का चिन्ह है।
5. ग्रजितनाथ (21 × 18 इच) हाथी का चिन्ह है।
6. मल्लिनाथ (21 × 17 इंच) कलश का चिन्ह है।
7. श्रेयान्सप्रभु (21 × 17 इच) गेन्डे का चिन्ह है।
8. सुविधिनाथ (21 × 17 इच) मछली का चिन्ह है।
9. सुमतिनाथ (18 × 17 इच) चकवे का चिन्ह है।
10. पद्मप्रभु (16 × 13 इच) कमल का चिन्ह है।
11. शान्तिनाथ (16 × 13 इंच) कच्छप) (कछुग्रा) का चिन्ह है।

इन प्रतिमाग्रो के नीचे के पाषाण पर लेख है जो कि प्राय: मिलते-जुलते है ग्रौर देव नागरी लिपि मे भद्दे रूप से ग्रशुद्ध संस्कृत मे लिखे हुए है। सबका काल सम्वत् 1510, माघ शुक्ला दशमी, तद्नुसार रविवार 19 फरवरी, 1453 ई० है।

ये सब प्रतिमाएँ जैनों के दिगम्बर सम्प्रदाय की है। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि सब के ऊपर "मूल सघ" लिखा हुग्रा है ग्रौर सब नग्न है।

लेखों के अनुसार इन सब की प्रतिष्ठा लापू नाम के एक धनिक तथा उसके पुत्र साल्हा और पाल्हा और उनकी क्रमश: लक्ष्मिणी, सुहागिनी (सुगनश्री भी कहते हैं) और गौरी नामक स्त्रियों के द्वारा हुई थी। ये भट्टारक जिनचन्द्र के भक्त थे और दिगम्बराम्नायी खण्डेलवाल जाति तथा बाकलीवाल गोत्र के थे।[1]

23. टोडारायसिंह

टोडारायसिंह का प्राचीन नाम तक्षकगढ़ रहा है। वर्तमान में यह नगर राजस्थान के टोंक जिले में स्थित है। यह नगर जैन पुरातत्व, कला एवं साहित्य की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध रहा है।

(1) सर्वप्रथम संवत् 1589 फागुण बुदी 9 सोमवार को कालू छाबड़ा ने भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधिका बनवाकर उसे प्रतिष्ठापित किया। तक्षकगढ़ पर उस समय राजाधिराज राव श्री सूर्यसेन का शासन था।

(2) संवत् 1595 बैशाख बुदी 2 रविवार के शुभ दिन मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से युगादिदेव आदिनाथ स्वामी का विशाल मन्दिर का निर्माण करवाकर समाज को समर्पित किया। मन्दिर निर्माण कराने का सौभाग्य साह काल्हा एवं उनकी भार्या कमल श्री एवं उनके परिवार ने प्राप्त किया तथा पच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया।[2] इसमें बींझराज जी पाटनी का उल्लेख भी किया गया है।

(3) संवत् 1606 में इसी नगर में देवजी साह ने आमेर गादी के भट्टारक ललितकीर्ति द्वारा पच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी थी।

(4) संवत् 1680 में टोडारायसिंह के पाहड़ पर नसियाँ का निर्माण एवं उसका पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराया गया। नसियाँ का नाम शान्तिनाथ जिनालय रखा गया। लेख नसियाँ के द्वार पर ही अंकित है। यह प्रतिष्ठा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के समय हुई थी।

(5) सवत 1741 मगसिर सुदी 1 को भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय में एक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया। इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित 15×15 इंच आकार के अर्ह का यन्त्र यहाँ के आदि नाथ स्वामी के मन्दिर में विराजमान है।

1. जैन शिलालेख संग्रह—भाग 3, पृष्ठ 485–86।
2. विस्तृत लेख मन्दिर में बेदी के पीछे अंकित है।

24. डेह

डेह नागौर जिले का अच्छा कस्बा है। खण्डेलवाल जैन समाज की यहाँ सम्पन्न बस्ती है। यहाँ के मन्दिर मे सम्वत् 1219 बैशाख सुदी 1 की प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभु स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है जिसकी यही डेह में ही प्रतिष्ठा हुई थी। इस सम्बन्ध में यही के मन्दिर में एक शिलालेख भी लगा हुआ है।[1]

यहीं पर दूसरी प्रतिष्ठा सम्वत् 1643 माघ सुदी 10 को जिनदास पाटनी द्वारा सम्पन्न हुई थी। प्रतिष्ठाचार्य नागौर गादी के भट्टारक लक्ष्मीचन्द जी थे।

25. थूबोन जी

चन्देरी के दीवान समसिंह बज द्वारा सम्वत् 1873 वैशाख सुदी 3 को थूबोन जी में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी। प्रतिष्ठाचार्य ग्वालियर गादी के भट्टारक विजयकीर्ति थे। यहाँ के सबसे बड़े मन्दिर का निर्माण एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठा चन्देरी निवासी श्री बिहारी लाल काला ने सम्वत् 1672 बैशाख शुक्ला पंचमी को सम्पन्न करवायी थी।

26. नरायणा

शाकम्भरी प्रदेश मे नारायणा कस्बे का प्रमुख स्थान है। कभी यह कस्बा जैन संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा था। समय-समय पर यहाँ पर खुदाई मे प्राप्त पचासों प्रतिमाएँ प्राचीनता एव कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

(1) सम्वत् 1083 माघ सुदी 14 को आचार्य धरसेन स्वामी के पावन चरणो की नरायणा मे प्रतिष्ठा हुई थी जो वहाँ के दिगम्बर जैन छोटा मन्दिर मे विराजमान है। चरण सीधे तथा उभरे हुये है। अगुलियाँ एव अगूठे के नाखून स्पष्ट दिखाई देते है। बीच मे चक्र का निशान है। आचार्य धरसेन के इतने प्राचीन चरण अन्यत्र कही नही मिलते है।

(2) सम्वत् 1102 वैशाख सुदी 9 को नरायणा मे सरस्वती की प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई थी। सरस्वती की प्रतिमा खडगासन मुद्रा मे है तथा श्वेत पाषाण की निर्मित है। वह हसवाहिनी है। हाथ मे कमण्डल, माला, वीणा एव पुस्तक है। गले मे माला एव तिरछा हार है।

---

1. देखिये आर्यिका श्री इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ।

अंगुलियाँ एवं नाखूनों की कला दर्शनीय है। सरस्वती प्रतिमा के सिर पर भगवान नेमिनाथ की छोटी प्रतिमा विराजमान है।

(3) 13वी शताब्दी मे नरायणा मे पच कल्याणक प्रतिष्ठा हुई जिसमे चन्द्रप्रभ स्वामी सहित अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी। यहाँ के बडे मन्दिर मे चन्द्रप्रभ स्वामी की मनोज्ञ मूर्ति विराजमान है। जो पाण्ड्या गोत्रीय श्रावकों द्वारा प्रतिष्ठित है।

(4) सम्वत् 1756 सावण सुदी 11 को नरायणा नगर में भट्टारक जगत कीर्ति के समय मे अजमेरा गोत्रीय साह कला के पुत्र पाण्डे पेमा ने स्वर्ग सोपान कला को निर्मित करवा कर मन्दिर मे विराजमान की थी।

27. नैणवा

टौंक जिले मे नैणवा बहुत ही प्राचीन नगर है जहाँ की पुरातत्व सामग्री बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के अग्रवाल जैन मन्दिर मे संवत् 1899 में चैत्र शुक्ला 8 को पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित हो चुकी है। बघेरवाल दिगम्बर जैन मदिर मे सम्वत् 1202 मे नेमिनाथ स्वामी की, सम्वत् 1219 में शान्तिनाथ स्वामी की, सम्वत् 1333 मे मुनिसुव्रतनाथ की एव सम्वत् 1217 माघ बुदि 2 शनिवार को प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा दर्शनीय एव कलापूर्ण है।

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर सघियो का खण्डेलवाल जैन समाज का मन्दिर है। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर पाषाण पर बहुत ही सुन्दर एव कलापूर्ण भाव अकित है। मन्दिर मे सम्वत् 1109 का लेख अकित है जिससे यह प्रतीत होता है कि इस मन्दिर का निर्माण इसी सम्वत् मे हुआ था। सम्वत् 1202 माघ सुदी 13 को आल्हा सुत अजितदेव द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा यही पर विराजमान है। सवत् 1470 माघ सुदी 12 को भट्टारक पद्मनन्दि द्वारा प्रतिष्ठित सम्भवनाथ की प्रतिमा खण्डेलवाल बन्धुओं द्वारा प्रतिष्ठापित की गयी थी।

यहाँ मल्हा साह द्वारा निर्मित मन्दिर भी है जो इसी नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सब मिलाकर 8 मन्दिर है।

28. फागी

जयपुर जिले मे फागी तहसील मुख्यालय है। जैन समाज की दृष्टि से फागी का जिले मे अच्छा स्थान है। यहाँ सम्वत् 1752 माघ सुदी 15 को एक विशाल

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी। जिसके ग्रामेर के भट्टारक जगतकीर्ति जी प्रतिष्ठाचार्य थे।

29. फुलेरा

फुलेरा तहसील जयपुर जिले में स्थित है तथा पश्चिम रेलवे का महत्त्वपूर्ण जंक्शन है। इस ग्राम में सम्वत् 2008 वैशाख सुदी 5 को मूलचन्द भवरलाल पाटणी द्वारा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी गयी। पण्डित झम्मनलाल तर्कतीर्थ प्रतिष्ठाचार्य थे। इस प्रतिष्ठा मे प्रस्तुत पुस्तक के लेखक को भी भाग लेने का ग्रवसर मिला था।

30. बसवा

भूतपूर्व जयपुर राज्य का बसवा महत्त्वपूर्ण कस्बा माना जाता था। यहां के पचायती मन्दिर मे पद्मप्रभु स्वामी की विशाल खडगासन प्रतिमा है जिस पर सवत् 1114 ग्राषाढ़ बुदी 4 "गुर्रं देवसुरा सप्तक" लेख ग्रकित है। यह प्रतिष्ठा सम्भवत: किसी खण्डलवाल जैन बन्धु ने सम्पन्न कराई थी। श्री महावीर क्षेत्र मन्दिर के निर्माता ग्रमरचन्द बिलाला भी यही के थे। नथमल बिलाला का भी यहां मे काफी ग्रच्छा सम्बन्ध था ग्रौर ग्रानन्द पुत्र महाकवि दौलतराम कासलीवाल भी इसी ग्राम के थे।

31. बयाना

बयाना भरतपुर जिले का प्रमुख नगर एव जैन सस्कृति का प्राचीन काल मे केन्द्र माना जाता था। बयाना के पास ही स्थित ब्रह्मवाद के मन्दिर मे सवत् 1630 फागुण बुदी 5 को पार्श्वनाथ की प्रतिमा है जो कासलीवाल गोत्रीय डालू खेतसी ग्रादि श्रावको द्वारा प्रतिष्ठित की गयी थी। बयाना के मन्दिर मे संवत् 1163 तक की प्राचीन प्रतिमाये है। यहां के पचायती मन्दिर मे सवत् 1507 मे प्रतिष्ठित श्वेत पाषाण की सीमन्धर स्वामी की भी प्रतिमा है। जिसकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघी भट्टारक मलयकीर्ति देव के सानिध्य मे सम्पन्न हुई।

32. बोराज

जयपुर जिले में पहिले बोराज एक जागीरदारी गाँव था। इसी ग्राम में संवत् 1784 वैशाख सुदी 7 को नाथूराम लुहाड़िया द्वारा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का ग्रायोजन किया गया था। प्रतिष्ठाचार्य के पद पर नागौर के भट्टारक चन्द्र कीर्ति जी थे।

33. बाड़ी

बाड़ी ग्राम राजस्थान के जयपुर जिले में स्थित है। यहाँ संवत् 1883 माघ शुक्ला 5 गुरुवार को दिल्ली निवासी श्री अमीचन्द्र टोग्या ने एक बृहद् पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाई। ग्वालियर पट्ट के भट्टारक महेन्द्र भूषण प्रतिष्ठाचार्य थे। इसमे हजारों मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुई थी। जयपुर के चौबीस महाराज के मन्दिर में पूरी चौबीसी बाड़ी ग्राम में प्रतिष्ठित है।

34. बीजोलिया

भीलवाड़ा जिले मे बीजोलिया पुरातत्व की दृष्टि से प्रमुख स्थान है। यहीं पर भगवान पार्श्वनाथ पर कमठ ने उपसर्ग किया था जिसका वर्णन यहीं के संवत् 1226 के शिलालेख में विस्तृत वर्णन मिलता है।

यहाँ संवत् 1777 बैशाख सुदी 3 को एक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ था। प्रतिष्ठा कारक थे लुहाड़िया गोत्रीय साहमल जी दोल जी। इस सवत् की यहाँ पार्श्वनाथ, महावीर एव आदिनाथ स्वामी की प्रतिमायें हैं। यहाँ सवत् 2011 माघ शुक्ला 10 बुधवार को भी बहुत बड़ा पच कल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ था।

35. बांसखो

बांसखो जयपुर के निकट स्थित एक अच्छा कस्बा है। 18वीं शताब्दी में आयोजित प्रतिष्ठाओं में बांसखो (जयपुर) की प्रतिष्ठा सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सवत् 1783 वैशाख सुदी 8 को यहाँ विशाल पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी जिसमें हजारो मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की गयी थी। प्रतिष्ठा श्री हृदयराम लुहाड़िया ने करवायी थी तथा प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति थे। उस समय आमेर ही ढूंढ़ाड़ राज्य की राजधानी थी। राजस्थान के अधिकांश मन्दिरो मे संवत् 1783 मे प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान है।

36. बूंदी

बूंदी हाड़ौती प्रदेश का प्रमुख नगर है। बूंदी के हाड़ा वंश से ही यह प्रदेश हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध है। बूंदी में खण्डेलवाल जैन समाज के पर्याप्त संख्या में परिवार रहते है। यहाँ 12 दिगम्बर जैन मन्दिर एवं एक नसियां है। यहाँ के दिगम्बर जैन मन्दिर ऋषभदेव जी में संवत् 1781 में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ स्वामी की पद्मासन मूर्ति है जो पानसिंह नाथूराम अजमेरा द्वारा बूंदी में ही प्रतिष्ठापित

हुई थी । यहाँ खण्डेलवाल जैन मन्दिर (शान्तिनाथ स्वामी) में संवत् 1309 की प्राचीन प्रतिमा है । यहाँ के पार्श्वनाथ मन्दिर मे आमेर के भट्टारक जगतकीर्ति की गादी थी । यहाँ के सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण एव प्रतिष्ठा सवत् 1690 मे में बाई तेजश्री ने कराई थी । इसी मन्दिर मे सवत् 1314 की मुनिसुव्रतनाथ की प्राचीन प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा किसी खण्डेलवाल श्रावक ने कराई थी । दिगम्बर जैन मन्दिर नेमिनाथ स्वामी के मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की सहस्रफणी मूर्ति है जिसकी प्रतिष्ठा सवत् 1793 मे भांभू देवकरण पाटनी ने करवाई थी ।

यहाँ का दिगम्बर जैन मन्दिर महावीर स्वामी का मल्ला साह का देवरा के नाम से जाना जाता है । मल्ला साह ने इस मन्दिर का निर्माण सवत् 1779 मे कराया था । ये बिलाला गोत्रीय श्रावक थे तथा बूंदी राज्य के दीवान थे ।

37 भीलवाड़ा

राजस्थान मे भीलवाडा जिला दिगम्बर जैन समाज के लिये केन्द्र माना जाता रहा है । पूरा जिला ही दिगम्बर जैनो से कभी ओत-प्रोत था । भीलवाडा स्थित बडा मन्दिर करीब 235 वर्ष पूर्व श्री लालचन्द जी अजमेरा द्वारा बनाया गया था । यह मन्दिर अपनी अपनी विशिष्ट कला, मध्यना एव कॉच पर सोने के कार्य के लिए प्रसिद्ध है । वर्तमान शताब्दी मे सवत् 1897 मे यहाँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ था ।

भूपालगज स्थित महावीर जैन मन्दिर तो अभी सवत् 2013 मे निर्मित हुआ तथा सम्वत् 2019 मे वहाँ पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी ।

38 मथुरा

मथुरा नगर तो भगवान पार्श्वनाथ एव महावीर के समय मे ही जैन धर्म एव सस्कृति का केन्द्र रहा है । यहाँ के ककाली टीले की खुदाई मे पचासों प्रतिमाएँ, तोरण द्वार एव स्तूप प्राप्त हैं, जिनका काल निर्धारण दूसरी शताब्दी से 12वी शताब्दी के बीच हुआ है ।

यहाँ पर रणछोड दास जी का चैत्यालय, सेठजी का चैत्यालय, वृन्द्रावन का आदिनाथ मन्दिर, गोवर्धन का दिगम्बर जैन मन्दिर, जम्बू स्वामी सिद्ध क्षेत्र स्थित मन्दिर इन सभी का निर्माण खण्डेलवाल जैन बन्धुओं ने कराया था । जम्बूस्वामी के मन्दिर का निर्माण तो सेठ मनिराम जी टोग्या द्वारा करवाया गया था । इसके विषय मे निम्न जनश्रुति प्रचलित है ।

"डीग के एक हुण्डा वाले सेठ को रात्रि में स्वप्न आया कि चौरासी मे अमुक स्थान पर जम्बू स्वामी की प्रतिमा जमीन में गड़ी हुई है। वे निर्दिष्ट स्थान कर जमीन खोदने लगे तो वहाँ जम्बू स्वामी के चरण मिले। फिर सेठ राधामोहन पारीख के परामर्श से सेठ मनीराम टोंग्या ने चौरासी में विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण कराया। उन्ही दिनो ग्वालियर राज्य मे अजितनाथ की एक मनोज्ञ श्वेत पाषाण की पद्मासन दिगम्बर प्रतिमा खुदाई मे निकली थी। पारीख जी ने ग्वालियर सरकार से इस प्रतिमा को लाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। किन्तु प्रतिमा वजनदार थी। टोंग्या जी को चिन्ता हुई कि प्रतिमा को मथुरा तक कैसे पहुंचाया जाये। तभी रात्रि में उन्हे स्वप्न हुआ कि कोई धर्मात्मा व्यक्ति इस प्रतिमा को अकेले ही उठाकर बैलगाडी पर रख देगा तो यह आसानी से मथुरा पहुच जायेगी। सुबह स्वप्न की चर्चा हुई और उनके पौत्र सेठ रघुनाथ दास जी शुद्ध वस्त्र पहन कर भक्ति-भाव से पूजन करने के बाद णमोकार मन्त्र पढ़कर प्रतिमा को अकेले ही उठाया तो वह ऐसे उठ गई, मानों फूलों की हो। उसे गाड़ी पर विराजमान करके चौरासी लाये और मूल नायक प्रतिमा के स्थान पर दिगम्बर परम्परा के अनुसार विराजमान कर दिया।"[1]

चौरासी का यह मन्दिर बड़ा विशाल तथा छोटा-मोटा दुर्ग जैसे लगता है। मन्दिर सातिशय पूर्ण है।

39. मांडलगढ़

भीलवाडा जिले मे माडलगढ़ तहसील स्तर का नगर है। मांडलगढ़ अपने किले के लिए इतिहास मे प्रसिद्ध रहा है। इसी किले पर एक प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। वर्तमान मे किला एकदम उजाड़ हो गया है इसलिये मन्दिर भी सूनसान दिखाई देता है। किले से पूरी आबादी सन् 1962 से 1970 तक नीचे आ गई। कुछ परिवार बाहर चले गये। यहाँ के नगरपालिका के अध्यक्ष श्री सुगनचन्द्र जैन के साथ जब प्रस्तुत पुस्तक का लेखक किले तक गया तो सारा क्षेत्र उजाड लग रहा था।

मन्दिर मे पर्याप्त सख्या मे प्रतिमाये है। यहाँ की प्राचीनतम मूर्ति भगवान आदिनाथ की है जो सम्वत् 1141 की प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा श्राविका जीजी द्वारा प्रतिष्ठित है जो सम्भवत. खण्डेलवाल जैन थी। संवत् 1195 ज्येष्ठ सुदी 10 को प्रतिष्ठित दो प्रतिमायें और है जो सरबु हाला नाल्हा द्वारा प्रतिष्ठित है। सम्वत्

1. दिव्य ध्वनि वर्ष 1 अंक 7 जून, 1966।

1858 में यहाँ अन्तिम प्रतिष्ठा हुई । प्रतिष्ठाकारक थे रावकां गोत्रीय सा० दशरथ एवं उसके पुत्र हेमा तथा उनके परिवार के सदस्यगण सभी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन करवाया था ।

40. मालपुरा

राजस्थान के टोंक जिले का मालपुरा प्रमुख नगर है । खण्डेलवाल जैन समाज का मालपुरा प्राचीनतम निवास स्थान है । खण्डेला के निवासी मालपुरा आकर रहने लगे थे । यहाँ का आदिनाथ बाबा का मन्दिर अतिशय क्षेत्र के रूप में विख्यात है ।

यहाँ सम्वत् 1136 में प्रतिष्ठित भगवान की प्रतिमा दिगम्बर जैन मालपुरा में विराजमान है । यह प्रतिष्ठा मालपुरा मे सम्पन्न हुई थी ।

मालपुरा में सम्वत् 1710 माह सुदी 5 शुभ दिन विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया जिसके प्रतिष्ठाकारक संघी नान्दा, भीखा, सम्भु एवं लालचन्द थे जो पाटनी गोत्र के थे । प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति थे जो आमेर गादी के भट्टारक थे । लेख मे महाराजा अर्जुन गोड का शासन एव बादशाह शाहजहाँ का शासन लिखा है ।[1]

टोडों का मन्दिर .

यह मन्दिर बहुत प्राचीन है । इसमे सम्वत् 1137 एवं सम्वत् 1199 की मूर्तियाँ हैं । सम्वत् 1708 मे शाहजहाँ के शासन काल में शाह हेमा के पुत्र पण्डित चौसी कासलीवाल ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर ध्वजा चढायी थी ।

सम्वत् 2022 में यहाँ अन्तिम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा हुई जिसका समस्त दिगम्बर जैन समाज ने संचालन किया ।

41 मारोठ

नागौर जिले में मारोठ बहुत पुराना कस्बा है जिसका पुरातत्व की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है । पहले इस नगर का नाम महारोठ था लेकिन धीरे-धीरे वह मारोठ कहलाने लगा । यहाँ चार मंदिर है और चारों ही महत्त्वपूर्ण है ।

---

1. पाण्डे लूणकरण जी के मन्दिर जयपुर में विराजमान है ।

1. गोधों का मंदिर—इस मंदिर का निर्माण संवत् 1385 में हुआ था। इस प्रकार का लेख मंदिर में अंकित किया हुआ है। इस मंदिर में संवत् 1232 ज्येष्ठसुदी 12 शनिवार को प्रतिष्ठित प्रतिमा सबसे प्राचीन है। एक प्रतिमा नेमिनाथ स्वामी की है वह भी संवत् 1232 माह सुदी 5 को किसी खण्डलवाल जातीय श्रावक द्वारा प्रतिष्ठित लगती है।

2. चन्द्रप्रभ चैत्यालय—यह चौधरियों का मंदिर है। यहाँ संवत् 1482 में जीवणराम पाटोदी द्वारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई गई थी।

3. साहों का मन्दिर—सवत् 1352 मे वैशाख सुदी 13 को धीरज जी लुहाड़िया ने एक लाख रुपया लगाकर पंच कल्याण प्रतिष्ठा कराई थी। उस समय आचार्य प्रभाचन्द्र जी प्रतिष्ठाचार्य थे।

साहों का मंदिर का निर्माण सवत् 1794 माघ सुदी 13 को साह रामसिह जी पाडया द्वारा करवाया गया था। रामसिंह के पिता गिरधर राम जी थे तथा उसके पुत्र दौलतराम, मनोहर, बख्तराम, चौखचन्द, बालचन्द पाडया थे। रामसिंह की पत्नि का नाम रामसुदे था। पूरे परिवार ने मिलकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सपन्न करवाई थी। प्रतिष्ठाचार्य अजमेर गादी के भट्टाकर अनन्तकीर्ति थे।

4. यहाँ का चौथा मंदिर तेरापंथी मंदिर कहलाता है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् 1852 में परसराम जी लश्कर वालों ने करवाई थी।

42. मुंडासा

मुंडासा राजस्थान के किस प्रान्त में है यह अभी विद्वानो द्वारा खोजा नहीं जा सका है। वैसे एक मडासा प्रतापगढ़ (बांसवाडा) के पास भी है। यहां संवत् 1548 वैशाख सुदी 3 शहर मुंडासा मे एक विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमें एक लाख से भी अधिक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हुई थी। इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाकारक श्रावक जीवराज पापड़ीवाल एवं प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक जिनचन्द्र थे। जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिया देश के अधिकांश मंदिरों मे मिलती है। देश मे इतनी विशाल प्रतिष्ठा संभवतः प्रथम बार हुई थी। जीवराज जी हूंवड जाति के श्रावक थे और उनका पायडीवाल गोत्र था ऐसा प्रतापगढ़ के श्रावको ने लेखक को बतलाया था।

43. मोजमाबाद

मोजमाबाद 17 वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही जैन सस्कृति का केन्द्र बन गया था। संवत् 1658 आषाढ़ बुदी 10 के दिन नेमदास छाबड़ा एवं उसके परिवार द्वारा प्रतिष्ठापित चोबीसी का यंत्र उदयपुर खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर में

विराजमान है। मोजमाबाद के मन्दिर में इसी संवत् में प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की धातु की प्रतिमा है।

(1) इसी वर्ष दूंढू निवासी मालजी भौंसा ने 5 मन्दिरों का निर्माण कराया। ये मन्दिर दूदू, मारा, कालेडिरा, चोरू एवं कालवाड़ में बनाये गये। फिर उनकी प्रतिष्ठा करवायी। प्रतिष्ठा समारोह मे 20 लाख रुपये खर्च हुये। इसके पश्चात् इनका परिवार संघी कहलाने लगा तथा मालू जी के वंशज मालावत कहलाने लगे। यह उपाधि वर्तमान मे भी उनके परिवार वाले लगाते है।

(2) संवत् 1664 फागुण बुदी 5 का दिन राजस्थान के इतिहास मे उल्लेखनीय रहेगा। इस दिन मोजमाबाद में पहले तीन शिखरो का विशाल मन्दिर का निर्माण कार्य पुरा हुआ और फिर विशाल स्तर पर पच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक चन्द्रकीर्ति थे तथा प्रतिष्ठाकारक महाराजा मानसिह के प्रधान ग्रामात्य नानू गोधा थे। इस प्रतिष्ठा मे हजारो मूर्तिया प्रतिष्ठित की गई जो देश के सैकडो मन्दिरो मे विराजमान है। तीन शिखरो के इस मंदिर पर समूचे राजस्थान को गर्व है।

(3) मोजमाबाद के पास साखूण ग्राम मे सवत् 1660 में साह मनीराम दोशी ने साखूंण, बादरसीदर, हरसूली एव लाबा मे एक-एक मन्दिर का निर्माण करवाकर उनकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित की गयी थी। इसमे दो लाख रुपये खर्च हुये थे।

(4) संवत् 1985 फागुण कृष्णा 11 के शुभ दिन मोजमाबाद में फिर पच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ। इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित महावीर स्वामी की धातु की एक प्रतिमा जयपुर के पाटोदी के मन्दिर मे विराजमान है।

44. श्रीमहावीरजी

राजस्थान मे श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्र दिगम्बर जैन समाज का प्रमुख तीर्थ है। इसके उद्भव काल से ही क्षेत्र के विकास मे खण्डेलवाल जैन समाज का प्रमुख योगदान रहा। सर्वप्रथम बसवा निवासी अमरचन्द बिलाला ने यहां मन्दिर का निर्माण करवाकर उसमे भगवान महावीर की सातिशय मूर्ति को जो वहीं के टीले से निकली थी, विराजमान किया था। इस क्षेत्र पर कालान्तर मे जयपुर गादी के भट्टारको ने अपनी गादी स्थापित की और इस गादी के अंतिम तीन भट्टारक

देवेन्द्रकीर्ति, महेन्द्रकीर्ति एवं सुरेन्द्रकीर्ति से ही भट्टारकों का यहां आधिपत्य जमा हुआ था। इसलिये भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति जी ने क्षेत्र के महावीर स्वामी की पूजा भी लिखी थी। श्रीमहावीरजी के मन्दिर में कभी पंचकल्याणक नहीं हुआ लेकिन शांतिवीर नगर एवं कमलाबाई के विद्यालय में अलग-अलग पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें हो चुकी है।

45. रेवासा

रेवासा सीकर जिले में सीकर के पास ही स्थित है। यहां के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण देवीदास ने संवत् 1661 मंगसिर सुदी 5 शुक्रवार को करवाया था। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा साह देवीदास के पुत्र साह कुंभा एवं उनके दो पुत्र जीतमल और नथमल ने संवत 1661 की मंगसीर सुदी 5 को संपन्न हुई थी। नागौर गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति इसके प्रतिष्ठाचार्य थे। संवत् 1947 वैशाख सुदी 6 को शोभाराम, हेमाराज, शंकरलाल, गंभीरलाल ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संपन्न कराई। यहां का मन्दिर अपनी विशालता एव भव्यता के लिये प्रसिद्ध है। पूरा मन्दिर 108 खम्भो पर टिका हुआ है।

46. लाडनूं

राजस्थान मे सर्वाधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं लाडनूं में सम्पन्न हुई। यहां का विशाल बड़ा मन्दिर एवं यही पर खुदाई में प्राप्त विशाल प्राचीन मन्दिर इस तथ्य के द्योतक है कि लाडनूं एक हजार वर्ष तक सरावगी समाज का प्रमुख केन्द्र रहा और वहां सांस्कृतिक गतिविधियां बराबर चलती रही। वर्तमान में यहां चार मन्दिर एव एक नशियां हैं। जो सभी खण्डेलवाल समाज द्वारा निर्मित है।

1. लाडनूं में प्रथम पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 505 में सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठाकारक श्री कोल्हणसी काला एवं प्रतिष्ठाचार्य भानुनन्दि आचार्य थे। इस प्रतिष्ठा में 24 लाख रुपया खर्च हुये थे।

2. लाडनूं में दूसरी प्रतिष्ठा संवत् 549 में लालजी गगवाल ने सम्पन्न करवायी ऐसा उल्लेख मिलता है।

3. तीसरी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 600 में साह लाडप द्वारा करायी गयी प्रतिष्ठाचार्य भानुचन्द्र आचार्य थे। इस प्रतिष्ठा में 200 मुनिगण संघ सहित पधारे। इस प्रतिष्ठा में 24 करोड़ रुपये खर्च होने की बात लिखी है।

4. उक्त प्रतिष्ठा के 6 वर्ष पश्चात् संवत् 606 में भारीज जी पापडीवाल ने आचार्य मेघचन्द्राचार्य के सानिध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी। ये आचार्य खण्डेलवाल जाति के थे।

5. लाडनू में ही 10 वर्ष पश्चात् सवत् 616 में भारीज जी पापडीवाल ने फिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी। इसमे भी आचार्य मेघचन्द्र ही प्रतिष्ठाचार्य थे।

6. उक्त प्रतिष्ठा के 43 वर्ष पश्चात् संवत् 699 में साह गोत्रीय श्रावक जयकुमार ने बड़ी भारी प्रतिष्ठा का आयोजन किया। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक देवसेन थे। इस प्रतिष्ठा में श्वेताम्बर यतियो ने द्वेष भाव से प्रतिष्ठा के रथ को मंत्रो से कील दिया। उस समय आचार्य देवसेन ने बिना हाथियो के ही मत्र के प्रभाव से चादरो पर रथ को चला दिया। इससे दिगम्बर धर्म की बहुत प्रभावना हुई। इसमे बहुत से बन्धुओ ने दिगम्बर धर्म को धारण कर लिया।

7 सवत् 717 में सोढा छाबडा ने पच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक विष्णुनन्दि थे। प्रतिष्ठा मे 24 लाख रुपये खर्च हुए।

8. सवत् 795 मे आचार्य विष्णुनन्दि के सानिध्य मे साह् सोढल छाबड़ा ने पच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन कराया।

9 इसके एक वर्ष पश्चात ही लाडनू मे सवत् 796 मे फिर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया। इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक धर्मचन्द्र थे। प्रतिष्ठाकारक श्री राजू बाजू राउका थे।

10. सवत् 880 मे लाडनू मे फिर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ। जिसके प्रतिष्ठाकारक थे साह लोहर जी लुहाड़िया एव प्रतिष्ठाचार्य आचार्य अभयचन्द्र थे।

11. सवत् 885 मे गोधू गोधा ने भट्टारक अभयचन्द्र जी के सानिध्य में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी। एक अन्य लेख में वरिचन्द्र पहाड़िया द्वारा भट्टारक नरचन्द्र जी के सानिध्य मे प्रतिष्ठा होना लिखा है।

12. संवत् 909 में पारस बाणारस पांड्या द्वारा 24 लाख रुपये खर्च करके भट्टारक नरचन्द्र के सानिध्य मे पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का

सफल आयोजन किया एवं अन्य लेख में पारस बाणारस पांड्या के स्थान पर बेनीदास पहाड़िया का नाम मिलता है।

13. श्री तेहमल जी साह ने संवत् 952 में आचार्य गुणचन्द्र (हरिनन्दि) के सानिध्य में प्रतिष्ठा करवायी। एक अन्य विवरण में इसी संवत् में लाडनू मे तेजपाल जी साहेमल जी ने आचार्य पूरनचन्द्र जी के सानिध्य में प्रतिष्ठा करवायी थी।[1]

14. श्री मनहर जी अजमेरा ने संवत् 1052 में लाडनू में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। भट्टारक गुणचन्द्र ने प्रतिष्ठाचार्य का कार्य लिया। इसमे 24 लाख रुपये खर्च हुये।

15. इसी वर्ष सोनपाल जी सोठल जी बड़जात्या ने भी नशियां में एक और प्रतिष्ठा करवायी थी।

16. संवत् 1101 में किलो जी बैनाडा ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी।

17. संवत् 1110 में पोहलण बैनाड़ा ने भट्टारक भावनचन्द जी के भट्टारक काल मे पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। एक अन्य पाठ में प्रतिष्ठाकारक का नाम कौलश्री बैनाड़ा दिया हुआ है।[2] एक अन्य लेख में इसका संवत् 1111 फागुन सुदी 8 दिया है तथा प्रतिष्ठाकारक का नाम कीलाजी बैनाडा दिया हुआ है।

18. संवत् 1129 में टोडरमल साह भाई दलजी साह लाडनू वासी ने सर्वप्रथम लाडनू में प्रतिष्ठा करवायी और फिर ग्वालियर के पर्वत पर प्रतिष्ठा करवायी थी। इसकी जनश्रुति है कि टोडरमल सेठ ने अपने मुनीम को सामान खरीदने के लिये ग्वालियर भेजा था। उसने ग्वालियर के पर्वत पर जिन प्रतिमाओं का निर्माण करवाया। जब टोडर शाह ग्वालियर आये तब जिन बिम्बों को देखकर अतीव प्रसन्न हुए। ग्वालियर के धनदत्त सेठ की पुत्री को अपनी दत्तक पुत्री बनायी तथा उसके माहरे में एक लाख रुपया लगाया। इसी सेठ ने अपने गुरु महीचन्द्र के आज्ञा से बावनगजा (बडवानी) में भी प्रतष्ठा करायी और वहां भी एक अरब रुपया खर्च किया।

---

1. **दिगम्बर जैन महासमिति बुलेटिन फरवरी 1985**
2. **वही**

19. संवत् 1132 में भरतराम जी करहल जी बड़जात्या ने लाडनूं में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी थी। इस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित एक धातु की त्रिमूर्ति जयपुर के छोटे दीवान जी के मन्दिर में विराजमान हैं।

20. संवत् 1159 में टोडरमल जी साह ने प्रतिष्ठा कराने का सौभाग्य प्राप्त किया।

21. संवत् 1334 में कुम्भाराम जी पाटनी ने लाडनूं में प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी।

22. संवत् 1345 में सुरजन गोधजी कासलीवाल ने प्रतिष्ठा करवायी।[1]

23. संवत् 1352 में सुरजन मौसा (सुजाजी बड़जात्या) ने लाडनूं में एक विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी थी। उस समय भट्टारक प्रभाचन्द जी प्रतिष्ठाचार्य थे। इस प्रतिष्ठा मे एक कुलमी दक्षिण से आया था। पहिले उससे 11 हजार रुपये में माला लीनी फिर प्रतिष्ठा मे आने वाले सभी को पंक्तिबद्ध भोजन कराया। उसमे जिन्होने भोजन किया वे लोहडसाजन कहलाये। इस प्रतिष्ठा मे 1500 मुनिराज, 300 आर्यिकाएं, 714 उपाध्याय एवं 1800 पंडित एकत्रित हुये थे। इस संवत् में प्रतिष्ठित जयपुर के छाबडों के मन्दिर मे पद्मप्रभु स्वामी की मूर्ति विराजमान है। इसके पश्चात् आगे 600 वर्षों तक लाडनूं मे होने वाली किसी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं मिलता।

24. 20 वीं शताब्दी मे संवत् 1987 वैशाख सुदी 5 को दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर के शिखर की प्रतिष्ठा सेठ सुखदेव जी गंगवाल एवं उनके पुत्र भेरूदान, तालाराम जी, बच्छराज जी, हंसराज जी गंगवाल ने सम्पन्न करवायी।

25. इसी तरह संवत् 2015 वैसाख सुदी पंचमी को सेठ भेरूदान, तोला राम, बच्छराज, हसराज, गजराज, गंगवाल दिगम्बर जैन मन्दिर सुखदेव आश्रम की प्रतिष्ठा करायी।

26. संवत् 2016 माघ शुक्ला 14 को चन्द्रसागर स्मारक मन्दिर की प्रतिष्ठा सकल पंचों ने करायी।

27. संवत् 2018 फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को दिगम्बर जैन नशियां जी

1. **दिगम्बर जैन महासमिति बुलेटिन फरवरी 1985**

के मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा सेठ केशरीचंद, निहालचंद जैन अग्रवाल ने करायी।

47. सवाई माधोपुर, शेरपुर एवं रणथम्भोरगढ़

रणथम्भोर का किला जैन धर्म एवं जैन संस्कृति का भी केन्द्र प्रसिद्ध एवं प्राचीन रहा था। संवत् 1272 में कार्तिक सुदी 6 को बाल जी बीसल जी चांदवाड ने यहां एक विशाल पंच कल्याण प्रतिष्ठा करवायी थी, जिसकी प्रतिष्ठित मूर्तियां राजस्थान के पचासों मन्दिरो में विराजमान है। ये खंडार के रहने वाले थे। इसी समय इन्होंने खंडार नगर के पूरे पहाड पर प्रतिमाये उकेर कर उनकी भी प्रतिष्ठा करवाई। यह प्रथम अवसर था जब किसी पूरे पहाड़ की प्रतिष्ठा कराई गयी हो। प्रतिष्ठा विधि का कार्य भट्टारक धर्मचन्द्र द्वारा सम्पन्न हुआ था। सवत् 1272 में प्रतिष्ठित मूर्तियां रणथम्मोर के अतिरिक्त, मालपुरा, बसवा, भरतपुर, बयाना एव जयपुर आदि के मन्दिरों मे मिलती हैं। स्वयं महाराजा हम्मीर इस प्रतिष्ठा में सम्मिलित हुये थे।

रणथम्भोर में संवत् 1310 मे गूजरमल जी चांदवाड़ ने आचार्य जिनचन्द्र के सानिध्य मे प्रतिष्ठा कराई थी।

यहीं पर संवत् 1424 माघ सुदी 1 को रतनचन्द्र चांदवाड़ ने आचार्य शुभचन्द्र जी के सानिध्य मे फिर प्रतिष्ठा कराई थी।

इसके पश्चात् संवत् 1826 में वैशाख सुदी 9 में सवाई माधोपुर में विशाल स्तर पर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सपन्न कराई दीवान नन्दलाल जी छाबड़ा ने। इस पंच कल्याणक मे हजारो प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी जो वर्तमान में राजस्थान के सैंकड़ो मन्दिरों मे विराजमान है। भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति जी आमेर गादी के भट्टारक थे, वे इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य थे।

48. शेरगढ़ (कोटा)

शेरगढ़ (कोटा) में एक लेख मिला है जिसके अनुसार सवत् 1191 वैशाख सुदी 2 मंगलवार को खण्डिल्लवाल कुल के शांति के पुत्रों ने रत्नत्रय अर्थात् शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ इन तीन तीर्थंकरो की मूर्तियां स्थापित की थी। इसका निर्माण सूत्रधार दांदि के पुत्र शिलाश्री ने किया था।[1]

---

1. जैन शिलालेख संग्रह चतुर्थ भाग पृष्ठ सं. 161

49. शत्रुञ्जय

यह भी श्वेताम्बर समाज का प्रसिद्ध तीर्थ है । जो भक्ति एवं श्रद्धा दिगम्बर समाज में सम्मेद शिखर जी के प्रति है वही श्रद्धा श्वेताम्बर समाज मे शत्रुञ्जय तीर्थ के प्रति है । पहाड़ पर दो प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है । एक छोटे मन्दिर पर श्वेताम्बर समाज ने अनधिकृत कब्जा कर लिया । दूसरा बड़ा मन्दिर कोषाधीश भैसा साह बड़जात्या ने बनवाया था जिसकी सवत् 1112 मे आचार्य भावचन्द जी द्वारा प्रतिष्ठा कराई गई थी । प्रतिष्ठाकारक स्वय भैसा साह थे ।

50. सम्मेदशिखर

सम्मेदशिखर समस्त जैन समाज का पूजनीय सिद्धक्षेत्र है । यहा से वर्तमान 24 तीर्थंकरों मे से 20 तीर्थंकरो ने मोक्ष प्राप्त किया । बिहार मे स्थित इस तीर्थ की एक बार की यात्रा ही अनेक भवो को सुधारने वाली है । इस तीर्थ को प्राक् ऐतिहासिक काल मे ही मान्यता प्राप्त है ।

सवत् 1658 के पूर्व आमेर के महाराजा मानसिंह के प्रधान अमात्य नानू गोधा ने सम्मेदशिखर पर दिगम्बर जैन मन्दिर बनवाये एव तीर्थंकरो के चरण स्थापित किये ।[1]

सवत् 1719 फागुण सुदी 9 को श्री मूलसघ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की आम्नाय के गृद्धवाल (गिरधर वाल) गोत्रीय श्रावक स० नरहरिदास एव स० सुखानद ने सम्मेद शिखर पर पच कल्याणक प्रतिष्ठा सपन्न कराई थी । इसी समय प्रतिष्ठापित ह्रीकार यंत्र जयपुर के विन्दूको के मन्दिर मे विराजमान है ।

इसी संघी नरहरिदास ने फिर सम्मेदशिखर पर संवत् 1732 में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई जिसमें श्री घासीराम ने दसलक्षण यंत्र की प्रतिष्ठा कराई थी । जो वर्तमान में जयपुर के सिरमोरियो के मन्दिर मे विराजमान है ।

संवत् 1863 के माघ बुदी सप्तमी को जयपुर के दीवान रायचन्द्र छाबड़ा अपने विशाल सघ के साथ सम्मेदशिखर की प्रथम यात्रा की थी । पूरे सघ ने भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के सानिध्य मे माघ बुदी 7 को शिखर जी पर पूजन की थी । भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति जी भी वहा थे ।

51. सांगानेर

सागानेर का सघी जी का मन्दिर राजस्थान के प्राचीनतम मन्दिरो में से एक

---

1. **प्रशस्ति संग्रह—डॉ. कासलीवाल द्वारा संपादित–पृष्ठ संख्या 50**

है। जो अपनी कला एवं शिखरो के लिये सर्वत्र प्रशंसित है। इस मन्दिर का निर्माण 12वी शताब्दी में किसी संघी परिवार द्वारा संपन्न हुआ था। मन्दिर मवत् 1185 की भगवान पार्श्वनाथ की संवत् 1202 की आदिनाथ स्वामी की तथा सवत् 1224 की तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान हैं। ये सभी प्रतिमायें खण्डेलवाल श्रावकों द्वारा प्रतिष्ठापित की गई थी।

52. सोनागिर

सभासिह बज ने इस सिद्ध क्षेत्र पर पर भी संवत् 1884 फाल्गुन सुदी 2 को ग्वालियर के भट्टारक विजयकीर्ति के सानिध्य में एक विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संपन्न करायी। राजा लक्ष्मणदास टोंग्या मथुरा वालों ने इसी क्षेत्र पर चन्द्रप्रभु स्वामी के विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था।

53 शाहपुरा

शाहपुरा भीलवाडा जिले का प्रमुख नगर है। जैन पुरातत्व जी दृष्टि से भी शाहपुरा अत्यधिक समृद्ध है। यहां के बडा मन्दिर में 11वी 12वी शताब्दी की बीसो प्रतिमाये है। ऐसा लगता है कि शाहपुरा में जैनों की घनी बस्ती थी। यहां सवत् 1105 मे प्रतिष्ठित शांतिनाथ स्वामी की एक और प्राचीन प्रतिमा है जो श्वेतपाषाण की खडगासन स्थिति मे है। इनके अतिरिक्त यहा संवत् 1135 वैशाख सुदी 5, संवत् 1143 वैशाख सुदी 6, संवत् 1159 की चन्द्रप्रभु स्वामी की जो प्राचीन प्रतिमाये है ऐसा लगता है उनकी पचकल्याणक प्रतिष्ठा इसी नगर मे संपन्न हुई थी। सवत् 1221 जेठ बुदी 5 की मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिष्ठा भी यही हुई थी। इसके पश्चात् सवत् 1658 मे एक विशाल यत्रराज की प्रतिष्ठा करवाकर (64" × 30") छाबड़ा गोत्रीय श्रावक फारू एव उसके पुत्र नाथू ने यहा के मन्दिर में विराजमान किया था।

संवत् 1710 माह सुदी 5 गुरुवार को पाटनी गोत्रीय श्रावक सेठ नांदा ने प्रतिष्ठा करवाकर यंत्रराज विराजमान किया।

54 हस्तिनापुर

उत्तर भारत का हस्तिनापुर प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र है। यह तीर्थ क्षेत्र उत्तरप्रदेश के मेरठ जिले में स्थित है। संवत् 1174 में शांतिनाथ स्वामी की खडगासन मूर्ति की प्रतिष्ठा हस्तिनापुर में देवपाल जी सोनी अजमेर वालो ने करवाई थी। जो वर्तमान मे उसी मन्दिर में विराजमान है। मूर्ति बहुत मनोज्ञ है।

55. हस्तेड़ा

हस्तेड़ा ग्राम जयपुर के पास ही स्थित है। यहा पर संवत् 1788 वैशाख सुदी 13 को हरजी गंगवाल ने अजमेर गादी के भट्टारक अनन्तकीर्ति जी द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई थी।

56. हिंडोली

हिंडोली बूंदी जिले का एक कस्बा है। यहां पर सवत् 1755 मे वैशाख सुदी 9 को देवजी सोनी द्वारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई गई जिसके प्रतिष्ठाचार्य आमेर गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति थे।

अध्याय 7

शासन में योगदान

शासन में खण्डेलवाल जैनों का योगदान

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् देश के अनेक राजा महाराजाओं ने जैन धर्म को धारण करके उसके उसके प्रचार-प्रसार मे योग दिया। ऐसे शासको मे सम्राट् श्रेणिक (बिम्बसार), महाराजा चेटक, सम्राट् कोणिक (अजात शत्रु), सम्राट् चण्डप्रद्योत, सम्राट् उदायी, नन्द वंश के राजाओं तथा उनके महामात्य कल्पाक, शकडाल, सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् बिन्दुसार, सम्राट् सम्प्रति, सम्राट् खारवेल आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। आचार्य भद्रबाहु स्वामी के दक्षिण प्रवास के पश्चात् वहाँ भी अनेक राजा हुये उनमे राष्ट्रकूट वश के अधिकांश शासक जैन धर्मानुयायी थे। उसके पश्चात् गुजरात मे कुमारपाल जैसे शासकों ने जैन धर्म के प्रचार में पूरा योग दिया।

खण्डेलवाल जैन समाज के उद्भव काल से लेकर इसको राजा-महाराजाओ का खूब प्रयास मिला। इसका प्रमुख कारण खण्डेलवाल जैन स्वयं क्षत्रिय वंश के थे और श्रावक धर्म अपनाने के पश्चात् ही उन्होने वणिक वृत्ति को स्वीकार किया लेकिन क्षत्रियो से उनका सम्बन्ध बराबर बना रहा और वे राजाओं के महामात्य, प्रधान व्यवस्थापक, दीवान अथवा राज्य के उच्चाधिकारी होते रहे और इस प्रकार समाज एवं सस्कृति पर उनका विशेष प्रभाव बना रहा।

राजस्थान में तथा विशेशतः ढूढ़ाड़ प्रदेश में खण्डेलवाल जैन समाज का विशेष प्रभाव रहा और यहाँ एक के पश्चात् दूसरे दीवान होते रहे। आमेर, जयपुर, कोटा, बूंदी, सीकर, अलवर जैसे राज्यों में जैन धर्मावलम्बी दीवान होते रहे। इस कारण उस समय जैन धर्म एवं उसके अनुयायियों की खूब प्रतिष्ठा रही। यहाँ हम कुछ प्रमुख दीवानों का परिचय दे रहे है जो खण्डेलवाल जैन समाज के सदस्य थे

तथा जिन्होंने शासन को सम्भालने के साथ-साथ धर्म एवं समाज की भी किसी न किसी रूप में सेवा की थी। ये दीवान बड़े वीर एवं बहादुर होते थे। युद्धों में जाते, उनका संचालन करते तथा विजय प्राप्त करते। राजनैतिक संधियों को सम्पन्न कराने में आगे रहते। देहली के मुगल दरबार में अपने राज्य के प्रतिनिधि बनकर राज्य के हितों की देखभाल करते। इन दीवानों की सेवाओं के कारण राजस्थान में सदैव जैन समाज उच्च समाज बना रहा तथा उसके साधु सन्त विशेषतः भट्टारकों को पूरा सम्मान मिलता रहा। उनका विहार भी निर्बाध होता रहा। मन्दिरों का निर्माण होता रहा, पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं की धूम मची रहती। दिगम्बर जैन तीर्थों को सुरक्षा प्रदान की जाती रही और दिगम्बर जैन धर्म एक गतिशील धर्म माना जाता रहा।

1. दीवान निरभैराम छाबड़ा
(11वीं शताब्दी)

निरभैराम खण्डेलवाल जैन जातीय श्रावक थे तथा छाबडा इनका गोत्र था। ये महाराजा सोढदेव जी के पुत्र दुलेराय जी के महामात्य थे। दूलेराय की राजधानी दौसा थी। ये सम्वत् 1023 में राजगद्दी पर बैठे थे और इसी समय निरभैराम छाबड़ा ने इनके शासन को सुव्यवस्थित बनाने में योग दिया। दुलेराय जी की मृत्यु के पश्चात् काकिल जी राजगद्दी पर बैठे और इन्होंने अपना राज्य मीणा जाति के शासकों को हरा कर आमेर अधिकार किया। दीवान निरभैराम के पश्चात् उनके वंश के कितने ही दीवान होते रहे इस सम्बन्ध में अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। लेकिन बहुत पीछे तक जयपुर में बालचन्द छाबडा जैसे दीवान और हुये थे। उनका और निरभैराम का सम्बन्ध अभी खोज का विषय बना हुआ था।

2. महामात्य नानू गोधा
(17वीं शताब्दी)

खण्डेलवाल जैन दीवानों में नानू गोधा का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। वे मोजमाबाद (जयपुर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम रूपचन्द तथा माता का नाम गूजरी था। उनको संघी की पदवी थी। ऐसा लगता है उन्होंने किसी संघ का संचालन किया हो। नानू उनके लड़के थे। आमेर के राजा महाराजा मानसिंह का मोजमाबाद से विशेष लगाव था क्योंकि उनका बचपन यहीं गुजरा था। नानू गोधा भी उनके बचपन के साथी थे। इसलिये जब मानसिंह को आमेर का सिंहासन मिला तब इन्होंने नानू गोधा को मोजमाबाद से बुलाकर अपना मन्त्री नियुक्त किया।

महाराजा मानसिंह जिस प्रकार सम्राट् अकबर के सबसे विश्वस्त सामन्त थे उसी तरह नानू गोधा महाराजा मानसिंह के विश्वस्त अमात्य थे। महाराजा मानसिंह के साथ नानू गोधा की भी सम्राट् अकबर तक पहुंच हो गई और उन्होंने अपनी शासन दक्षता के कारण महाराजा एवं सम्राट् दोनों का मन जीत लिया था।

सम्राट् अकबर ने जब महाराजा मानसिंह को बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया तो उनके साथ नानू गोधा भी गये थे और महामात्य के पद से विभूषित किये गये थे। नानू गोधा बडे साहसी एवं प्रतिभाशाली मन्त्री थे। वह सदैव महाराजा मानसिंह के साथ रहता था। गोधा जी परम धार्मिक थे। सम्मेद शिखर की उन्होंने कितनी ही बार यात्रायें की थी तथा बीस तीर्थङ्करों के शिखरो पर उनके चरण स्थापित किये थे तथा मन्दिर बनवाये थे। उन्होने अपने जीवन में 84 मन्दिर चैत्यालय स्थापित किये जिनमें 80 चैत्यालय[1] तो अकेले बंगाल में थे। बंगाल के अकबर पुर नगर के पार्श्वनाथ चैत्यालय मे महामात्य नानू गोधा के आग्रह से सम्वत् 1659 (सन् 1602) में भट्टारक वादिभूषण के शिष्य आचार्य श्री ज्ञानकीर्ति ने यशोधर चरित्र की रचना समाप्त की थी। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि (सन् 1604) भी आमेर शास्त्र भण्डार मे संग्रहित है। उस समय नानू गोधा महाराजा मानसिंह के साथ अकबरपुर मे थे।

महामात्य नानू गोधा के वैभव का वर्णन करना कठिन है। 72 हाथी तो उसके निवास स्थान पर बधते थे। सम्वत् 1661 में उसने मोजमाबाद मे तीन शिखरो के एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया जिसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्वत् 1664 (सन् 1607) में ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया को सम्पन्न हुई। यह प्रतिष्ठा इतनी विशाल स्तर पर हुई तथा उसमे हजारो जिन प्रतिमायें प्रतिष्ठित हुई थी। राजस्थान के ही नही देश के अधिकांश मन्दिरो मे इस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित मूर्तियां विराजमान है। इस प्रतिष्ठा समारोह के प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति थे। सवत् 1548 के बाद ऐसी विशाल प्रतिष्ठा पहली बार हुई थी।

एक लेख में नानू गोधा का परिचय निम्न प्रकार अंकित किया गया है—

रूपचन्द को नानू पूरब मत को बार राजा मानस्यंघ कै दीवान हुवो जी कै हाथी बहत्तर घर बध्या। ती मैं 12 हाथी दान दीया भाट व्यासानै। सम्वत् सोलासईकसट कसाल 1661 देहुरो करायो। संमत सोलासै चौसटे क साल 1664 पतीसटा कराई। मौजाबाद मै दीवाणजी श्री नानू संगही।

---

1. तस्मैव राज्ञोऽस्ति महानमात्यो नानू सुनामा विदितो धारिम्यां। सम्मेदभृ गे च जिनेन्द्रगेहमष्टापदे वाविमचकधारी ॥8॥

नानू गोधा की वंशावली निम्न प्रकार है—
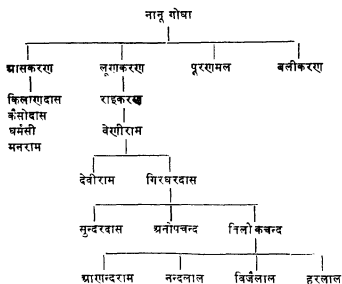
इन्ही के वश मे नन्दलाल गोधा हुए थे जिन्होंने सम्वत् 1826 में सवाई माधोपुर मे विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी। नानू गोधा के पूर्वजो ने ही सम्वत् 1470 मे टौंक मे पच कल्याणक प्रतिष्ठा करायी थी जिसमें प्रतिष्ठित प्रतिमाये टौंक मे उत्खनन मे प्राप्त हुई है।

3. सघी मोहनदास दीवान
(17वीं शताब्दी)

सघी मोहनदास खण्डेलवाल जैन तथा वडजात्या गोत्रीय श्रावक थे। इनका जन्म सम्वत् 1650 के आस-पास हुआ था। जब ये 13 वर्ष के थे तभी इनका विवाह हो गया। इनके पिताजी का नाम खेतसी था जो सघी मालू के छोटे भाई थे। ये वे ही मालू है जिन्होंने सम्वत् 1658 मे दूदू मे पच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाई थी तथा दूदू, चोरू, बादर सीदरी, साखूंण, अराई गाँवो मे विशाल मन्दिरो का निर्माण कराया था। इसी कारण इनके वशज मालावत कहलाते है।

सघी मोहनदास मिर्जा राजा जयसिंह के दीवान रहे। सम्वत् 1714 मे इन्होंने आमेर में तीन शिखरों का मन्दिर बनवाया जो विमलनाथ स्वामी का मन्दिर

कहलाता है। निर्माण के दो वर्ष पश्चात् सम्वत् 1617 में इसकी पच कल्याणक प्रतिष्ठा कराई गई। बाद में यह मन्दिर साम्प्रदायिकता का शिकार हो गया। मंदिर के ऊपर एक शिलालेख लगा हुआ है जो निम्न प्रकार है—

"श्री महाराजाधिराज श्री जयसिहस्य मुख्य प्रधान अम्बावती नगराधिकारी जिनपूजापुरन्दरः सम्यक्त्वालंकृतगात्रस्यविमुः दानेश्वरः जिनप्रासोदोद्धरणाधीरः निजयशसुधावलीकृतविश्वसार्थकनामधेयः संघातिपतिः श्री मोहनदासः।"

मोहनदास दीवान बड़े धर्मात्मा, सफल राजनीतिज्ञ एवं कुशल प्रशासक थे। इनके तीन पुत्र थे—कल्याणदास, बिमलदास एवं अजीतदास। दीवान संघी कल्याणदास आमेर मे दीवान थे। औरंगजेब के समय शिवाजी पकड़, कैद एवं छद्म-वेष से निकल जाने की घटनाओं का दैनिक विवरण इनके पास दैनिक आता था। जिसे वे आमेर भेजते थे।

4. दीवान बल्लू शाह जी

ये खण्डेलवाल जैन तथा छावड़ा गोत्रीय श्रावक थे। महाराज रामसिंह प्रथम के समय मे दीवान थे। शिवाजी को मुगल दरबार मे आने के सम्बन्ध मे बातचीत करने एवं समझाने के लिए बल्लू शाह को भेजा गया था। इन्होने शिवाजी को बचाने मे भी पूरा सहयोग दिया। यह सवत् 1723 की घटना है। बल्लू शाह को मिर्जा राजा जयसिंह ने 165 बीघा जमीन इनाम में दी थी।

5. दीवान बिमलदास छावड़ा

ये दीवान बल्लू शाह जी के पुत्र थे।[1] ये आमेर अधिपति महाराज विशन सिंह (संवत् 1746–1756) के दीवान थे। ये बडे साहसी तथा वीर पुरुष थे। लालसोट के पास जाटों के साथ युद्ध मे ये वीरगति को प्राप्त हुये। लालसोट के पास इनकी छत्री बनी हुई है। रामगढ़ में बिमलपुरा नामक मोहल्ला इन्ही के नाम से था।

6. दीवान रामचन्द्र छावड़ा
(18वीं शताब्दी)

ये खण्डेलवाल जैन तथा छावड़ा गोत्रीय श्रावक थे। ये जयपुर निर्माता महाराज जयसिंह के प्रधान अमात्यो में थे। इनका दीवान काल संवत् 1747 से

---

1. दीवान झूंथाराम संघी के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए महावीर जयन्ती स्मारिका वर्ष 1978 देखिए।

1776 तक माना जाता है। रामचन्द्र छाबड़ा ही ऐसे थे जिन्होंने आमेर को मुगलों के कब्जे से छुड़ाया। जब बहादुर शाह ने आमेर पर कब्जा कर लिया तो महाराजा जयसिंह को आमेर छोड उदयपुर जाना पडा। उनके पीछे से दीवान रामचन्द्र ने फौजे एकत्र कर सम्वत् 1764 मे आमेर पर आक्रमण कर दिया तथा यवनों से आमेर खाली करवा लिया। उन्होंने तत्काल महाराजा जयसिंह को उदयपुर से आमेर बुला कर आमेर का राज्य पुनः उन्हीं को सौंप दिया। इससे मुगल बादशाह बहुत नाराज हुये लेकिन वे कुछ भी नही सके। दीवान रामचन्द्र सफल शासक थे। इन्हें "ढूडार की ढाल" कहा जाता है। कई युद्धो मे ये सम्मिलित हुए थे तथा उनमे विजय प्राप्त की थी। ये धार्मिक श्रद्धालु थे। सम्वत् 1747 मे आमेर के आगे साहिवाड़ का जैन मन्दिर इन्ही के द्वारा बनाया हुआ है। इन्होने उज्जैन मे एक नसियां बनाई। दिल्ली का जयसिंहपुरा का जैन मन्दिर भी इन्ही का बनवाया हुआ है। इनके सम्बन्ध मे निम्न कवित्त प्रचलित है—

रामचन्द्र विमलेश का ढूंढाहड की ढाल।
बांका ने सुधा किया सुधा किया निहाल।।
धर राखण धरा राखण प्रजा राखण पाण।
जैसिंह कहै छै रामचन्द्र तू सांचो छै दीवान।।

दीवान रामचन्द्र छाबड़ा को आमेर पति की तरफ से कई जागीरे मिली हुई थी। साभर के लिए जयपुर जोधपुर मे झगडा होने पर इन्ही को पच बनाया गया था। इन्होंने साभर का आधा-आधा हिस्सा दोनो राजाओ को देना तय किया। यह नियम स्वराज्य मिलने तक प्रचलित था। सम्वत् 1770 में आयोजित भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के पट्ट महोत्सव मे आप प्रमुख अतिथि थे। आपका स्वर्गवास सम्वत् 1784 में हुआ।

7. दीवान फतहचन्द छाबड़ा

ये दीवान रामचन्द्र के छोटे भाई थे। ये सम्वत् 1765 से 1771 तक राज्य के दीवान थे। ये भी धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे।

8. दीवान राव जगराम पाण्ड्या

ये जयपुर में सम्वत् 1770 से 1777 तक दीवान रहे। जयपुर के इतिहास मे इस वंश का काफी योगदान रहा है। इनके पूर्वज चादमल जी बड़े प्रतापी नर-रत्न थे। चाकसू इन्ही के नाम पर बसा हुआ है। ये चाकसू के चौधरी थे। दीवान राव जगराम जी की मुगल दरबार में बहुत पहुच थी। इसलिए ये अपने समय के

प्रभावशाली दीवान थे। सम्वत् 1775 में जिहानाबाद (देहली) में इनको राव की पदवी से विभूषित किया गया।

9. दीवान राव कृपाराम जी पाण्ड्या

ये जगराम पाण्ड्या के पुत्र थे। राव कृपाराम जी पाण्ड्या सम्वत् 1780 से 1790 तक जयपुर के दीवान रहे। ये मुगल दरबार में आमेर की ओर से प्रतिनिधि थे। बादशाह इन्हें बहुत मानता था तथा इनके साथ शतरंज खेलता था। ये बहुत पैसे वाले भी थे। कर्नल टाड ने इन्हें बादशाह का खजांची माना है। जयपुर निर्माण के समय सवाई जयसिंह को इन्होने एक करोड़ रुपयों की मदद दी थी। इनकी पुत्री के विवाह मे जो माधोपुर के नगर सेठो के यहाँ हुआ था उसमें कन्यादान का कार्य महाराज जयसिह ने किया था। महाराज हथलेवा में गाँव देना चाहते थे पर स्वय धनिक तथा बादशाह एव महाराजा के कृपा पात्र होते हुये भी इन्होने समाज को महत्त्व दिया और मात्र दो रुपया हथलेवा मे राजाजी से दिलवाये जो रिवाज आज भी प्रचलित है। मुगल दरबार मे पहुंच जाने से राजा रजवाड़ो के बहुत से काम ये करवा देते थे।

आमेर राज्य की ओर से कई बार विशिष्ट मेवाओ के कारण इनको पुरस्कृत किया गया था। संवत् 1790 मे राव कृपाराम को महाराज की ओर से कडा की जोडी 3 तथा पाँच सौ रुपया दिये गये तथा सम्वत् 1791 में जेठ सुदी 14 को इनको प्रति वर्ष पाँच हजार रुपया वार्षिक देने की स्वीकृति दी गई। मुगल दरबार से इनको छहजारी मनसब प्राप्त था। शाही मुरतब जो जयपुर नरेश की सवारी में लगते थे वे राव कृपाराम जी को ही मिली थे जो उन्होने जयपुर नरेश को ही भेंट कर दिये। महाराज जयसिह तथा उनके भाई विजयसिह जी का झगड़ा इन्ही ने निपटाया था। ये धार्मिक व्यक्ति थे। सूर्य की उपासना का इन्हें इष्ट था। गलता घाटी तथा आमेर में इन्होंने सूर्य मन्दिर बनवाये। माघ शुक्ल 7 (सप्तमी) को जयपुर मे सूर्य का रथ निकलता है। सम्भवतः यह इन्हीं का चलाया हुआ है। आज भी उस दिन का प्रसाद सूर्य मन्दिर से इनके यहाँ आता है। आपके द्वारा जयपुर में चाकसू के चौक में स्थित विशाल जैन मन्दिर, दो चैत्यालय एवं अपने लिये सात चौक की हवेली भी बनवाई थी। सम्वत् 1804 मे इनका स्वर्गवास हो गया।

इन्होने चाकसू में चौथ माता का मन्दिर भी बनवाया था जहाँ प्रति वर्ष चैत्र बुदी में विशाल मेला लगता है।

कृपाराम पाण्ड्या की वंशावली निम्न प्रकार है—
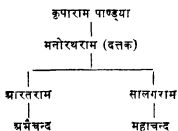
इनके स्वर्गवास के पश्चात् इनके छोटे भाई फतेराम को राव की पदवी में अलंकृत किया गया। ये दिल्ली में बादशाह की हाजिरी में रहते थे। सम्वत् 1819 में देहली में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके तीन पुत्र थे—भवानीराम, सम्भुराम एव लछमनराम। भवानीराम ने भी 1843 से 1855 तक दीवानगिरी की थी। इनकी ज्योतिष मे बडी रुचि थी। भवानीराम के जोखीराम, सदासुख, पन्नालाल एवं चुन्नीलाल ये चार पुत्र थे।

10. दीवान विजयराम छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय श्रावक थे। ये तोतुराम के लड़के थे। इनके नाम से तोतुका एक बैंक पड़ गया और आजकल इनके वशज तोतुका कहलाते है। ये महाराज जयसिह के दीवान थे। जयसिह ने अपनी एक बहिन दिल्ली के बादशाह को देने की थी परन्तु विजयराम जी के चातुर्य से वह बूंदी के हाडा बुधसिह को ब्याह दी गई। जयसिह उस समय दिल्ली मे थे। इस पर मुगल बादशाह नाराज भी हुआ कि "मेरी मगेतर बुधसिह को क्यों ब्याही।" बुधसिह तो रणबाकुरे थे वे डरे नही। विजयराम जी को महाराजा जयसिह की ओर से इस खैर ख्वाही के उपलक्ष में एक ताम्र-पत्र दिया गया। "शाबास थे कुछाह्वा को धर्म राखयो। जयपुर की राज्य पीढ़ी कभी उऋण नही होगी और आपको बाट कर खावेगी।" विजयरामजी बहुत साहसी तथा वीर पुरुष थे।

11. दीवान किशोरदास महाजन

ये खण्डेलवाल जैन थे तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये दौसा के रहने वाले थे। ये संवत् 1749 से 1779 तक दीवान पद रहे तथा अपनी सेवाओ से आमेर के महाराजा एवं जनता को प्रसन्न रखा।

12. दीवान ताराचन्द बिलाला

ये खण्डेलवाल जैन थे तथा बिलाला गोत्रीय थे। ये केशवदास के पुत्र थे। संवत् 1773 से 1790 तक ये दीवान रहे। जयपुर में लूणकरण पाण्ड्या वाला मन्दिर इन्हीं का बनवाया हुआ है। इनके सम्बन्ध में निम्न गीत प्रसिद्ध है—

थरपे दीवाण सवाई जी नै, जुग-जुग राजे बिलालु का।
धराखी आलु घूंघट मालू दल साजे रहवालु का।
कुंजर मतवालु हो देवालु तुरेवालु सा वरणे नग लालु का।
श्री दीवान ताराचन्द प्रगटे बैठा गढ रखवालु का।
थरपे दीवान सवाई जी न जुग जुग राजे बिलालु का ॥1॥

कुरम के माल का बिलाला रखवाला।
कोई नीव नाला केई पीछे कड परनाला यु तो सही मेघमाला है।
बडाई हवालाता का नाव ताराचन्द ताकु बास नन्द लाला है।
गठं चाकसू आमेला आला कुरम के माल का बीलाला रखवाला है।

13. दीवान नैनसुख तेरापंथी

ये खण्डेलवाल जैन एवं छाबड़ा गोत्रीय श्रावक थे। वे दौसा के रहने वाले थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1769–70 तक है। दौसा, लालसोट, बसवा, पापड़दा, चाकसू, टौक, मालपुरा, फागी, आमेर आदि कई स्थानों मे इन्होने मन्दिर बनवाये थे।

14. दीवान श्रीचन्द छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय श्रावक थे। इनके भाई नैनसुख जी छाबड़ा भी दीवान थे। इनका दीवान काल दो वर्ष (सम्वत् 1770–71) तक रहा।

15. दीवान कनीराम बैद

ये खण्डेलवाल जैन थे तथा बैद गोत्रीय थे। ये कठमाणा ग्राम (डिग्गी मालपुरा सड़क स्थित) के निवासी खेमकरण जी बैद के पुत्र थे। सम्वत् 1807 से

1820 तक ये दीवान पद पर रहे । कठमाणा का विशाल जैन मन्दिर तथा जयपुर मे मनीराम जी की कोठी के सामने वाला मन्दिर इन्ही का बनाया हुआ है । इनके द्वितीय भ्राता श्री कीरतराम जी ने कठमाणा के पास सोड़ा ग्राम मे एक मन्दिर बनवाया था । अभी भी इनके वंशज कठमाणा मे रहते है ।

16. दीवान किशनचन्द छाबड़ा

ये दीवान रामचन्द्र छाबड़ा के लडके थे । सवत् 1767 में राजा ने इनकी सेवाओ से प्रसन्न होकर इन्हे 900 बीघा जमीन दी थी । जयपुर दरबार की ओर से बसवा तथा बाद मे टौक के आमील भी बनाये गये । संवत् 1814 में इन्हें और जागीर मिली । सम्वत् 1815 मे इनका स्वर्गवास हो गया ।

17. दीवान भोवचन्द छाबड़ा

ये दीवान रामचन्द्र के पौत्र तथा किशनचन्द के पुत्र थे । सम्वत् 1826 से ही राज्य के उच्च पद पर थे । ये सवत् 1855 से 1859 तक जयपुर राज्य मे दीवान रहे । इनका स्वर्गवास सवत् 1867 मे हो गया था ।

18. दीवान रतनचन्द

रतनचन्द बद्रीदास के पुत्र थे । ये साह गोत्रीय श्रावक थे । जब महापण्डित टोडरमल जी का उत्कर्ष काल तथा उनके सानिध्य मे जब जयपुर मे इन्द्र-ध्वज विधान का विशेष आयोजन हुआ था तब ये जयपुर राज्य के दीवान थे । भाई रायमल जी की चिट्ठी मे इनको "अग्रेसरी" लिखा है । ये तेरहपंथ के कट्टर समर्थक थे । इन्होने आमेर मे एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया तथा जयपुर मे भी जो बधीचन्द जी का मन्दिर कहलाता है । वह भी इनके बड़े भाई थे इसलिये इस मन्दिर को उनके नाम से प्रसिद्ध करवाया । इस मन्दिर का शास्त्र भण्डार भी महत्त्वपूर्ण है जिसमे टोडरमल जी की मोक्षमार्ग प्रकाशक की मूल पाण्डुलिपि सुरक्षित है । जयपुर वाले मन्दिर का गुम्बज मे भी जो सोने का कार्य है वह भी दर्शनीय है ।

रतनचन्द जी का शासन में बहुत बोल-बाला था । हमे उनके सम्बन्ध मे एक कवित्त लिखा मिला है जिसमें उन्हे महाराजा के मन पसन्द का मन्त्री लिखा है तथा यह भी लिखा है कि उन्होने मन्दिर बनवाये तथा वे धार्मिक क्षेत्र मे बढ़ते ही चले गये । जयपुर नगर के सभी नर-नारी जिनके शासन की प्रशंसा करते थे तथा यह

भी कहते थे कि वे अपार धन सम्पत्ति के स्वामी थे। कवित्त की कुछ पंक्तियाँ निम्न प्रकार है—

जेपर का नरनारी कहै रतनचन्द दीवान को धन कुमायो।
सो देसमू रच बेद प्रमानक मांडलतौ करी जोत सवारी।
हुकम दीयोज महीपत माध्व सारी जबात करो सरमाडो।
जेपर का नरनारी कहै रतनचंद दीवान को धनो कुमायो।
श्री दीवान रतनचन्द जी ये महाराज क मन भाया।।
कामज करो बचन का साचा कुरम की मौरी भाया।
अग्रोवास के बंस बुजागर सारी बाता जस गाया।
दानतदारी करो हजुर देस म मगर थार मत पाया।
श्री दीवान रतनचन्द जी र महाराज को मन भाया।।

दोहा—**अग्रोराम के बंस म इन्द्र रतनचन्द भानो।**
केबन के दालद हरने श्री महाराजे दीवाने।।

महाकवि दौलतराम द्वारा रचित हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में "रतनचन्द दीवान एक भूपति के परधान" लिखा है। इसी तरह देवीदास गोधा ने इनको पं० टोडरमल जी शास्त्र सभा का एक प्रमुख श्रोता लिखा है।

19. दीवान जयचन्द

ये दीवान रतनचन्द के पुत्र थे और संवत् 1824 से 1835 तक इन्होंने जयपुर राज्य की दीवानगिरी के पद पर रहते हुए अपूर्व सेवा की थी। इनके जीवन के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

20. दीवान नन्दलाल गोधा

नन्दनलाल के पिता का नाम अनूपचन्द था। ये मोजमाबाद में विशाल मन्दिर बनाने वाले नानू गोधा के वंश के थे।[1] नन्दलाल साहित्यिक व्यक्ति थे तथा कवियों की प्रतिपालना करने वाले थे।[2] जयपुर में उस समय महाराजा माधोसिंह

---

1. **नानु संगही बंस में भए जु संगही सार।**
नौप चंद सुकर बाजू दाता चलो उदार।।
याके चव नन्दन भए, ता मंहि नंदलाल।
2. **दीवान नन्दलाल करे पाल कवियन को।**

का राज्य था । उनके नाबालिक होने के कारण माजी राज्य का कार्य सम्भालती थी । उस समय दीवान बालचन्द जी छाबड़ा थे तथा और भी उच्चाधिकारी थे । इसी समय नन्दलाल दीवान पद पर नियुक्त हुये । उन्होने सवाई माधोपुर में एक मन्दिर का निर्माण करवाया और जब वह बनकर तैयार हो गया तो पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का भाव प्रकट किया । एक स्थान पर सम्वत् 1806 मे मन्दिर निर्माण कराने की तिथि लिखी है लेकिन वह सही प्रतीत नही होती । उन्होंने प्रतिष्ठा की बात का राजमाता से निवेदन किया तो उन्होने तत्काल प्रतिष्ठा करवाने की आज्ञा प्रदान कर दी और कहा कि जो भी पहिले की परम्परा है उसी परम्परा को निभाया जाये ।

नन्दलाल की पत्नी का नाम नन्दादे था जो पति की आज्ञाकारिणी एवं अत्यधिक रूपवान थी ।[1] सवाई माधोपुर मे सवत् 1826 वैशाख बुदी 9 को पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने मे नन्दादे की हार्दिक इच्छा थी ।

नन्दलाल दीवान ने चौथ माता का एक मन्दिर का मिति वैशाख बुदी 13 के दिन टोडारायसिह मे निर्माण कराया ।

नन्दलाल के वशजो का निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है—
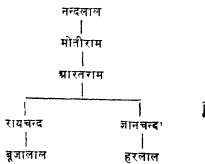
21. दीवान संघी हुकुमचन्द

महामन्त्री मोहनदास के वंश मे सघी हुकुमचन्द दीवान हुये । जिनका कार्य-काल सवत् 1881 से 1891 तक था । इन्हे राव बहादुर का खिताब था । ये फौज के मुसाहिब थे । ये जयपुर के प्रसिद्ध दीवान झूंथाराम के बड़े भाई थे । ये बड़े

1. नन्दलाल के भारज्या, नन्दादे सुखकार ।
सील सुभग सुन्दर महा, रही पीव अनुसार ।।54।।

बहादुर और वीर थे। जयपुर नरेश की नाबालगी में ये इनके संरक्षक थे। इन्होंने लक्ष्मण डूंगरी के पास गंगापोल दरवाजे के बाहर एक विशाल नसियां बनवाई जो संघीजी की नसियां के नाम से विख्यात है। दीवान झूंथाराम के साथ इन्हें भी देश निकाला दे दिया और आगरा जाकर रहने लगे।

22. संघी झूंथाराम

ये जयपुर राज्य के प्रसिद्ध दीवान थे। इनका दीवान काल वि०स० 1881 से 1891 तक रहा। ये अपने समय के कुशल राजनीतिज्ञ, प्रतिभाशाली, बड़ी सूझ-बूझ वाले एव दृढ़ निश्चयी व्यक्ति थे। इनका शासन बड़ा कठोर था। कहा जाता है कि यदि किसी का कोई गहना, आभूषण या अन्य चीज कही गिर गई तो या तो वह स्वय ही उठावें या सरकारी कर्मचारी। दूसरा कोई नहीं उठा सकता था। अपराधो पर कड़ी सजाये देते थे। सब इनके नाम से काँपते थे। एक जनश्रुति के अनुसार उन दिनों जयपुर की समाज मे जीमनवारो मे अपनी झूंठन के साबुत लड्डू जीमने वाले अपने घर ले जाते थे। इससे जीमनवारो पर अधिक खर्च होने लगा। संघीजी ने एक बार जीमनवार मे घोषणा करवादी कि ऐसा जो भी करेगा वह सजा पायेगा। इस प्रथा के बन्द करने के लिये उन्होने अपनी पत्नी से लड्डू चुराने के लिये चुपचाप कह दिया। इनकी धर्मपत्नी ने लाडू उठाये और वह जाने लगी तो उन्होने इनका कोथला भी खुलवा दिया और उसे खूब भला-बुरा कहा। इससे सभी जीमनवारो में चर्चा फैल गई। इसके बाद किसी ने फिर लड्डू नही उठाये। उस समय से समाज मे जीमन की झूंठन ले जाना बंद हो गया।

यह काल देशी राज्यो मे अग्रेजो के आधिपत्य जमने का था। जयपुर में उन समय नाबालिग राज था। राजमाता भटियारी जी राजकाज देखती थी। उन्हे अंग्रेजो का दखल पसन्द नही था। संघीजी भी इसी प्रकृति के थे। आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु संघीजी झूंथाराम को राजस्व मत्री बनाया गया। पर एक अन्य मुसाहिब रावल बेरीसाल से इनकी नही बनी। वह अंग्रेजो का पक्षपाती तथा संघीजी विरोधी था। दोनो मे अनबन हुई। राजमाता ने रावल को समझाया पर उसे अंग्रेजो का जोम था। संघीजी के विरुद्ध अंग्रेजों को भड़काया गया। जब संघी झूंथाराम मुख्यमत्री बने तो उन्होने शेखावाटी के झगड़े को निपटाया। राजस्व बढ़ाया। जनता मे अमन चैन कायम किया। इससे उनकी चारो ओर प्रशंसा होने लगी। इसी बीच राजमाता की मृत्यु हो गई तथा महाराजा जयसिंह तृतीय भी 17 वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हो गये। विरोधियो ने संघीजी को राजा का हत्यारा बताया। जिसका प्रतिवाद उनकी रानी चंद्रावती जी ने किया। लेकिन अंग्रेजों के कुचक्र चलते रहे। आजादी के दीवानो की जो स्थिति होती है वही संघीजी तथा

उनके साथियों की हुई। राजा की हत्या का अपराध लगाया। मुकदमा चला लेकिन उसमें विरोधियो को कामयाबी नही हुई। लेकिन राजविद्रोह के अपराधी करार देने के बाद अंग्रेजों ने गिरफ्तार करके इन्हे संवत् 1892 मे दोसा भेज दिया। उसके तीन वर्ष पश्चात् संवत् 1895 में इनकी मृत्यु हो गई।

संघी झूंथाराम का इतिहासकारो ने बहुत गलत चित्रण प्रस्तुत किया है वास्तव में संघी जैसे बहादुर एव सच्चा स्वामीभक्त दीवान बहुत कम मिलेगे। इनका एक मात्र पुत्र विरधीचन्द था जिनका आगरा में कुछ वर्षों पश्चात् देहान्त हो गया।[1]

23. दीवान आरतराम खिन्दूका

ये खिन्दूका गोत्र के श्रावक थे। खिन्दूका पाटनी गोत्र का ही दूसरा नाम है। खिन्दूका जी नेवटा के रहने वाले थे तथा जयपुर आकर रहने लगे थे। इनके पिताजी का नाम ऋषभदास खिन्दूका था। ये जयपुर राज्य के दीवान थे। इनका दीवानकाल सवत् 1814–35 तक माना जाता है। यह समय जयपुर राज्य मे तथा जयपुर जैन समाज की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। नेवटा मे इनके द्वारा बनवाया हुआ एक विशाल मंदिर है जहा प्रति वर्ष आसोज मास में मेला भरता है। आरतराम के वशज जयपुर मे रहते है। जहा इनके मकान के चैत्यालय है।

24. दीवान नोनदराम खिन्दूका

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रीय है। ये दीवान आरतराम के पौत्र थे। इनका दीवान काल सवत् 1874 से 1881 तक माना जाता है।

25 दीवान नैनसुख खिन्दूका

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रीय थे। ये मुकन्दास जी के पुत्र थे। इनका दीवान काल सवत् 1821 से 1826 तक था। इनके वशज जयपुर के मुसरफो के चौक मे रहते है। सवत् 1814–1833 किसी पुस्तक मे इनका दीवान काल मिलता है।[1]

26. दीवान संघी मोतीराम गोधा

ये खण्डेलवाल जैन तथा गोधा गोत्रीय थे। ये दीवान सघी नन्दलाल के पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1825–1834 तक रहा था।

---

1. वीरवाणी मार्च 1967

27. दीवान अमरचंद सौगाणी

ये खण्डेलवाल जैन तथा सोगाणी गोत्रीय थे। ये मामाराम जी सौगाणी के पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1829–1834 तक था।

28 दीवान संघी जीवराज

इनका दीवानकाल 1830 से 1840 तक रहा था।

29. दीवान संघी मोहनराम

ये खण्डेलवाल जैन श्रावक थे। ये संघी जीवराज जी के पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1834 से 1867 तक था।

30. दीवान भागचंद

ये खण्डेलवाल जैन श्रावक है। ये सीताराम जी के पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1842 से 1846 तक था। चौड़े रास्ते पर इनके वशजों की हवेली है। चम्पालाल जी इनके वशज है।

31. दीवान भगतराम बगड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा मौसा गोत्रीय श्रावक थे। इनके पिता का नाम सुखराम जी था। इनका दीवान काल सम्वत् 1842 से 1885 तक था। ये उदार प्रकृति के धर्मात्मा व्यक्ति थे। इन्होने शातिनाथ जी की खोह मे पहाडी पर केदारनाथ का मदिर तथा भतृहरि का तिबारा एवं महादेव का मदिर बनवाया था। इन्होने सम्वत् 1864 मे एक बावड़ी बनवाई थी। उस पर शिलालेख मौजूद है। इनने उस समय खोह मे तीन लाख रुपया लगाया था।

32. दीवान श्योजीलाल छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये चैनराम जी के पुत्र थे। इनका दीवान काल संवत् 1865 से 1875 तक है। जयपुर में इनकी हवेली वाला रास्ता, इन्ही के नाम से दीवान श्योजीलाल जी का रास्ता कहलाता है। ये संस्कृत एवं ज्योतिष के विद्वान थे। सरकारी रकम की वसूली में इनकी सेवायें महत्त्वपूर्ण थी। इनके वंशज अभी भी उसी हवेली में रहते है।

33. दीवान अमोलकचंद खिन्दूका

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रीय थे। ये दीवान नोनदराम के पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1882 से 1886 तक था।

34. दीवान केशरीसिहजी कासलीवाल

ये खण्डेलवाल जैन तथा कासलीवाल गोत्रीय थे। जयपुर नरेश माधवसिंह जी इन्हें उदयपुर से सम्वत् 1789 में लाये थे तथा सम्वत् 1808 में सिरमौर पद से विभूषित किया था। ये बड़े धर्मात्मा तथा वीर पुरुष थे। सम्वत् 1808 मे इन्हें राज्य का दीवान बनाया गया। करीब 10 वर्ष तक जयपुर में दीवान रहे। जयपुर में संगमरमर में कुराई के काम के लिये विख्यात सिरमौरियो का मंदिर इन्ही का बनाया हुआ है। इस मंदिर की नीव जयपुर नरेश महाराजा माधवसिह जी ने खुद अपने हाथों से रखी थी। मंदिर निर्माण के लिये राज्य की ओर से 2000/– दो हजार रुपया दिया गया था। यह बात सम्वत् 1813 की है। यह मंदिर कला की दृष्टि से बेजोड है। संगमरमर पर जितना बारीक एवं सुन्दर कार्य इस मंदिर मे हुआ है वैसा अन्यत्र नही मिलता।

35. दीवान बालचंद जी छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबडा गोत्रीय थे। ये मोजीराम जी के पुत्र थे। मोजीराम जी भी दीवान थे। बालचंद[1]जी का दीवान काल सम्वत् 1818 से 1829 तक रहा था। इस समय जयपुर नरेश माधोसिह का गुरु बना हुआ था। महाराजा को मेलजोल मे ताबीज आदि बांध कर उसने वश मे कर लिया। सम्वत् 1817 मे श्याम के सहयोगियो द्वारा लूटपाट तथा जैन मंदिर नष्ट किये गये। दीवान बाल चद जी ने महाराजा के हाथ मे बधे हुये ताबिज को खुलवाया तब महाराजा को बोध हुआ और अपने किये पर पछताने लगे। तत्काल श्याम तिवारी को देश निकाला दिया गया। सम्वत् 1819 मे राजाज्ञा निकाली कि जैनो के साथ कोई भेदभाव न किया जाय। जो माल लूटा गया है सो वापस किया जाय। जितने मदिर नष्ट भ्रष्ट हुये उतने ही और बने। धर्म रक्षार्थ दीवान बालचद जी ने अभूत-पूर्व कार्य किये। सम्वत् 1821 मे विशाल इन्द्रध्वज पूजन महोत्सव इनके सहयोग से हुआ इस उत्सव मे दूर-दूर से यात्री आये थे। कुछ साम्प्रदायिक व्यक्ति इनसे जले। पुन: उपद्रव मचा। फलस्वरूप महापंडित आचार्य कल्प प० टोडरमल जी को प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा।

श्री बालचद छाबडा ने अपने पढ़ने के लिये भक्तामर स्तोत्र की सरल हिन्दी में टीका प० विजयनाथ से सम्वत् 1825 में करवाई थी।[2] भक्तामर स्तोत्र की आदि-

---

1. तिनमें गोत छाबड़ा मांहि, बालचन्द दीवान कहांहि। वर्धमान पुराण
2. पोस मास पक्ष श्वेत में, तेरसि तिथि भृगवार।
   जय ज्युत जैपुर के विषे, भाषा बरनी सार ॥56॥
   संवत अष्टादस सहस पुनं पचीस कहेव।
   वाचं पढ़ं जु प्रीति सों, मुक्ति, रमरिग सुख लेव ॥57॥

काल एवं प्रशस्ति निम्न प्रकार है। इसकी शुद्धि पं० दौलतराम कासलीवाल ने की थी।

> **बालचन्द दीवान जू कीनों यह उपदेश,**
> **भक्तामर सुना भाव सों भाषा करो सुवेस ।।52।।**
> **भवि जीव ताको पढ़ें धरें ध्यान मन लाइ।**
> **विजैनाथ नें भाव सों भाषा करी बनाइ ।।53।।**
> **ज्ञान रूप सुभ धर्म मय, सुभ जैपुर विश्राम।**
> **लघु मति सों कीनी सुकवि, सोधो दौलतराम ।।54।।**

इसके पूर्व सम्वत् 1823 में उन्होने आदिपुराण की प्रतिलिपि दशलक्षण व्रतोद्यापन के उपलक्ष्य मे कराई थी। इनके पाच पुत्र थे जिनमे जयचद एवं रामचन्द्र दोनो ही दीवान थे। ये साहित्य प्रेमी थे और इनके द्वारा लिखाई गई कितने ही ग्रथो की पाण्डुलिपिया जयपुर के शास्त्र भण्डारो में सग्रहित है।

36. दीवान जयचन्द जी छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये दीवान बालचंदजी के जेष्ठ पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1829 से 1855 तक था। ये बड़े धर्मात्मा थे। इनके पुत्र कृपाराम जी और ज्ञानचद जी भी दीवान थे।

37. दीवान रायचंद जी छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबडा गोत्रीय थे। ये दीवान बालचंदजी के तृतीय पुत्र थे। इनका दीवान काल सम्वत् 1850 से 1864 तक था। ये बड़े होनहार तथा धर्मात्मा थे।

सम्वत् 1862 मे उदयपुर महाराजा की लड़की कृष्णा कुमारी से विवाह करने के सम्बन्ध मे जयपुर, जोधपुर में काफी तनाव हुआ। युद्ध के लिये सेना कूच कर गई परन्तु जयपुर के दीवान रायचद और जोधपुर के इन्द्रराज संघी के बीच-बचाव से युद्ध टला। यह सुलह अधिक दिन नही रही। पोकरण के ठाकुर, जोधपुर की गद्दी पर धोकलसिंह को बिठाने के चक्कर मे पुनः युद्ध भड़का। दीवान रायचद जी ने महाराज जगतसिंह जी को इस युद्ध में शामिल होने के लिये मना किया। पर महाराज ने नहीं मानी। युद्ध में विजय तो हुई पर काफी धन बर्बाद हो गया और जयपुर संकट में पड़ गया। शेखावाटी आदि के कई झगड़े जो उस समय चल रहे थे उन्हें रायचंद जी ने निपटाये।

जोधपुर के साथ युद्ध के समय जब सारी फौजे जोधपुर में थी, तब जोधपुर वालों की सह से अमीर खां पिंड़ारी ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया और लूट

खसौट करने लगा। जयपुर नरेश को जब ये बातें मालूम पड़ी तो वे जयपुर के लिए रवाना हुये परन्तु मार्ग में अमीर खां एव जोधपुर वालों से पिंड छुड़ाना मुश्किल हो गया। फौजें थकी हुई थी तथा महाराज किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। ऐसे समय में दीवान रायचद जी ने वनिक बुद्धि से काम लिया और एक लाख रुपये पिड़ारियों को देकर जगतसिंह जी को जयपुर पहुँचाया।

दीवान रायचन्द जी जहां गूढ़ नीतिज्ञ, वीर, योद्धा और कुशल प्रशासक थे वहां वे बड़े धर्मात्मा भी थे इनने संवत् 1861 में विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई। विशाल यात्रा संघ चलाकर संघी पद सार्थक किया। जयपुर में चार मदिर इन्होंने बनवाये। (1) घाट में (2) मोहनबाड़ी मे (3) बिन्दायको के चौक मे (4) मेहन्दी वालो के चौक में। सभी मंदिर विशाल थे। इनमे तीन मदिर तो सांप्रदायिकता के शिकार हो गये केवल एक मन्दिर मेहदी वालों के चौक वाला जैन मन्दिर बचा हुआ है।

इनका इतना उत्कर्ष लोगो को सहन नही हुआ। राजनैतिक विरोधी कुचक्र चलाते रहे। रसकपूर नामक गायिका से जगतसिंह का बडा प्रेम था। शिवनारायण नामक व्यक्ति रसकपूर का भाई बनकर राजा का दयापात्र बना हुआ था। मौका देख नशे मे मस्त राजा से इसने रायचन्द जी को कैद करने के आदेश प्राप्त कर लिये और तुरत सारी कार्यवाही कर डाली। रायचन्द जी कैद कर जयगढ भेज दिये गये जहा से जिन्दा कोई वापिस नही आता। जब राजा को होश हवाश हुआ और घटना मालूम हुई तो फौरन रायचद जी को पीछे से दरवाजा तोडकर लाने का आदेश दिया। पर दुश्मनो ने पहाड पर से उन्हे लुढका दिया और उनकी मृत्यु हो गई। जगतसिह के पिता महाराज प्रतापसिंह ने मरते समय पुत्र को कहा था कि खुशाली राम बोहरा, दौलतराम हल्दिया और दिवान रायचन्द बड़े काम के और विश्वास पात्र है इनसे बिगाड़ मत करना। पर वैश्या और उसके भाई के फन्दे मे पड़कर सारे अनर्थ कर डाले। इस प्रकार रायचन्द जी का स्वर्गवास सवत् 1864 में हुआ।

इनका सम्मेद शिखर यात्रा का विवरण अत्यधिक रोचक एव इतिहास के कितने ही अर्चचित पृष्ठ खोलने वाला है। यात्रा सघ मे पाच हजार स्त्री-पुरुष इनके साथ मे थे। एक कवि के शब्दो के देखिये :—

अधिक ग्यारसौ रथ अर भंला, अश्व ग्यारसौ तिनकी गेल।
सुतर दोयसौ तिन परि भार, नर नारी गिनि पांच हजार।।

38. दीवान संगही मन्नालाल जी छाबड़ा

ये दीवान रायचन्द जी छाबडा के दत्तक पुत्र थे। ये दीवान एवं फोजबख्शी

दोनों का काम करते थे । संवत् 1866 से 1869 तक इनके राज्य कार्यों में कितने उल्लेखनीय कार्य है । संवत् 1866 से लेकर सवत् 1869 तक ये शासन में सर्वोच्च पद (दीवान) पर रहे ।

39. दीवान कृपाराम छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रिय थे । ये संगही दीवान रायचन्द जी के भतीजे थे । इनका दीवान काल संवत् 1869 से 1875 तक रहा । ये बडे नीतिज्ञ ग्रौर फौजी व्यक्ति थे । राज्य के लिये इनने बड़ी-बड़ी फौजो का सग्रह किया । शेखावाटी को वश में रखने की दृष्टि से दीवान रायचन्द जी ने इन्हें वहा भेजा । इनके ग्रसतुष्ट सामन्तो को वश में किया । इनकी चातुरी से 10 हजार सेना इनके ग्राधीन हो गई । कर्नल,टाड ने लिखा है कि जगतसिह जी की इतनी सेना थी जितनी किसी ग्रामेर नरेश को नही हुई ।

40 दीवान श्योजीलाल पाटनी

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रिय थे । ये रतनचन्द जी के पुत्र ग्रौर प्रसिद्ध दीवान ग्रमरचन्द जी के पिता थे । इनका दीवान काल सवत् 1834 से 1867 तक था । ये बडे धर्मात्मा ग्रौर वीर थे । जयपुर मे मनिहारो के रास्ते मे स्थित बडे दीवान जी का मन्दिर इन्ही का बनवाया हुग्रा है । वर्तमान में दिगम्बर जैन ग्राचार्य सस्कृत महाविद्यालय इसी की इमारत मे है । संवत् 1850 मे यह मन्दिर बना था । सवत् 1852 मे इसमे भगवान ग्रादिनाथ की विशाल मूर्ति को वेदी मे विराजमान किया गया । दीवान जी का धार्मिक ज्ञान भी ग्रच्छा था । ये जब भी जयपुर के मन्दिरो मे दर्शन करते उनको ग्रच्छा पैसा देते थे । इनने तीन राजाग्रो के समय महाराज पृथ्वीसिह सवत् 1824 से 1835, महाराज प्रतापसिह सवत् 1835 से 1860 तथा महाराज जगतसिह जी 1860 से 1875 तक दीवान-गीरी की थी ।

सवत् 1841 मे इन्होंने प० उत्तमचन्द से त्रिलोकसार भाषा की रचना करायी । दीवान श्योजीराम यह कियो हृदय मे ज्ञान । पुस्तक लिखाय श्रवण सुण राखो निसी दिन ध्यान । समयसार की एक पाण्डुलिपि इन्होने पुत्र ग्रमरचन्द के लिये लिखवायी थी जो जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर मे उपलब्ध है ।

41. दीवान ग्रमरचंद पाटनी खिंदूका

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रिय थे । ये दीवान श्योजीराम जी के पुत्र थे । संवत् 1860 से 1892 तक दीवान रहे । ये ग्रपने पिता के ग्रनुरूप ही थे

भी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। इन्होंने अपनी हवेली के पास ही एक विशाल मन्दिर बनवाया जो छोटे दीवान जी के मन्दिर के नाम विख्यात है। उसके सामने ही इनकी धर्मशाला है। यह मन्दिर संवत् 1872-84 में बना था। इन्होंने बधीचन्द जी के मन्दिर मे लकड़ी पर सोने के काम का समवशरण तथा तेरहद्वीप की रचना बनवाई थी। इन्होंने कई सामाजिक रीति-रिवाजो मे सुधार किये। दयालु इतने थे कि किसी जरूरत मन्द व्यक्ति के घर अनाज, कपड़े चुपचाप भिजवा देते थे। कई बार लड्डूओ में मोहर रखकर गरीब घरो में भिजवा देते थे। मन्दिर मे स्वयं अपने हाथो से झाड़ू लगाते थे। इनने ग्रन्थ लिखवाये तथा शास्त्रों का अच्छा संग्रह कराया था।

इनकी दीवानगिरी के समय जयपुर नरेश नाबालिक थे। कई राजनैतिक षडयन्त्र चल रहे थे। अग्रेज अपना पूर्ण आधिपत्य चाहने लगे। महल मे किसी ने अंग्रेज एजेन्ट पर हमला किया। उसके साथी मिस्टर ब्लैक ने आक्रमणकारी से तलवार छीन हाथी पर बैठकर महल मे बाहर आया। जनता में अफवाह फैली कि इसने नवजात राजा को मार डाला है तब जनता ने ब्लैक की हत्या कर डाली। उस युग मे इस प्रकार की हत्या बगावत मानी जाती थी। आजादी के दीवानो के प्रति इल्जाम लगाकर चुन-चुन कर उन्हे गिरफ्तार किया। त्रिपोलिया एवं किशन-पोल बाजार के सारे क्षेत्र पर अग्रेजों का प्रकोप हुआ। दीवान अमरचन्द जी ने सामूहिक हत्या होने के भय से सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। अग्रेजो द्वारा बनाई गई ट्रिब्यूनल ने इनको अपराधी करार दिया और फासी पर लटकाने का हुक्म हुआ। इस प्रकार दीवान अमरचन्द फासी के तख्ते पर लटक कर अमर शहीद हो गये।

42. दीवान सम्पतराम खिडूका

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रीय थे। ये दीवान आरतराम के पौत्र थे। इनका दीवान काल सवत् 1891 से 1896 तक रहा।

43. दीवान सदासुख छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये जयचन्द जी छाबड़ा के पुत्र थे। इनका दीवान काल सवत् 1857 से 1864 तक रहा।

44. दीवान कृपाराम छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये जयचन्द जी छाबड़ा के पुत्र तथा दीवान सदासुख जी छाबड़ा के भाई थे। इनका दीवान काल सवत् 1869 से 1875 तक रहा।

45. दीवान लिखमीचन्द छाबड़ा

ये खण्डेलवाल जैन तथा छाबड़ा गोत्रीय थे। ये दौसा के रहने वाले जीवन राम जी के पुत्र थे। इनका दीवान काल संवत् 1859 से 1874 तक रहा।

46. दीवान लिखमीचन्द गोधा

ये खण्डेलवाल जैन तथा गोधा गोत्रीय थे। ये मगतराम जी गोधा के पुत्र थे। इनका दीवान काल संवत् 1874 से 1881 तक रहा।

47. मुंशी प्यारेलाल कासलीवाल

ये खण्डेलवाल जैन तथा कासलीवाल गोत्रीय थे। जयपुर स्टेट कौंसिल रेवेन्यू विभाग इनके पास था। ये मन्त्री के पद पर संवत् 1976 से 1979 तक रहे।

48. नागौर के दीवान परबत शाह पाटनी

ये खण्डेलवाल जैन तथा पाटनी गोत्रीय थे तथा नागौर के रहने वाले थे। नागौर के नवाब नागौरी खाँ के दीवान थे। इन्होंने संवत् 1581 मे भट्टारक रत्न कीर्ति जी के उपदेश से नागौर में भगवान आदिनाथ का मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा कराई थी। पूर्व में इनके वश में पण्डित मेघावी हुये जो भट्टारक जिनचन्द के शिष्य थे तथा जिन्होने संवत् 1541 मे धर्म-सग्रह श्रावकाचार की रचना की थी।

49. भरतपुर के दीवान सिंघई फतेचन्द

भरतपुर में जाटो का राज्य था। राजा सूरजमल के शासन-काल मे भरतपुर की बडी उन्नति हुई थी। उस समय भरतपुर के चादुवाड गोत्रीय सघई केशोदास के सुपुत्र संघई मायाराम राज्य के खजान्ची थे तथा राज्य के मोदी भी थे। उनके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र संघई फतेचन्द दोनो पदो पर नियुक्त किये गये। सेठ फतेचन्द के आश्रित एव सहायक खजान्ची पण्डित नथमल बिलाला थे। ये हिन्दी के अच्छे पण्डित थे। संवत् 1767 से 1778 तक उन्होने कितने ही ग्रन्थो की रचना की थी। फतेचन्द के जसरूप एव जगन्नाथ ये दो पुत्र थे। उन्हीं के पढ़ने के लिए नथमल बिलाला ने सिद्धान्त-सार दीपक की हिन्दी में रचना की थी। फतेचन्द बड़े दानी एवं धर्मात्मा व्यक्ति थे। पण्डितो के आश्रयदाता थे।

50. जोधराज कासलीवाल

जोधराज कासलीवाल महाकवि दौलतराम कासलीवाल के सुपुत्र थे। अपने पिता के समान ये भी पण्डित थे। ये जयपुर मे कामा आकर रहने लगे और भरतपुर के राजा सूर्यमल द्वारा दीवान पद पर नियुक्त हुये। इन्होने संवत् 1884 मे सुख-विलास ग्रन्थ की रचना की थी।

51. डिग्गी ठिकाने के कामदार

राजस्थान के लावा नगर मे मनसाराम कासलीवाल रहते थे। उनके पुत्र का नाम कालू था जो अपने काका नवल के भी गोद चला गया था। कालूराम के पुत्र चम्पालाल थे जो डिग्गी ठिकाने के प्रभावशाली कामदार (दीवान) थे। पूरे ठिकाने का शासन भार इन्ही के हाथ मे था। जब उनके चार पुत्रियो के पश्चात् पुत्र उत्पन्न हुआ तो नगर मे खूब उत्सव मनाया गया। चम्पाराम ने इस अवसर पर श्रेणिक चरित्र (लखमीराम) की प्रतिलिपि करवाकर मन्दिर के शास्त्र भण्डार में विराजमान किया। यह घटना संवत् 1895 वैशाख शुक्ला 3 की है।

52. सीकर रावराजा के दीवान

सीकर जयपुर राज्य का सबसे बडा ठिकाना था लेकिन यहाँ के शासक रावराजा कहलाते थे और उन्हे शासन के सभी अधिकार प्राप्त थे। सीकर राज्य में खण्डेलवाल जैनो की सबसे अच्छी सख्या है। स्वय सीकर मे सरावगी समाज के अधिक घर है। सीकर मे दीवान खानदान की लम्बी परम्परा रही है।

सर्वप्रथम राजा रायमल जी दरबारी के दीवान देवीदास जी छाबडा थे। ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जाति भूषण थे। दीवान देवीदास के पुत्र शाह कुम्भा हुये उनके दो पुत्र थे जीतमल एव नथमल। इन दोनो भाइयों ने नागौर गादी के भट्टारक यश.कीर्ति के उपदेश से रेवासा के सुप्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण करवाया था। मंदिर विशाल एव भव्य है।

53. सहजराम छाबड़ा

इसी वंश मे उत्पन्न होने वाले सहजराम जी छाबड़ा थे। उनका पुत्र लक्ष्मण राम था। इनके भी तीन पुत्र थे—रामवल्लभ जी, सुखलाल जी एवं मोहनलाल जी। उनमे सुखलाल जी छाबड़ा रावराजा भैरवसिह जी के दीवान थे। सुखलाल जी के पुत्र हीरालाल थे। उनके भ्राता थे—मंगलचन्द, गगाबक्स एवं नन्दलाल। इन्होंने संवत् 1942 मे रावराजा प्रतापसिह जी की छतरी के आगे आगूणों दरवाजे में एक

विशाल नसियां का निर्माण करवाया। हीरालाल जी के कोई सन्तान नहीं थी इस लिये उन्होंने मंगलचन्द जी के पुत्र बेगराज को गोद लिया। उसके पश्चात् बेगराज के भाई परतूलाल जी दीवान हुये। परतूलाल जी के पश्चात् श्रीचन्द जी और भवरलाल जी दीवान हुये। जागीरदारी समाप्त होने के साथ ही दीवान होने की प्रथा भी समाप्त हो गई।

ये सभी दीवान अत्यधिक प्रभावशाखी थे तथा जनहित के साथ समाज हित एव धार्मिक कार्यों में भी पूरी रुचि लेते रहते थे। सीकर का छाबड़ा वश सर्वत्र सम्मानित एव प्रशसित रहा है।

54. संघाधिपति सभासिंह

मालवा और विन्ध्यभूमि की सीमा पर अवस्थित होने से चन्देरी दुर्ग का मध्य युग मे अत्यधिक महत्त्व था। कभी दिल्ली के सुल्तानों का और कभी मांडू (मोडवगढ) के सुल्तानों का प्रशासनिक केन्द्र रहा। शेरशाह के समय में चन्देरी सरकार मे 52 परगने थे। अकबर के समय चन्देरी की हुकुमत मुस्लिम हाकिमो के हाथो में रही। शहजादे सलीम ने पिता से विद्रोह किया और अकबरी दरबार के नवरत्नो में प्रमुख अबुल फजल का वध अपने मित्र वीरसिंह बुन्देला से करा दिया। पिता के मरणोपरान्त वह जहाँगीर के नाम से भारत का सम्राट बना। सिंहासनारोहण के अवसर पर उसने कृतज्ञता स्वरूप वीरसिंह को पुरस्कार देना चाहा। हठी राजकुमार ने ओड़छे का पैतृक सिंहासन मांगा जिस पर 11 वर्ष से ज्येष्ठ भ्राता रामशाह (पुत्र मधुकर शाह) विराजमान था। जहांगीर ने वीरसिंह को ओड़छे को का राजा बनाया और राम शाह को चन्देरी सरकार का हाकिम किन्तु वह राजवंशोत्पन्न एव भूतपूर्व होने से चन्देरी मे राजा कहलाया। उसके वशज भी राजा कहे गये और एक के बाद एक चन्देरी पर शासन करते रहे। रामशाह के समय मे चन्देरी सरकार की आय 22 लाख थी जो राजा मोदप्रहलाद के समय में केवल 5 लाख रह गया था। वह अकर्मण्य और क्रूर था। उसकी दुर्बलता का लाभ उठा कर ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सिंधिया के फ्रेंच सेनापति जोन बैपहिस्ट ने 1815 ई० में चन्देरी पर मराठो की विजय पताका फहरा दी। कायर पिता मोदप्रहलाद का उत्तराधिकारी राजकुमार मरदनसिंह जवा मर्द और साहसी था। उसने मरहठों की नाक में दम कर दिया। बुन्देलों और मरहठों के विग्रह का अन्त 1836 ई० में एक संधि के द्वारा हुआ। सन्धि कराने में तीन सामन्तों ने भाग लिया जिनमें चौधरी फतहसिंह प्रमुख थे जिनके प्रतिनिधि संभासिंह थे। राजस्थान में किशनगढ़ राज्य के एक जैन सामन्त चौधरी रतनपाल राजा से रुष्ट होकर चन्देरी आ बसे। वे खण्डेलवाल जातीय एवं बोहरा गोत्रीय थे। चन्देरी के बुन्देले राजा ने इन्हें जागीर दी। इनके द्वितीय पुत्र चौधरी ताराचन्द को औरंगजेब ने चन्देरी का

फौजदार नियुक्त किया। तब से सवाई चौधरी राजधर फौजदार नियुक्त हुये जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी लिखे जाते रहें। बुन्देलों और मराठों ने भी चौधरियो को जागीरें दी। चौधरी हिरदेशाह, फतहसिंह और मरदनसिंह के कार्यवाहक संभासिह अत्यन्त प्रभावशाली और धर्म-निष्ठ सज्जन थे। उन्हें मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कराने एवं प्रतिष्ठा कराने में बड़ा उत्साह था। वे खण्डेलवाल जातीय एवं बज गोत्री थे। उनकी भार्या का नाम कमला था। चन्देरी से 8 मील दूर अतिशय क्षेत्र थोवनजी पर एक मन्दिर बनवाया जिसमें भगवान आदिनाथ की खड्गासन मूर्ति 35 फीट ऊंची है। देशी पाषाण की इस मूर्ति पर निम्नलिखित लेख है—

"अथ सुभ सम्वतसरे श्रीनृपति विक्रमादित्य राज्योदयात—सवत् 1873 मासोत्तमोमासे वैशाखमासे सुभे शुक्ल पक्षे 3 मोमवारो श्री मूलसंघे गच्छे बलात्कार गणे श्री कुन्दकुन्दाचार्याम्नाये प्रवर्तने श्री महाराजाधिराज श्री महाराज दौलतराम आलीजाबहादुरराजेकरनल जानवतीसबहादुर राज्ये चौधरी सवाई राजधर हिरदेशाह चौधरी फतेहसिंह गुमास्तासवाईसिंह भार्या कमला खण्डेलवाल वंसे बज गोत्रे एते सपरिवारो नित्य जिनपद प्रनमतो।"

सिद्ध क्षेत्र सोनागिर (सुबर्ण गिरी) पर सभासिंह ने बड़े समारोह पूर्वक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराई। किवदन्ती है कि दतिया के बुन्देला राजा ने उनकी साधारण वेशभूषा देखकर उपेक्षा की। तब आपने मिट्टी के बर्तन और दोनो-पत्तलो की भरकर सैकड़ो बैलगाड़ियो का ताता लगा दिया। राजा को विदित हुआ तो उसने सभासिह को बुलाकर खेद व्यक्त किया और सहयोग देने का वचन दिया। आन-बान वाले सभासिंह ने कहा कि—मै तराजू तौलने वाला बनिया नही हूँ मै तो राजा रईसो को तोलता हूँ। दानवीरता के साथ यह निर्भीकता कितनी भली लगती है। भगवान पार्श्वनाथ की एक पद्मासन मूर्ति श्याम पाषाण की 60 अगुल ऊंची चन्देरी मे बडे दिगम्बर जैन मन्दिर मे है। उस पर निम्नलिखित अभिलेख है—संवत् 1884 फाल्गुन शुक्ल पक्षे 2 रविवासरे श्री मूलसघ बलात्कार गण सरस्वतीगच्छ कुन्दुकुन्दचार्यान्वये गोपाचलस पट्टे भट्टारक श्री सुरेन्द्रदेवास्तस्त भूषण विद्यमाने स्वर्णगिरिस्थ आचार्य विजयकीर्तिजित्कस्य शिस्य पण्डित परमसुख जित्पण्डित मागीरथस्योपदेशात् चन्देरी नगर स्थित षडेलवालान्वये गोत्रे चौधरी सवाई हिरदेशाह चौधरी फतेहसिह तस्य पुत्र बजगोत्रे सभासिहेन स्वर्णगिरमध्ये जिनबिम्बं करापिता।[1]

चन्देरी में किवदन्ती है कि चौबीसी मन्दिर का निर्माण चौधरी वंश द्वारा हुआ है परन्तु तीनो मूर्ति लेखो से स्पष्ट है कि निर्माता सभासिह थे। सघाधिपति

1. **संधातिपति सभासिंह- जैन संदेश शोधांक–30, 27 जनवरी, 1972।**

(संघपति–सिंघई) उपाधि सभासिंह के नाम के साथ है न कि सवाई चौधरी राजधन हिरदेशाह की उपाधियों के साथ है। सामन्तों के कारपरदाज (गुमास्ता) भी सम्पत्तिशाली होते थे। कहते हैं कि बुन्देलखण्ड में पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं के साथ गजरथ चलाने की प्रथा का आरम्भ तभी से हुआ था तथा गजरथ चलाने वालों को सघई, सवाई सघई की पदवी प्रदान की जाती है तथा पगडी बंधाई जाती है सो वह पगड़ी चन्देरी के सरदारो के वहां से जाती है। बोहरा गोत्र दो प्रकार का होता है—(1) चन्दावत्या तथा (2) दूसरे का विशेष नाम नहीं मिलता। चौधरी मरदन सिंह के पूर्वज चौधरी छीतरदास, परसराम, पंचकदास मे खंदार (चन्देरी) की एक गुहा मे एक मूर्ति संवत् 1690 मे बनवाई थी। वर्तमान वशधर कुंवर कमलसिंह, पद्मसिंह आदि है।

राजनीति वेत्ता, शूरवीर एवं दानवीर सभासिंह की गौरव गाथा चिर-स्थायी हो।[1]

दीवान श्योजीराम पाटनी की प्रेरणा से सवत् 1841 मे निबद्ध पण्डित उत्तमचन्द द्वारा त्रिलोकसार भाषा मे लिखी गई प्रशस्ति—

सवत् अष्टादश सन इकतालीस अधिकानि।
ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वादशी रविवार परमानि ।।
त्रिलोकसार भाषा लिख्यो उत्तिमचन्द विचारि।
भूल्यो हाउं तो कछु लीज्यो सुकवि सुधारि ।।
दीवान श्योजीराम पट्ट कियो हृदय में ज्ञान।
पुस्तक लिखाय श्रवण लूणं राखो निस दिन ध्यान।।

—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की
ग्रन्थ सूची, भाग 3, पृष्ठ संख्या 43

कविवर बालचन्द एवं उनके वश का परिचय—

नगर सवाई जयपुर जानि, ताकि महिमा अधिक प्रवानि।
जगतसिंह जह राज करेह, गोत कुछाहा सुन्दर देह ।।6।।
देस देस के आवे जहां, भांति भांति की बस्ती तहां।
जहां सरावग बसं अनेक, कंईक कं घर माहि विवेक ।।7।।
तिन में गोत छाबड़ा मांहि, बालचन्द दीवान कहांहि।
ताके पुत्र पांच गुणवान, तिन में दोय विख्यात महान ।।8।।

---

1. जैन संदेश शोधांक–30।

जयचन्द रायचन्द है नाम, स्वामी धर्मवती कीने नाम।
राजकाज में परम प्रवीन, सधर्म ध्यान में बुद्धि प्रवीन ।।9।।
संघ चलाय प्रतिष्ठा करी, सब जग में कीर्ति विस्तारी।
और अधिक उत्तम नरि कहा, रायचन्द संगही पद लहा ।।10।।
सुत दीवान जयचन्द के पांच, सबकी धरम करम में सांच।
तब रुचि उपजी यह मन मांहि, वीर चरित की भाषा नांहि ।।11।।
जो याकी अब भाषा होय, तौ पावै समुझै सहु कोय।
यह विचार लखि के बुधिवान, पण्डित केशरीसिंह महान ।।12।।

—वर्धमान पुराण भाषा—पण्डित केशरीसिंह
रचनाकाल संवत् 1873

□

अध्याय 8

साहित्य सृजन में योगदान

खण्डेलवाल जैन समाज साहित्य निर्माण, लेखन एवं उसकी सुरक्षा में प्रारम्भ से ही जागरूक रहा है। इस समाज ने इस तथ्य को जान लिया था कि जिस समाज का साहित्य जिन्दा है वही समाज जिन्दा कहलाता है। इसलिये जब से आचार्यों एवं कवियों ने कृतियो के अन्त में अपनी जाति विशेष का उल्लेख करना प्रारम्भ किया है वहीं से इस समाज के आचार्यों एवं कवियों की रचनाये मिलने लगती है। आज राजस्थान ही एक ऐसा प्रदेश है जहां के शास्त्र भंडारो में तीन लाख से भी अधिक पाण्डुलिपियां सुरक्षित है। इन पाण्डुलिपियो के संग्रह, लेखन एव सुरक्षा में सरावगी समाज का सबसे अधिक योगदान है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश की प्राचीनतम कृतियो के लेखन में भी उसने सबसे अधिक रुचि ली है। प्रस्तुत अध्याय में हम ऐसे आचार्यों एव कवियो तथा पंडितो का जीवन परिचय दे रहे है जिनका इस क्षेत्र मे विशेष योगदान रहा है।

1. एलाचार्य

एलाचार्य चित्रकूट निवासी थे तथा आचार्य वीरसेन के विद्या गुरु थे। चित्रकूट खण्डेलवाल जैन समाज का केन्द्र था। जो भी खण्डेलवाल जैन सन्त लेखन में आगे बढ़े उन्होंने चित्रकूट को अपना केन्द्र बनाया था। इसलिये एलाचार्य भी खण्डेलवाल जैन ही होंगे ऐसी पूरी सभावना है। एलाचार्य प्राकृत भाषा के भारी विद्वान् थे। आचार्य वीरसेन का विद्या गुरु होना ही पर्याप्त है।

2. आचार्य वीरसेन

वीरसेना-चार्य प्राकृत के महान् पंडित थे। इन्होने षट्खण्डागम पर धवला एव जयधवला, महाधवला, टीकायें लिख कर जैन जगत का महान् उपकार किया। आचार्य वीरसेन का समय ईस्वी सन् 816 का है। इन्होंने चित्तोड़ मे एलाचार्य के पास शिक्षा प्राप्त की थी इसीलिये वे ही इनके विद्या गुरु थे। वीरसेन किस जाति के थे इस सबंध में उनके द्वारा रचित ग्रंथ मौन है। लेकिन इनके शिष्य आचार्य जिनसेन

ने अपने गुरु के सम्बन्ध में जो परिचय दिया है वह इनके विशाल पांडित्य को बतलाने के लिये पर्याप्त है। आचार्य जिनसेन भी इनकी जाति के संबंध में मौन है। लेकिन इतना लिखा है कि एलाचार्य के पादमूल में बैठकर चित्तौड़ में ही सकल सिद्धान्तो का अध्ययन करके निबधनादि आठ अधिकारो को लिखा। हमारे अनुमान से तो आचार्य वीरसेन भी खण्डेलवाल जैन जाति के भूषण थे। क्योंकि जिस समय आचार्य ने शिक्षा प्राप्त की थी उस समय चित्तौड़ खण्डेलवाल जैनो का मुख्य केन्द्र था।

3. आचाय पदमनन्दि

आचार्य पदमनन्दि ने अपने ग्रंथ जबूद्वीपप्रज्ञप्ति मे बारा नगर का अच्छा वर्णन किया है। बारा नगर के बाहर नशिया मे इनके चरण चिह्न भी मिलते है जो इनकी स्मृति मे निर्मापित किये गये थे। ये भी सभवतः खण्डेलवाल जैन थे। और बारा मे ही रहा करते थे। इनकी जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति एवं धम्मरसायण ये दो ग्रन्थ उपलब्ध होते है। इनका समय विक्रम सवत् 1100 का है।

4. आचार्य जयसेन

आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय पर तात्पर्य वृत्ति नाम से संस्कृत मे टीका लिखने वाले आचार्य जयसेन द्वारा प्रतिष्ठित एक पाषाण प्रतिमा अलवर (राजस्थान) के दिगम्बर जैन अग्रवाल पंचायती में विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा काल सवत् 1144 का है। इससे जयसेनाचार्य के काल का निश्चय हो जाता है। जयसेन मुनि बनने के पूर्व साधु गोत्र के श्रावक थे। साधु गोत्र खण्डेलवाल जैनो का एक गोत्र रहा था जिसका उल्लेख टोडारायसिंह (राजस्थान) के एव सवाई माधोपुर के यत्र लेख एव प्रतिमा लेख में मिलता है। जयसेनाचार्य की लोकप्रियता सर्वथा विख्यात है। उन्होने इन तीन ग्रंथो पर जिस प्रकार अपनी पाडित्यपूर्ण टीका लिखी वह इनकी अगाध विद्वता का द्योतक है।

5. हरदेव

ये खण्डेलवाल श्रावक थे तथा अल्हण सुत पापा साहु के दो पुत्रों (बहुदेव और पद्मसिह) मे से बहुदेव के पुत्र थे। उदयदेव और स्तंभदेव इनके छोटे भाई थे। महापडित आशाधर ने इन्ही की विज्ञप्ति से अनगारधर्मामृत की भव्यकुमुदचद्रिका टीका संवत् 1300 मे लिखकर समाप्त की थी।[1]

---

1. **जैन साहित्य और इतिहास—पृष्ठ संख्या 141**

6. केल्हण

ये खण्डेलवाल जैन जातीय श्रावक थे तथा इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के अनेक प्रतिष्ठायें करवाकर प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन्होंने महापडित आशाधर कृत जिन-यज्ञकल्प का खूब प्रचार प्रसार किया था। जिनयज्ञ कल्प की प्रथम प्रति इन्होंने ही लिखने का श्रेय प्राप्त किया था।[1]

7. धोनाक[2]

ये भी खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे। इनके पिता का नाम महण और माता का नाम कमलश्री था। इन्होने महापंडित आशाधर के त्रिषस्टिस्मृतिशास्त्र की सबसे पहली प्रति लिखी थी।

खाडिल्यवंशे महणकमलश्रीसुतः सुहृत्।
धोनाको वर्धतां येन, लिखितास्याद्य पुस्तिका ॥14॥

8. नागदेव

सलखणपुर में मल्ह के पुत्र नागदेव रहते थे। वही पर खण्डेलवाल कुल-भूषण, विषय विरक्त, भव्यजनबांधव, केशव के पुत्र इन्दुक या इन्द्रचन्द्र रहते थे, जो जिनधर्म के धारक थे और जिन भक्ति में तत्पर तथा संसार से उदासीन रहते थे। उन्होने नेमिजिन की स्तुति कर भव्य नागदेव को शुभाशीष दिया था।[3]

9. तेजपाल

तेजपाल राजस्थानी विद्वान् थे। ये छावड़ा गोत्रिय खण्डेलवाल जैन थे। अपभ्रंश भाषा में काव्य निबद्ध करने को और इनकी विशेष रुचि थी। ये मूलसघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय के थे। कवि ने अपना परिचय देते हुये लिखा है कि वासनपुर नामक गाव से 'साबडह' वश मे अर्थात् छाबड़ा गोत्र मे जाल्हड नाम के एक साहू थे। उनके पुत्र का नाम सुजड साहू था। वे दयावंत एव जिन धर्म मे अनुरक्त थे। उनके चार पुत्र थे। रणमल, बल्लाल, ईसरू और पोल्हणु, ये चारो ही भाई खण्डेलवाल जाति के भूषण थे। रणमल साहू के पौत्र एव ताल्हुय के पुत्र साहु हुये और उनके तेजपाल हुये और इस प्रकार तेजपाल खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न छाबड़ा गोत्रिय श्रावक थे और अपभ्रंश के अच्छे कवि थे। तेजपाल की अब तक तीन कृत्तिया उपलब्ध हो चुकी

---

1. जैन साहित्य और इतिहास—प० नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 146
2. वही
3. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रंथ

है जिनके नाम पासणाह चरिउ (संवत् 1515) सम्भवणाह चरिउ (संवत् 1500) एवं वरांग चरिउ।

10. छीतर ठोलिया

छीतर ठोलिया मोजमाबाद के निवासी थे। उनकी जाति खण्डेलवाल एव गोत्र ठोलिया था। इनकी एक मात्र रचना होली की कथा संवत् 1660 की कृति हैं। जिसमें उन्होने अपने ही ग्राम मोजमाबाद मे निबद्ध की थी। उस समय नगर पर आमेर के महाराजा मानसिंह का शासन था।

11. ठक्कुरसी

पं० ठक्कुरसी राजस्थान के ढूंढाहड क्षेत्र के कवि थे। वे चम्पावती (चाकसू) के रहने वाले थे। कविराज खण्डेलवाल जैन जाति में पहाड़िया गोत्र के श्रावक थे। कवि व्यापारी थे तथा अर्थ से सम्पन्न थे। ठक्कुरसी ने पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी में चम्पावती नगरी का जो वर्णन लिखा है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा वहाँ जैन संस्कृति का बहुत जोर था। कवि की अब तक 15 रचनायें प्राप्त हो गई है। जिनमे मेघमाला कथा, कृपण छन्द, पार्श्वनाथ शकुन, सत्तावीसी, पञ्चेन्द्रिय वेलि के नाम उल्लेखनीय है।[1]

12. शाह ठाकुर कवि

ठाकुर कवि का खण्डेलवाल जाति एवं लुहाडिया गोत्र था। वे साहु सील्हा के पौत्र एव साहु खेता के पुत्र थे। कवि अत्यधिक विद्याव्यसनी थे तथा कविता करने मे उन्हे आनन्द आता था। उनकी पत्नी रमाई भी साधुओ एव श्रावको का पोषण करने मे रुचि लेती थी।

शाह ठाकुर कवि के अभी तक महापुराण कलिका एवं शातिनाथ पुराण ये दो रचनाये प्राप्त हो चुकी है। शांतिनाथ पुराण की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय भण्डार मे है। इस कृति मे कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया—

संवत सोलासई सुभग साहनि, बावन वरिसउं ऊपरि विसाधि।
भादव सुदि पंचमि सुभग वारि, दिल्ली मडलु देसह मझारि।।
अकबर जलालदी पातिसाहि, वारइ तहु राजा मानसाहि।
कूरम बसि आंबेरि सामि, ढूंढाहड देसह सोभिराम।।

---

1. **विशेष परिचय के लिये देखिये—कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि—लेखक डॉ० कासलीवाल।**

13. डूंगा बैद

कवि डूंगा मालपुरा का रहने वाला था। उसका गोत्र बैद था। संवत् 1699 में आपने श्रेणिक चौपाई की रचना समाप्त की थी।[1]

14. मन्ना साह

मन्ना साह 17वी शताब्दी के विद्वान थे। राजस्थान के ये किस प्रदेश को सुशोभित करते थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता। अभी तक इनकी दो कृतियाँ मान बावनी एव लघु बावनी उपलब्ध है। दोनो ही अपने ढंग की अच्छी रचनायें हैं। कवि का दूसरा नाम मनोहर भी मिलता है। ये साह गोत्रीय खण्डेलवाल श्रावक थे।

15. टीकम

टीकम 18वी शताब्दी के प्रथम चरण के कवि थे। ये ढूढाड़ प्रदेश के कालख ग्राम के निवासी थे। इन्होंने सवत् 1712 में चतुर्दशी चौपई की रचना की। रचना इसी ग्राम के जिन मन्दिर मे समाप्त की थी। इससे पूर्व लिखित श्रेणिक चौपई (रचना सवत् 1709) एवं साह मनोहर की चौपई (रचना काल संवत् 1708) और प्राप्त हुई है। दोनो ही रचनायें राजस्थानी भाषा में निबद्ध है। आपकी तीनों ही रचनायें अप्रकाशित है। टीकम कवि खण्डेलवाल जातीय लुहाडया गोत्र के श्रावक थे।

16. खडगसेन

18वी शताब्दी में खडगसेन एक अच्छे कवि हो गये है। वे खण्डेलवाल जैन जातीय पापड़ीवाल गोत्र के श्रावक थे। वह मूलत: नारनोल के थे वही उनका जन्म हुआ था। कवि ने अपने वंश का निम्न प्रकार परिचय दिया है—
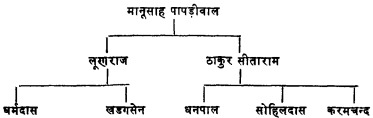
1. ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ—पृष्ठ संख्या 249।

इस प्रकार खडगसेन मानूसाह के पौत्र एवं लूणराज के पुत्र थे । कवि का लाभपुर (लाहौर) जाना-ग्राना होता रहता था । वहाँ एक गोष्ठी थी जिसमे वे जाते ग्राते रहते थे । उस गोष्ठी में सभी की इच्छा तीन लोक के ग्रकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करने की हुई । ग्रपने साधर्मी बन्धुग्रो के ग्राग्रह से खडगसेन ने संवत् 1713 में त्रिलोक दर्पण की रचना समाप्त की । कवि की ग्रब तक निम्न रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं लेकिन सभी कृतियाँ ग्रप्रकाशित है—

1. त्रिलोक दर्पण कथा रचनाकाल संवत् 1713
2. हरिवंश पुराण भाषा
3. सहस्रगुणी पूजा
4. धर्मचक्र पूजा

17. हेमराज

हेमराज नाम के एक ही शताब्दी में एक ही समय मे 4 कवि हो चुके है । हेमराज गोदीका मूलत: सांगानेर निवासी थे ग्रौर ये जोधराज गोदीका के भाई थे लेकिन दोनो भाइयो मे विचार भिन्नता होने के कारण हेमराज सांगानेर छोड़ कर कामां जाकर रहने लगे । हेमराज की ग्रब तक तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है । जिनके नाम प्रवचन सार भाषा, उपदेश दोहा शतक एवं गणित सार सग्रह है । कवि ने प्रवचन सार भाषा को सवत् 1724 एव उपदेश दोहा शतक को संवत् 1724 मे निबद्ध किया था । कामां मे उस समय ग्रध्यात्म शैली थी जिसमे प्रवचनसार की चर्चा स्वाध्याय होती थी । कवि ने ग्रपना परिचय देते हुये लिखा है—

सांगानेर सुथान को हेमराज बसवान ।
ग्रब ग्रपनी इच्छा सहित, बसै कामांगढ ग्रान ।।92।।

कामांगढ सुखसुं बसइ, ईति भीति नही थाय ।
कवित बंध प्रवचन कीया, पूरन वहां बनाय ।।93।।

18. हरिराम

हरिराम उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले के बिलारी ग्राम के निवासी थे । इनके पिता का नाम सुखदेव एवं माता का नाम राजमती था । इन्होने संवत् 1778 वैशाख शुक्ला 2 गुरुवार को हरिवंश पुराण को छन्दो बद्ध किया था । रचना बहुत सुन्दर है ।

19. रामचन्द्र पाण्ड्या

सीताचरित्र को छन्दोबद्ध रचना करने वाले श्री रामचन्द्र पाण्ड्या थे । सीताचरित्र हिन्दी की बहुचर्चित कृति है जिसे कवि ने सवत् 1773 मार्गशिर

शुक्ला 3 को समाप्त किया था। आपकी एक कृति और है वह है सद्भाषितावली जो संवत् 1794 की रचना है।

20. जोधराज गोदीका[1]

जोधराज सांगानेर के सम्पन्न श्रावक थे। गोदीका उनका गोत्र था। उनके पिता का नाम अमरसिंह था जो अमरा भौसा के नाम से प्रसिद्ध थे। सांगानेर में तेरहपथ की नीव रखने वाले ये अमरसिंह थे। इनके पुत्र जोधराज अच्छे विद्वान थे। जोधराज स्वय ने अपने को अमर फल लिखा है। जोधराज स्वय पण्डित थे तथा ग्रन्थ लेखन मे पूर्ण रुचि रखते थे। अब तक इनके द्वारा रचे हुये निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके है—

1. कथा कोष	रचना काल सवत्	1722
2. धर्म सरोवर	,, ,,	1724
3. सम्यक्त्व कौमुदी	,, ,,	1724
4. प्रीतिकर चरित्र	,, ,,	1739
5. प्रवचनसार	,, ,,	1726
6. भाव-दीपिका		

21. देवीसिंह छाबड़ा

देवीसिंह छाबडा 18वी शताब्दी के कवि थे। उनका संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी तीनों ही भाषाओं पर अधिकार था। जयपुर राज्य मे स्थित नरवर नगर कवि की जन्म भूमि था। इनके पिताजी का नाम जिनदास था। देवीसिंह ने माधोदास गोलालारे के आग्रह से सवत् 1796 भादवा बुदी 11 को उपदेश सिद्धान्त रत्न-माला को भाषा मे लिख कर समाप्त किया था। कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

> श्री जिनदास तनुज लघु भाषा, खण्डेलवाल सावडा साखा।
> देवोस्यंघ नाम सब भाखें, कवित्त मंगहि चिता मनि राखे॥
>
> × × ×
>
> सत्रहसे बहू छएनवें, संवत बिक्रमराज।
> भादव बुदी एकादशी, शनि दिन सुविधि समाज॥166॥
> ग्रंथ कियो पूरन सुविधि, नरवर नगर मझार।
> जो समझै याको अरथ, तै पावें भवपार॥167॥

---

1. देखिये प्रशस्ति संग्रह, सम्पादक—डॉ० के. सी. कासलीवाल।

22. भट्टारक विजयकीर्ति

भट्टारक विजयकीर्ति अजमेर गादी के भट्टारक थे। वे जन्मना खण्डेलवाल जाति के थे तथा उनका पाटणी गोत्र था। विजयकीर्ति बड़े भारी विद्वान् एवं साहित्य निर्माता थे। उन्होंने श्रेणिक चरित्र को संवत् 1820 फागुण बुदी 7 को समाप्त किया था। श्रेणिक चरित्र के अतिरिक्त उनकी और भी कृतियाँ मिलती है जिनमें जम्बूस्वामी चरित्र का नाम उल्लेखनीय है।

23. रामचन्द्र बज

रामचन्द्र बज आमेर निवासी थे तथा पिरागदास बज के पुत्र थे। इनके द्वारा लिखा हुआ श्रावकाचार ग्रन्थ मिलता है। इसका रचनाकाल संवत् 1779 आषाढ़ कृष्णा 9 है।

24. महाकवि दौलतराम कासलीवाल

दौलतराम कासलीवाल बसवा (जयपुर) के रहने वाले थे। इनके पिता आनन्दराम जयपुर रियासत के उच्च अधिकारी थे। दौलतराम का जन्म संवत् 1749 में आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन हुआ था। इनका जन्म नाम बेगराज था। इनकी प्रारम्भ से ही लेखनी में रुचि थी। एक बार इन्हे आगरा जाने का अवसर मिला। वहाँ विभिन्न विद्वानो से मिलने, चर्चा करने एव अपने आपको साहित्य सृजन मे लगाने की प्रेरणा मिली। इनमें कविवर भूधरदास प्रमुख थे। इन्होने वही पर संवत् 1777 मे सर्वप्रथम पुण्यास्रव कथाकोष की रचना समाप्त की। उस समय उनकी आयु मात्र 28 वर्ष की थी। इसके पश्चात् वे जयपुर राज्य की सेवा मे आ गये और इनकी प्रतिभा को देखकर इन्हें जयपुर राज्य का वकील (प्रतिनिधि) बनाकर उदयपुर भेजा गया। दौलतराम जी को अपनी साहित्यिक प्रतिभा को चमकाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और फिर एक के पश्चात् दुसरी कृति लिखना प्रारम्भ किया। अध्यात्म बारहखड़ी, श्रेणिक चरित्र, जीवन्धर चरित, विवेक विलास, त्रेपन क्रिया-कोष जैसी रचनाये लिखकर उन्होने एक कीर्तिमान स्थापित किया। जयपुर आने के पश्चात् महाकवि पण्डित टोडरमल जी के सम्पर्क में आये तथा पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण जैसे पुराण ग्रन्थो को हिन्दी गद्य में लिखकर समस्त जैन जगत की लोकप्रियता प्राप्त की। महापडित टोडरमल जी द्वारा अधूरे छोड़े गये ग्रन्थ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय की भाषा वचनिका पूरी की। दौलतराम ने अपने जीवन मे 17 रचनायें लिखने का सौभाग्य प्राप्त किया। कवि की सबसे बड़ी विशेषता थी कि उनका जीवन पूर्णतः साहित्यिक था।

किसी की निन्दा अथवा प्रशंसा करना, सामाजिक झगड़ों में पड़ना, भट्टारकों के विरोध में बोलना आदि से वे बहुत दूर रहते थे।

दौलतराम जी के 6 पुत्र थे। इनमें एक पुत्र जोधराज कासलीवाल कामां में रहते थे और वहीं रहते हुए सुखविलास नामक एक बृहद् संग्रह ग्रन्थ की रचना की थी। महाकवि का निधन संवत् 1829 के पश्चात् किसी समय हुआ था। महाकवि पर समस्त जैन समाज को गर्व है।

25. पण्डित जगन्नाथ

पोमराज श्रेष्ठि के पुत्र पण्डित जगन्नाथ तक्षकगढ (वर्तमान नाम टोडारायसिंह) के रहने वाले थे। ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनके भाई वादिराज भी संस्कृत के बड़े भारी विद्वान थे। पण्डित जगन्नाथ की अब तक 6 रचनायें उपलब्ध हो चुकी है जिनमे चतुर्विशति संधान स्वोपज्ञ टीका, सुख निधान, सुषेणचरित, नमिनरेन्द्र स्तोत्र, कर्मस्वरूप वर्णन के नाम उल्लेखनीय है। सभी रचनायें संस्कृत भाषा की अच्छी रचनायें है। ये खण्डेलवाल जातीय एवं सोगानी गोत्र के श्रावक थे।

26. वादिराज

ये खण्डेलवाल वंशीय, सोगानी गोत्रीय श्रेष्ठि पोमराज के दूसरे पुत्र थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे तथा राजनीति मे भी पटु थे। वादिराज ने अपने आपको धनंजय, आशाधर और बाणभट्ट का पद धारण करने वाला दूसरा बाणभट्ट लिखा है। वहां के राजा राजसिंह को दूसरा जयसिंह तथा तक्षक नगर को दूसरे अणहिलपुर की उपमा दी है।

धनंजयाशाधरवाग्भटानां धत्ते पद सम्प्रति वादिराजः।
खांडिल्लवंशोद्भव पोमसूनु, जिनोंक्तिपीयूष सुतृप्तगात्रः ॥

वादिराज तक्षकनगर के राजा राजसिंह के महामात्य थे। राजसिंह भीमसिंह के पुत्र थे। वादिराज के चार पुत्र थे—(1) रामचन्द्र, (2) लालजी, (3) नेमिदास और (4) विमलदास।

वादिराज की तीन कृतियां मिलती हैं—एक है वाग्भटालंकार की टीका कविचन्द्रिका, दूसरी रचना ज्ञानलोचनस्तोत्र तथा तीसरी सुलोचना चरित्र है। कविचंद्रिका को इन्होंने संवत् 1729 को दीप-मालिका के दिन समाप्त की थी। कवि 18वीं शताब्दी के प्रथम चरण के विद्वान थे।

27. भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक जगतकीर्ति के शिष्य थे। संवत् 1770 की माह बुदि 11 को आमेर मे इनका पट्टाभिषेक हुआ था। उस समय आमेर अपने पूर्ण वैभव पर था और महाराजा सवाई जयसिंह उसके शासक थे। ये करीब 22 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहे। इन्होने समयसार पर एक संस्कृत टीका ईसरदा (राज.) मे संवत् 1788 मे समाप्त की थी। देवेन्द्रकीर्ति ने राजस्थान एवं विशेषत: ढूंढाड प्रदेश में विहार करके साहित्य का अच्छा प्रसार किया था। ये साह गोत्रीय नवल साह के पुत्र थे।

28. किशनसिंह

किशनसिंह के पिता कल्याणमल पाटनी अलीगढ़ रामपुरा जिला टौंक के प्रतिष्ठित श्रावक थे। इन्होने अलीगढ़ (रामपुरा) मे एक विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराया। किशनसिंह के छोटे भाई का नाम आनन्दसिंह था। किशनसिंह ने सांगानेर मे रहते हुए अपने सभी ग्रन्थो का निर्माण किया। अब तक कवि की निम्न रचनायें प्राप्त हो चुकी है—

1. णमोकार रास
2. चौबीस दण्डक
3. पुण्यास्रव कथा-कोष
4. भद्रबाहु चरित्र
5. त्रेपन क्रिया-कोष
6. लब्धि विधान-कथा
7. निर्वाण-काण्ड भाषा
8. चतुर्विंशति स्तुति
9. चेतन गीत
10. चेतन लौरी
11. पद संग्रह

29. दिलाराम पाटनी

दिलाराम का दूसरा नाम दौलतराम था। ये बूंदी के रहने वाले थे तथा एक सम्पन्न जैन खण्डेलवाल परिवार मे उनका जन्म हुआ था। इनका गोत्र पाटनी था। इनके प्रपिता का नाम साह धनपाल तथा पिता का नाम बसुभुंज था। कवि के पूर्वज अपने बुद्धि-बल एवं शासन दक्षता के लिए विख्यात थे तथा बूंदी आने से

पहले टोडारायसिंह रहा करते थे। बूंदी के नरेश राव रतन हाड़ा (विक्रम सम्वत् 1665–1688) ने जब इनकी योग्यता की प्रशंसा सुनी तो उन्होंने उनको अपने राज्य में आने का निमन्त्रण दिया और उसी के अनुसार कवि के पूर्वज टोडरायसिंह छोड़कर बूंदी आकर रहने लगे। कवि ने अपने दिलाराम विलास में इसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

बंस विपुल आदर सहित ल्याये रतन नरेश।
सो कवि कुल बंसावली बर्णन करत सुदेश।।
सो वर्णन संक्षेप सो दस पीढ़ी मध्य वारि।
टोडे प्रथम विचारी पुनि बद् बूंदी मध्य धारि।।

कवि का जन्म कब हुआ तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई इसका उनकी रचनाओं में कोई वर्णन नही मिलता किंतु दिलाराम विलास को उन्होने संवत् 1768 मे विजयादशमी के दिन समाप्त किया था।

सतरासो अठसठ समौ दसमी विजै कुमार।
लगन महूरत बार सुभ भयं ग्रंथ तत सार।।

उस समय बूंदी पर राव राजा बुद्धसिह (सवत् 1762–1796) का शासन था।

कवि प्राकृत संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। उनकी रचनाओं से अनुमान लगता है कि वे प्रतिभाशाली कवि थे। अब तक इनके व्रतविधान रासो, दिलाराम विलास एव कितने ही पद प्राप्त हो चुके है। व्रतविधान रासो में कवि ने जैनों मे किये जाने वाले 161 व्रतो के नाम गिनाये है तथा उनके करने की विधि एवं कहीं-कहीं पर तिथियां भी दी हैं। इसमे कुल 281 पद्य है तथा 161 व्रतों का वर्णन किया गया है। यह रचना सवत् 1768 मे हुई थी।

कवि ने कितने पद लिखे यह तो अभी खोज का विषय है लेकिन दिलाराम विलास में उनके करीब 100 पद है। ये सभी पद अनेक राग-रागनियों में है। सभी पद भक्ति एवं अध्यात्म रस से ओत-प्रोत है।

30. कविवर भूधरदास

18वीं शताब्दी में होने वाले जैन कवियों में कविवर भूधरदास का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। उनके द्वारा रचित पार्श्व-पुराण, जैन शतक एव भूधर विलास हिन्दी भाषा की उत्तम रचनाये मानी जाती है। ये आगरा के रहने वाले थे तथा खण्डेलवाल

जैन जाति में उत्पन्न हुये थे।[1] लेकिन उन्होंने अपने गौत्र का उल्लेख नहीं किया। जैन शतक को उन्होंने संवत् 1781[2] में तथा पार्श्व-पुराण को संवत् 1789 में समाप्त किया था। उनके हिन्दी पद आध्यात्मिक रस से ओत-प्रोत होते है तथा समाज में उनको लोकप्रियता प्राप्त है। उनके जैन शतक में 107 छन्द हैं तथा पार्श्व-पुराण आठ सर्गों मे विभक्त हिन्दी का अच्छा काव्य है। उनके द्वारा रचित पदों की संख्या 80 से भी अधिक है।

31. दीपचन्द कासलीवाल

पण्डित दीपचन्द भी उन राजस्थानी विद्वानो में से है जिन्होने राजस्थानी गद्य निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। वे खण्डेलवाल जाति के कासलीवाल गोत्र में जन्मे थे। अतः कई स्थानों पर उनका नाम दीपचन्द्र कासलीवाल भी मिलता है। ये पहले सांगानेर में रहते थे किन्तु बाद मे आमेर आ गये थे। ये स्वभाव से सरल, सादगी प्रिय और अध्यात्म चर्चा के रसिक विद्वान थे।

आपके द्वारा रचित अनुभव प्रकाश (संवत् 1781), चिद्विलास (संवत् 1779), आत्मावलोकन (सवत् 1774), परमात्म प्रकाश, ज्ञान दर्पण, उपदेश रत्न-माला और स्वरूपानन्द नामक ग्रन्थ है।

32 नेमीचन्द

नेमीचन्द आमेर निवासी थे तथा भट्टारकीय परम्परा के कवि थे। यह खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न सेठी गोत्रीय श्रावक थे। नेमीचन्द अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना मे लगाया करते थे। नेमीचन्द के छोटे भाई का नाम झगडू था। इनके दो प्रमुख दो शिष्य थे–डूंगुरसी और रूपचद। अब तक इनकी निम्नलिखित रचनाये प्राप्त हो चुकी है—

1. प्रीतिंकर चौपई (संवत् 1771)
2. नेमिसुर राजमती की लुहरि
3. चेतन लुहरि
4. जीव सम्बोधन लुहरि

---

1. आगरे में बालबुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
   बाल के ख्याल सौ कवित्त कर डाले हैं।
2. सतरहसै इक्यासिया पोह् मास तमलीन।
   तिथि तेरस रविवार को, सतक समपत कीन।

5. जीव लुहरि
6. विशालकीर्ति को देहुरो
7. जखड़ी
8. कडखो
9. नेमिसुर को गीत
10. पद सग्रह
11 नेमिश्वर राम [(हरिवश पुराण) (संवत् 1769)]

33. खुशालचन्द्र काला

काला गोत्रीय खुशालचन्द के पिता का नाम सुन्दरदास तथा माता का नाम सुजानदे था। खुशालचन्द की प्रारम्भिक शिक्षा उनके जन्म स्थान जयसिंहपुरा (जिहानाबाद, देहली) मे हुई। कालान्तर मे भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के साथ वे सांगानेर श्रा गये। यहाँ लक्ष्मीदास चादवाड से कवि ने शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया श्रौर फिर वापिस जयसिंहपुरा चले गये। खुशालचन्द ने अपनी अधिकाश रचनाये यही लिखी। रचनाये जैन पुराणो के श्राधार पर लिखी गई है इनकी अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है—

1. हरिवश पुराण (सवत् 1780)
2. यशोधर चरित्र
3. पद्म पुराण
4 व्रत कथा-कोष (सवत् 1787)
5. जम्बूस्वामी चरित्र
6. उत्तर पुराण (सवत् 1799)
7. सद्भाषितावली
8. धन्यकुमार चरित्र
9. वर्द्धमान पुराण
10. शांतिनाथ पुराण
11. चौबीस महाराज पूजा

उक्त सभी रचनाये भाषा एवं काव्य-कला की दृष्टि से अच्छी रचनायें हैं तथा अप्रकाशित है।

34. लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास चांदवाड गोत्रीय कवि थे। सांगानेर में रहते थे तथा श्रामेर गादी के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति का इनको विशेष आशीर्वाद प्राप्त था। जब इनको महाराज

यशोधर के जीवन पर हिन्दी में काव्य लिखने की इच्छा हुई तो कवि ने भट्टारक सकलकीर्ति एवं पद्मनाभ कायस्थ द्वारा रचित यशोधर चरित का अध्ययन किया और फिर संवत् 1781 में हिन्दी में यशोधर चरित की रचना की। यह एक अच्छा काव्य है जिसकी प्रति जयपुर के शास्त्र भण्डारो में उपलब्ध होती है।

35. महापण्डित टोडरमल

टोडरमल जी पण्डित ही महापण्डित थे। ये खण्डेलवाल जैन जाति के रत्न थे। उनका गोत्र गोदीका था लेकिन उनकी इतनी प्रसिद्धि थी कि उनको अपने नाम के आगे गोत्र आदि लगाने की आवश्यकता नही थी। हाँ, महापण्डित के नाम से वे अवश्य जाने जाते थे। टोडरमल जी का बाल्यकाल जोबनेर में बीता था क्योंकि वही पर संवत् 1793 में उनके पठनार्थ सामुद्रिक पुरुष लक्षण की एक प्रति लिखी गई थी जो वर्तमान में अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे संग्रहित है।[1]

पण्डित जी का अधिकाश जीवन जयपुर मे व्यतीत हुआ। इनका व्यक्तित्व इतना प्रभावक था तथा प्रवचन की शैली इतनी आकर्षक एवं सुरुचि पूर्ण थी कि दूरस्थ गाँवों के निवासी केवल इनके दर्शन करने आते थे। भाई रायमल जी स्वयं विद्वान थे, पण्डित जी के गहरे प्रशंसक थे तथा उनको गोम्मट-सार जैसे ग्रन्थो की विस्तृत भाषा बचनिका लिखने की प्रेरणा दिया करते थे।

कुछ वर्षों तक सिघाना में रहने के पश्चात् जब ये जयपुर आये तो वहाँ के समाज ने इनको आँखों पर उठा लिया तथा तेरहपंथी श्रावक इनके पूरे भक्त बन गये। यद्यपि पण्डित टोडरमल जी ने अपने ग्रन्थो मे किसी की निन्दा अथवा प्रशंसा नही की है लेकिन उस समय समाज मे जो व्यक्ति भट्टारको के विरोधी थे वे इनके भक्त बन गये और तेरहपथ बीसपथ के नाम से समाज दो भागो मे विभक्त हो गया। भट्टारको के प्रशंसक बीस पंथी कहलाने लगे तथा उनके विरोधी तेरह पंथी। समाज में दो सशक्त संगठन बन गये और एक दूसरे के कट्टर विरोधी बन गये। टोडरमल जी के समय मे ही जयपुर मे "इन्द्रध्वज विधान" का विशाल आयोजन हुआ जिसमे हैजारो बन्धुओ ने भाग लिया।

टोडरमल जी के समय में जयपुर में साम्प्रदायिकता का नंगा नाच होता था। जैन मन्दिरो को दिन-दहाड़े विध्वंस कर दिया गया था एवं समाज मे भयकर फूट थी। शैव धर्मावलम्बी जैनियों के कट्टर विरोधी हो गये थे। मन्दिरो को लूटना तथा उनमें शिवजी की मूर्ति स्थापित करना उनका स्वभाव बन गया था। पण्डित बख्तराम साह ने अपने बुद्धि विलास मे इसका बहुत स्पष्ट वर्णन किया है।

---

1. रा० जै० शा० भ० ग्रन्थ सूची, पंचम भाग, पृष्ठ सख्या 1025।

साम्प्रदायिक उत्पात में महापण्डित टोडरमल जी को अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा। जयपुर महाराजा ने उनको बिना किसी कारण हाथी के पैर के नीचे कुचला कर मरवा दिया। उस समय टोडरमल जी की आयु केवल 47 वर्ष थी। टोडरमल जी का पूरा सामान जब्त कर लिया। उनके सामान की एक लिस्ट महावीर जयन्ती स्मारिका मे प्रकाशित हो चुकी है।

टोडरमल जी पश्चात् जयपुर मे पण्डितो का तांता लग गया। पण्डित दौलतमल, पण्डित जयचन्द जी छाबडा, पण्डित बख्तराम साह, पण्डित ऋषभदास निगोत्या, पण्डित पारसदास निगोत्या, पण्डित गुमानीराम, पण्डित बुधजन, पण्डित सदासुख कासलीवाल के नाम उल्लेखनीय है। सभी पण्डितगण खण्डेलवाल जैन समाज के प्रमुख अंग थे तथा उनकी चारों ओर ख्याति फैली हुई थी।

36. सुखराम रावकां

मादवा निवासी सुखराम रावकां 18वी शताब्दी के कवि थे। मारोठ (राज०) के शास्त्र भण्डार मे उनके स्वय के हाथ लिखी हुई रचनाये एक गुटके में संग्रहित थे। इनकी प्रथम रचना "जात्रासार" है जिसमे गिरनार जी एवं तारंगा क्षेत्र की यात्राओ का वर्णन है। यात्रा संवत् 1829 से पूर्व की थी। कवि द्वारा सम्पन्न तीर्थ यात्रा मे और भी व्यक्ति सम्मिलित थे। जिनका वर्णन कवि ने निम्न प्रकार किया है—

> साह धर्मसी के सुतन पांच जणा उमगाया।
> पतमल खोजा जेतमल तृतीय सुखहरखाया।।
> मुक्ताफल चउथा मिल्या, पांच जणा जेह।
> पांच मिनाव साथ लीया, तास्यो घणो सनेह।।
> यो हरचन्द बड़जातियो, सूरत नेता जांनि।
> व्यास डालू ने संग लीयो, हरियो प्रोहित नांव।।

इसके पश्चात् कवि ने सम्मेद शिखर की यात्रा की थी। वे संवत् 1830 को मादवा (राजस्थान) से रवाना हुये थे और संवत् 1831 श्रावण मास के कृष्ण पक्ष मे लौटकर घर आये। इनकी दूसरी रचना एक भक्ति पद एव तीसरी बारह भावना है।

37. नथमल बिलाला
(संवत् 1822)

नथमल बिलाला यद्यपि मूल निवासी आगरा के थे लेकिन पहले भरतपुर और फिर हिण्डौन आकर रहने लगे थे। इनके पिता का नाम शोभाचन्द्र था।

इन्होंने सिद्धान्त-सार दीपक की रचना भरतपुर में सुखराम की सहायता से तथा भक्तामर स्तोत्र की भाषा हिण्डौन में संवत् 1829 में अटेर निवासी पाण्डे लालचन्द्र की सहायता से की थी। उक्त दोनो रचनाओ के अतिरिक्त कवि की निम्न रचनायें और उपलब्ध हो चुकी हैं—

1. जिनगुण विलांस (रचना संवत् 1822)
2. जीवन्धर चरित (रचनॉ संवत् 1835)
3. नागकुमार चरित्र (रचना संवत् 1834)
4. जम्बूस्वामी चरित्र
5. अष्टाह्लिका कथा

नथमल प्रतिमा सम्पन्न कवि थे। इसलिये इसकी रचनाओं मे सहज भाषा मिलती है। कवि ने सभी रचनाओ को स्वान्तः सुखाय निबद्ध की थी। कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

नन्दन सोभाचन्द को, नथमल अति गुनवान।
गोत बिलाला गगन में, उड्यो चन्द समान॥
नगर आगरो तज रहे, हीरापुर में आय।
करत देखि उग्रसेन को, कीनो अधिक सहाय॥

38. जोधराज कासलीवाल

जोधराज कासलीवाल जयपुर निवासी महाकवि दौलतराम कासलीवाल के सुपुत्र थे। अपने पिता के समान ये भी राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि थे। इनकी एकमात्र कृति सुख-विलास है जिसमें इनकी सभी रचनाओं का सकलन है। इनका यह संकलन संवत् 1884 मे समाप्त हुआ था। उस समय कवि की अन्तिम अवस्था थी। महाकवि दौलतराम के मरने के बाद कवि जोधराज किसी समय कामां चले गये। सुख-विलास मे कवि की गद्य-पद्य मिश्रित दोनो ही तरह की रचनाओ का संग्रह है।

39. थानसिंह

कविवर थानसिंह सांगानेर, जयपुर के थे। उनका गोत्र ठोलिया था।[1] सुबुद्धि प्रकाश की ग्रंथ प्रशस्ति मे इन्होने आमेर, सागानेर तथा जयपुर का अच्छा वर्णन

1. **बस खण्डेलवाल मम गोत, ठोल्या बहुपरिवारी गोत (46)**

किया है। जब इनके माता-पिता जयपुर में अशान्ति के कारण करौली चले गये थे तब भी ये सांगानेर में रहे और वहीं रहते हुये अपनी रचनायें लिखते रहे। इनकी अभी तक दो रचनायें प्राप्त हुई है—रत्न करण्ड श्रावकाचार एवं सुबुद्धिप्रकाश। प्रथम रचना को इन्होंने संवत् 1821 में तथा दूसरी को संवत् 1824 में समाप्त की थी। सुबुद्धिप्रकाश का दूसरा नाम थानविलास भी है। इस में छोटी बड़ी रचनाओं का सग्रह है। दोनों ही रचनायें भाषा एवं वर्णन शैली की दृष्टि से सामान्य रचनाये है। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

40. टेकचंद

टेकचंद 18वीं शताब्दी के राजस्थानी कवि है। इनके पिता का नाम दीपचंद एवं पितामह का नाम रामकृष्ण था जो खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। ये मूलतः जयपुर निवासी थे लेकिन फिर माहिपुरा में जाकर रहने लगे थे। अब तक इनकी 21 से भी अधिक रचनाये उपलब्ध हो चुकी है। इनमें पुण्यास्त्रव कथाकोश (संवत् 1822) पंचपरमेष्टी पूजा, कर्म दहन पूजा, तीन लोक पूजा (सवत् 1828), सुदृष्टि-तरंगिणी (सवत् 1838), व्यसनराज वर्णन (संवत् 1827), पंचकल्याण पूजा, पंचमेरु पूजा, अध्यात्म बारहखडी एवं दशाध्याय सूत्र टीका के नाम से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके पद भी मिलते है जो अध्यात्म रस से ओतप्रोत होते है। पुण्यास्त्रव कथाकोश इनकी वृहद् रचना है। जिसमें 79 कथाओं का सग्रह है। चौपाई एवं दोहा छन्दों में लिखा हुआ है यह एक सुन्दर काव्य है। कवि ने इसे संवत् 1822 में समाप्त किया था।

इनकी सुदृष्टितरगिणी जैन समाज में लोकप्रिय रचना मानी जाती है। इसमें सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र का अच्छा वर्णन हुआ है।

41. सेवाराम पाटनी

सेवाराम पाटनी महापण्डित टोडरमल के समकालीन विद्वान् थे तथा उन्ही के विचारों के समर्थक थे। इनके पिता का नाम मायाचद था। ये पहले दौसा में रहते थे फिर वहा से डीग जाकर रहने लगे। संवत् 1824 मे दौसा मे रहते हुये ही इन्होंने शातिनाथ चरित्र की रचना समाप्त की थी। इसके पश्चात् सवत् 1850 मे इन्होंने डीग मे रहते हुये मल्लिनाथ चरित्र की रचना समाप्त की। उस समय वहां महाराजा रणजीतसिंह का शासन था। प्रस्तुत रचना की मूल पाण्डुलिपि कामा के दिगम्बर जैन मन्दिर में सुरक्षित है।

42. बख्तराम साह

कविवर बख्तराम साह इतिहास सिद्धान्त एवं दर्शन के महान् विद्वान थे। ये भट्टारकीय परम्परा के पंडित थे। इन्होंने मिथ्यात्वखण्डन लिखकर भट्टारक

परम्परा का खुला समर्थन किया। जयपुर नगर के लश्कर का दिगम्बर जैन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था। "बुद्धिविलास" इनकी महत्त्वपूर्ण कृति है। जो इतिहास परक रचना है। कवि ने इसमे तत्कालीन समाज, राजव्यवस्था एवं जयपुर नगर निर्माण, चौरासि जातियों एवं खण्डेलवाल जातियों का उद्‌भव का अच्छा वर्णन किया है। यह उनकी सवत् 1827 की कृति है।

बख्तराम चाकसू के निवासी थे। इनके पिता का नाम प्रेमराज साह था जो वही रहते थे। लेकिन कुछ समय पश्चात् कवि जयपुर आकर रहने लगे। मिथ्यात्व खण्डन नाटक में कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

> **आदि चाकसू नगर के, वासी तिथि को जानि।**
> **हाल सवाई जैनगर, मांहि बसे है आनि॥**
> **तहां लसकरी देहुरे, राजत श्री प्रभु नेम।**
> **जिनको दरसरण करत ही, उपजत है अति प्रेम॥**

कवि ने अपने बुद्धिविलास मे महापंडित टोडरमल जी की मृत्यु के सम्बन्ध मे जो प्रकाश डाला है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

43. भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति का जयपुर में भट्टारक गादी पर पट्टाभिषेक हुआ था। भट्टारक पट्टावली मे पट्टाभिषेक का समय सम्वत् 1822 तथा बुद्धिविलास मे सम्वत् 1823 दिया हुआ है। सुरेन्द्रकीर्ति सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। अब तक उनकी निम्न रचनाये उपलब्ध हो चुकी है :—

1. अष्टान्हिका कथा
2. पच कल्याणक विधान
3. पचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन
4. पुरन्दर व्रतोद्यापन
5. लब्धि विधान
6. सम्मेदशिखर पूजन
7. प्रताप काव्य

ये खण्डेलवाल जैन जातीय ठोलिया गोत्र के श्रावक थे।

44. पं० जयचन्द छाबड़ा

(संवत् 1795 से 1881)

पं० जयचन्द छाबड़ा 19वी शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान थे। महापंडित

टोडरमल जी एवं जयचन्द जी छाबड़ा दोनों ही दिगम्बर जैन समाज के प्रतिनिधि पंडित थे इसीलिये जयपुर का नाम आते ही इन दोनों विद्वानों का नाम स्मरण हो आता है। पंडित जी का जन्म स्थान फागी ग्राम था, तथा मोतीराम छाबड़ा के ये पुत्र थे। जयपुर में आने के पश्चात् इनका सम्पर्क नगर के विद्वानों से हुआ इन विद्वानो में पंडित टोडरमल जी, पंडित दौलतराम जी कासलीवाल एवं रायमल्ल जी के नाम प्रमुख है।

पंडित जी की अब तक 16 कृतियों का पता चला है। इन कृतियों में सर्वार्थसिद्धि भाषा वचनिका, समयसार भाषा वचनिका, अष्टपाहुड़ भाषा वचनिका, ज्ञानार्णव भाषा वचनिका, प्रमेयरत्नमाला भाषा वचनिका के नाम उल्लेखनीय हैं। पंडित जी ने सम्वत् 1859 से लेकर सम्वत् 1874 तक अर्थात् 15 वर्षों में लेखन कार्य किया। पंडित जी तेरहपंथ आम्नाय के कट्टर समर्थक थे।

45 जीवणराम गोधा

जीवणराम राजस्थान मे ढूंढाहड प्रदेश के रेणी ग्राम के रहने वाले थे। ये भट्टारकीय परम्परा के कवि थे। इन्होने सम्वत् 1871 में अष्टाह्निका कथा लिखकर समाप्त की थी।[1]

46. सेवाराम साह

सेवाराम साह पंडित बख्तराम साह के सुपुत्र थे। सेवाराम ने सम्वत् 1824 में चौबीस तीर्थङ्कर पूजा समाप्त की थी।

47. नेमिचन्द पाटनी

सम्वत् 1880 भादवा सुदी 10 को नेमिचन्द पाटनी ने इन्दौर में चौबीस तीर्थङ्कर पूजा को छन्दोबद्ध पूर्ण करने का यशस्वी कार्य किया था। इसके पश्चात् तीस चौबीसी पूजा को इन्दौर मे ही सम्वत् 1884 कार्तिक शुक्ला 14 शनिवार को तथा त्रैलोक्य पूजा को सम्वत् 1929 मे उसी नगर मे समाप्त किया।

48. ऋषभदास निगोत्या

ऋषभदास निगोत्या प० जयचन्द छाबड़ा के समकालीन विद्वान थे। सम्वत् 1840 के लगभग इनका जन्म जयपुर मे हुआ। ये शोभाचन्द के सुपुत्र थे। सम्वत् 1888 में निबद्ध मूलाचार पर भाषा वचनिका लिखी थी। ग्रथ की भाषा ढूंढारी

---

1. अठारहसं इकेतरया, भादव उजली तीज।
   वार बृहस्पतिवार ने, सतगुरु कथा कहीज।।

है तथा जिस पर पं० टोडरमल एवं जयचंद छाबड़ा की शैली का प्रभाव है। इनके पुत्र पार्श्वनाथ निगोत्या भी बहुत अच्छे पंडित थे।

49. केशरीसिंह कासलीवाल

जयपुर निवासी पं० केशरीसिंह भट्टारकीय परम्परा के कट्टर समर्थक थे। जयपुर के दीवान बालचन्द छाबडा के पुत्र दीवान जयचंद के अनुरोध पर इन्होंने सम्वत् 1873 मे वर्धमान पुराण की भाषा टीका निबद्ध की थी। ये यहा के लश्कर के दिगम्बर जैन मन्दिर में रहते हुये साहित्य निर्माण का कार्य किया करते थे।

50. दीवान चम्पाराम

वृन्दावन के दीवान चम्पाराम ने सम्वत् 1882 में संग्रहित और "जिन चैत्यस्तव" नामक दो हिन्दी पद्यबद्ध रचनाये निबद्ध की थी। जिनकी प्रति भी रचनाकाल के दो महिने बाद की लिखी हुई प्राप्त हुई है और उमे भी चम्पाराम के भानजे लालजीमल ने अपने पढने के लिये लिखवाई थी। 20 पत्रों की यह प्रति भावसा गोत्रिय श्रावक भवानीचन्द जो झिलाय के निवासी थे, की लिखी हुई है जिसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार है :—

पोष बुदि 11 बुधवार। यह ग्रथ दीवान चम्पाराम लिखित सम्पूर्ण।

द० भवानी चन्द श्रावक, गोत्र भावसा वासी
झिलाय का लिखायत दीवान चम्पाराम जी
के भाणेज लालजीमल जी स्वकीय पठनार्थ।

इनका कोई प्रमाणिक समय नही मिलता है। इनके द्वारा वृंदावन में जो मन्दिर बनवाया हुआ है वह शिखर रहित तथा लगभग 300 वर्ष प्राचीन है तथा मथुरा मे यह किवदन्ति सुनने में आई है कि जयपुर की कोई महारानी ने वृन्दावन वास किया था और उन्ही के इन्तजाम के लिये दीवान चंपाराम जी वहां रखे गये थे।

मन्दिर निर्माण काल के हिसाब से महाराज रामसिंह अथवा विशनसिंह जी की रानी ने वृन्दावन वास किया होगा। उस मन्दिर मे हस्तलिखित 20 ग्रंथों का संग्रह मिलता है। उनके भानजों का परिवार मथुरा में अभी भी रहते है।[1]

---

1. **जैन संदेश—शोधांक-22**

51. रामचन्द्र अजमेरा

पण्डित रामचन्द्र देहली के निवासी थे । ये खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे । उनका गोत्र अजमेरा था । पण्डित जी ने विभिन्न पूजाओं को छन्दोबद्ध करने का बड़ा भारी कार्य किया था । कविवर रामचन्द्र द्वारा रचित पूजायें समाज में अत्यधिक लोकप्रिय है तथा हजारो लाखों को याद है । इनकी रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

1. चौबीस महाराज पूजा
2. पचपरमेष्ठी पूजा
3. पच कल्याणक पूजा
4. अर्हन्त पूजा
5. सिद्ध पूजा
6. बीस विरहमान पूजा
7. पचमेरु पूजा
8. गुरु पूजा
9. सरस्वती पूजा
10. सोलह कारण पूजा
11. चतुर्दशी पूजा
12. सम्मेदशिखर पूजा
13. चौबीस महाराज पूजा समुच्चय
14. आदिनाथ पूजा

52. अमरचन्द

पण्डित अमरचन्द 19वी शताब्दी के कवि थे । इन्होने संवत 1891 कार्तिक शुक्ला 15 गुरुवार को चौबीस महाराज पूजा एव बीस विरहमान पूजा को संवत् 1925 कार्तिक शुक्ला 4 को छन्दोबद्ध किया था । अमरचन्द खण्डेलबाल जातीय व लुहाड़िया गोत्रीय पण्डित थे ।

53. देवीदास गोधा

देवीदास चिमनराम के पुत्र थे । गोधा इनका गोत्र था । वैसे कवि बसवा (जयपुर) निवासी थे लेकिन बाद में भेलसा जाकर रहने लगे थे । देवीदास ने भट्टारक नरेन्द्रसेन के सिद्धान्त-सार संग्रह की संवत् 1844 में भाषा बचनिका तथा चिद्-विलास बचनिका इन दो रचनाओं को निबद्ध करने का यशस्वी कार्य किया ।

54. श्रावक सम्पतराम

इन्होंने संवत् 1854 में जेठ शुक्ला 3 दिन ज्ञानसूर्योदय नाटक को छन्दोबद्ध किया था।

55. पण्डित सर्वसुखराय

संवत् 1896 में समवशरण पूजा को छन्दोबद्ध करने का श्रेय श्रावक सर्वसुखराय को मिला था। ये जयपुर निवासी थे तथा खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे।

56. पण्डित गुमानीराम

महापण्डित टोडरमल जी के पण्डित गुमानीराम छोटे पुत्र थे। ये बड़े क्रांतिकारी विचारो के थे तथा अपने पिता से आगे बढ़े हुए थे। जब तेरहपथ मे भी इन्होंने शिथिलता देखी तो इन्होने अपने ही नाम से एक नया पंथ चलाया। गुमानी राम जी शास्त्रो के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी मृत्यु पौष बुदी 11 शनिवार को संवत् 1853 मे हुई थी।

जब गुमान पंथ का जोर बढ़ा तथा मन्दिरों मे पूजा एवं सामग्री की शुद्धता की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा तो समाज का एक वर्ग इनके विरुद्ध हो गया इनकी निम्न शब्दो मे निन्दा होने लगी—

टोडरमल का बंश में, भयो गुमानी कंस।
धर्म अंश जाने नहीं, पाप मूल को बंश।।

लेकिन फिर भी 4100 वर्षों तक इस पंथ का बहुत जोर रहा।

57. फकीरचन्द

फकीरचन्द 19वी शताब्दी के पण्डित थे। उन्होंने समबसरण पूजा को संवत् 1821 वैशाख शुक्ला 14 मंगलवार के दिन समाप्त की थी। कवि खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे लेकिन उनके गौत्र के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नही मिलता।

58. नन्दलाल छाबड़ा

पण्डित नन्दलाल छाबड़ा पण्डित जयचन्द जी छाबड़ा के पुत्र थे। ये भी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। स्वय पण्डित जयचन्द जी ने अपने पुत्र नन्दलाल की प्रशंसा की है। इन्होने मूलाचार की भाषा बचनिका लिखना प्रारम्भ किया लेकिन

ग्रन्थ रचना पूर्ण होने से पूर्व ही इनकी मृत्यु हो गई जिसे बाद में ऋषभदास निगोत्या ने संवत् 1888 कार्तिक शुक्ला 7 को पूर्ण किया।

59. माणकचन्द बड़जात्या

इन्होने समाधि-तन्त्र भाषा बचनिका लिखी थी।

60. मुन्नालाल पाटनी

ये जोगीदास पाटनी के सुपुत्र थे। इन्होने संवत् 1871 में चरित्रसार भाषा वचनिका को दिल्ली में समाप्त किया था। वैसे ये भी जयपुर निवासी थे।

61. उदयचन्द्र

ये खण्डेलवाल जातीय एवं लुहाड़िया गोत्र के श्रावक थे। इन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका लिखी थी।

62 जौहरीलाल

ये पाटनी गोत्रीय श्रावक पण्डित थे। इन्होने पद्मनन्दि पंचविंशतिका की भाषा टीका लिखी थी लेकिन उसके पूर्ण होने के पूर्व ही इनका स्वर्गवास हो गया।

63. पण्डित सदासुख कासलीवाल

जयपुर मे महापण्डित टोडरमल जी एव पण्डित जयचन्द जी छाबड़ा के पश्चात् सदासुख ही सर्वमान्य पण्डित थे। वे जैन धर्म एव सिद्धान्त के बड़े भारी विद्वान थे। इनका जन्म संवत् 1852 में जयपुर में हुआ। इनकी लिखी हुई भाषा टीकाये अत्यधिक रुचि के साथ पढ़ी जाती रही। सदासुख जी का काफी समय अजमेर मे व्यतीत हुआ। अब तक इनके निम्न ग्रन्थों की प्रसिद्धि हो चुकी है—

1. भगवती आराधना भाषा वचनिका (सवत् 1906)
2. तत्वार्थसूत्र की अर्थ प्रकाशिका टीका
3. समयसार भाषा वचनिका आदि

इनकी भाषा पर ढूंढारी भाषा का पूर्ण प्रभाव है।

64. बख्तो गोधा

बख्तो गोधा अभी तक अर्चाचित कवि है। यहाँ प्रथम बार कवि का परिचय

दिया जा रहा है। ये चम्पावत (चाकसू) के रहने वाले थे। नेतसी कवि के पिता का नाम था। ये वणिक थे तथा व्यापार करते थे।[1] बख्तो ने वृन्दावन के पास विद्याभ्यास किया। कवि संवत् 1826 के सवाई माधोपुर मेले में गये थे। उनके मन में मेले का वृत्तान्त लिखने का भाव पैदा हुआ जिससे भविष्य में उसकी सबको स्मृति बने रहे और इसी कारण उन्होंने नन्दलाल रास की रचना की। पूरा रास 262 छन्दों में निबद्ध है।

65. उदयचन्द

यह जयपुर नगर अथवा इसके आस-पास के ही रहने वाले थे। उदयचन्द लुहाड़िया गोत्रीय खण्डेलवाल जैन थे। इनका रचनाकाल संवत् 1890 बतलाया जाता है। अभी तक उदयचन्द के लगभग 94 पद प्राप्त हुये हैं। प्राप्त पदो में आराध्य का महिमागान तथा कवि का अवगुण निवेदन अधिक है।[2]

66 नवल

यह बसवा के रहने वाले थे। इनका जीवनकाल संवत् 1790–1855 तक बतलाया जाता है। दौलतराम कासलीवाल से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इन्ही की प्रेरणा से इनकी रुचि साहित्य मे हुई। ये अच्छे कवि थे तथा पदो की रचना मे विशेष रुचि लेते थे। अब तक इनके 222 पद मिल चुके है। नवल की बडी कृतियो में वर्धमान पुराण, भद्रबाहु चरित्र के नाम उल्लेखनीय है। इनकी लघु कृतियो में दोहा पच्चीसी उल्लेखनीय कृति है।

67. साहिबराम पाटनी

साहिबराम की जीवनी के विषय मे कोई जानकारी नही मिलती है। जयपुर के जैन मन्दिरो मे इनकी रचनाओ की प्राप्ति तथा भाषा की दृष्टि से साहिबराम ढूंढाड के ही प्रतीत होते हैं। इनके पदो की संख्या 60 है।

68. बुधजन

बुधजन अच्छे कवि थे। इनके पिता का नाम निहालचन्द था। ये बज गोत्रीय श्रावक थे। इनका जन्म संवत् 1820 के आस-पास तथा मृत्यु संवत् 1895

1. बनिक पुत्र तामें इक रहै ताको नाम गोत सुभ कहै।
   गोधो गोत नेतसी नाम तिसको बख्तो पुत्र बखानि ॥
2. राजस्थान का जैन साहित्य—पृष्ठ संख्या 223।

के पश्चात् किसी समय हुयी थी । पण्डित बुधजन का समस्त जीवन साहित्य सेवा के लिए समर्पित था । इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

छहढाला (संवत् 1859), बुधजन विलास (संवत् 1860), बुधजन सतसई (संवत् 1879), तत्वार्थ बोध (संवत् 1879), पंचास्तिकाय भाषा (संवत् 1892), वर्धमान पुराण सूचनिका (संवत् 1895), योग सार भाषा (सवत् 1895) के नाम उल्लेखनीय हैं ।

"प्रभु पतित पावन मं अपावन चरण आयो शरणजी" ।

बुधजन का ही लोकप्रिय स्तवन है जिसका प्रतिदिन लाखों श्रावक पाठ करते है ।

बुधजन के दीवान अमरचन्द श्रद्धालु प्रशंसक थे । इनके द्वारा निर्मापित दिगम्बर जैन मन्दिर बधीचान्द जी जयपुर के प्रमुख मन्दिरो में गिना जाता है ।[1]

69. श्रावक अमीचन्द

अमीचन्द खण्डेलवाल जातीय एवं चादुवाड़ गोत्र के श्रावक थे । इन्होंने सवत् 1912 मंगसिर शुक्ला 8 रविवार को श्रीपाल चरित्र भाषा बचनिका की रचना समाप्त की थी ।

70. मन्नालाल बैनाडा

मन्नालाल बैनाडा मंगलसेन के पुत्र थे । इन्होने सवत् 1916 जेठ शुक्ला 5 को प्रद्युम्न चरित्र भाषा वचनिका लिखने का गौरव प्राप्त किया ।

71. स्वरूपचन्द बिलाला

स्वरूपचन्द बिलाला गोत्रीय श्रावक थे । जयपुर नगर के निवासी थे । इन्होंने जयपुर के जिन मन्दिरों एव चैत्यालयो की दो बार वन्दना की थी और दोनो ही बार उनकी चैत्यालय वन्दना के नाम से परिचय लिखा था । अब तक इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है—

1. जयपुर मन्दिर चैत्यालय बंदना संवत् 1892 फागुण शुक्ला 11
2. त्रैलोक्यसार चौपाई संवत् 1901 पौष शुक्ला 1 रविवार
3. ऋद्धि शतक छन्दोबद्ध संवत् 1902

---

1. **विशेष विवरण के लिए देखिये—कविवर बुधजन—व्यक्तित्व एवं कृतित्व—लेखक डॉ० मूलचन्द शास्त्री ।**

4. चौसठ ऋद्धि पूजा — संवत् 1910 श्रावण शुक्ला 7
5. द्वितीय जयपुर मन्दिर चैत्यालय वन्दना — संवत् 1910 पौष शुक्ला 4
6. सहस्रनाम पूजा — संवत् 1916 आश्विन रविवार
7. मदनपराजय नाटक बचनिका — संवत् 1918 मार्गशीर्ष शुक्ला 7 रविवार
8. वीरनाथ स्तोत — संवत् 1919 आश्विन शुक्ला 2
9. निर्वाण क्षेत्र अतिशय क्षेत्र पूजा — संवत् 1914 कार्तिक बुद्धि 12 गुरुवार
10 सुगन्ध दशमी लघु पूजा छदोबद्ध
11. जिनपंजर स्तोत्र
12. चमत्कार लघु पूजा

72 पाण्डे शिवजीलाल

पाण्डे शिवजीलाल खण्डेलवाल जातीय श्रावक थे। ये पण्डित दलजी के शिष्य थे। इन्होने संवत् 1923 मे दर्शन सार बचनिका लिखी थी। इनके द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थ भी मिलते है। ये कट्टर बीसपथी थे।

73. पाण्ड फतेलाल

ये भी खण्डेलवाल जातीय पाण्डे थे। इन्होने संवत् 1931 मे रत्नकरण्ड श्रावकाचार, सवत् 1934 में राजवार्तिक बचनिका एवं सवत् 1934 में न्याय-दीपिका बचनिका लिखी थी। इसके अतिरिक्त दशलक्षण नाटक, विवाह पद्धति एव सूत्रदशाध्याय बचनिका भी मिलती है।

74. पाण्ड केशरीसिंह

पाण्डे केशरीसिंह जयपुर के श्री दिगम्बर जैन मन्दिर लश्कर में रहते थे। वही पर इन्होने वर्धमान पुराण बचनिका संवत् 1873 फागुण शुक्ला 12 को समाप्त की थी। इस पुराण की रचना दीवान बालचन्द जी छाबड़ा के पौत्र ज्ञान चन्द छाबड़ा के आग्रह से की थी। इसके अतिरिक्त सम्मेद शिखर विलास भी इनका मिलता है।

75. नथमल

नथमल नाम के कई विद्वान् हो गये हैं। सबमे प्रसिद्ध नथमल बिलाला थे जो आगरा के थे लेकिन हीरापुर (हिण्डौन) आकर रहने लगे थे। दूसरे नथमल

पण्डित सदासुख कासलीवाल के शिष्य थे। इनके पितामह का नाम दुलीचन्द तथा पिता का नाम शिवचन्द था। कवि की अब तक महिपाल चरित्र भाषा (संवत् 1918), योगसार भाषा (संवत् 1917), परमात्म प्रकाश भाषा (संवत् 1919), रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा (1920), षोडशकारण भावना (संवत् 1921), अष्टाह्निका कथा (संवत् 1922), रत्नत्रय जयमाल (संवत् 1924) आदि रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। नथमल जयपुर के निवासी थे।

76. पण्डित नाथूलाल दोशी

पण्डित नाथूलाल दोशी गोत्रीय श्रावक थे। आपके पिताश्री का नाम दुलीचंद था। ये अपने जमाने के अच्छे पण्डित एवं शास्त्रों के ज्ञाता थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में से निम्न ग्रन्थों के नाम उल्लेखनीय है—

ग्रन्थ का नाम	रचनाकाल
1. परमात्म प्रकाश छन्दोबद्ध	संवत् 1919 चैत्र शुक्ला 11 रविवार
2. महिपाल चरित्र भाषा बचनिका	संवत् 1918 असाढ़ कृष्णा 4 बुधवार
3. सुकुमाल चरित्र भाषा बचनिका	संवत् 1918 श्रावण शुक्ला 10 गुरुवार
4. दर्शनसार छन्दोबद्ध	संवत् 1420 श्रावण शुक्ला 4 शनिवार
5. पोडशकरण भावना भाषा	संवत् 1920 माघ शुक्ला 9
6. अष्टाह्निका कथा	संवत् 1922 फागुण शुक्ला 5 सोमवार
7. रत्नत्रय भावना जयमाल	संवत् 1922 फागुण शुक्ला 8 बुधवार
8. सिद्धिप्रिय स्तोत्र छन्दोबद्ध	
9. रत्नत्रय भावना बचनिका	संवत् 1924 श्रावण शुक्ला 14 बुधवार
10. रत्नकरण्ड श्रावकाचार छन्दोबद्ध	संवत् 1920 माघ शुक्ला 9

77. पण्डित पन्नालाल दूनीवाले

पण्डित पन्नालाल दूनी के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम रत्नचन्द्र था तथा ये बैद गोत्रीय श्रावक थे। ये भी अच्छे पण्डित थे। इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

1. समवसरण पूजा छन्दोबद्ध	संवत् 1921 आश्विन बुदी 3 रविवार
2. सरस्वती पूजा	संवत् 1921 ज्येष्ठ शुक्ला 5

3. नित्य नियम पूजा — संवत् 1921
4. पंच कल्याणक पूजा — संवत् 1922
5. उत्तर पुराण बचनिका — सवत् 1930 असाढ़ शुक्ला 3
6. विद्वज्जन बोधक बचनिका
7. पंचपरमेष्ठी पूजा

78. पार्श्वदास

पार्श्वदास जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे । पार्श्वदास के दो बड़े भाई मानचन्द और दौलराम थे । पार्श्वदास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली । शास्त्र पठन और परमार्थ तत्त्व की ओर इनका झुकाव पण्डित सदासुख जी कासलीवाल के सम्पर्क से हुआ । पार्श्वदास का साधना स्थल शान्तिनाथ स्वामी का बडा मन्दिर जयपुर था । वहाँ इनके प्रवचन को सुनने के लिए काफी श्रोतागण एकत्र होता था । पार्श्वदास के शिष्यो मे बख्तावर कासलीवाल प्रमुख थे । उसे ही ये अपना पुत्र और मित्र समझते थे । पार्श्वदास अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे अजमेर रहने लग गये थे । वहाँ पर सेठ मूलचन्द सोनी के सानिध्य में वैशाख सुदी 5 सवत् 1936 को इन्होने समाधिमरण लिया था ।

पार्श्वदास का एक गद्य ग्रन्थ "ज्ञान सूर्योदय" नाटक की वचनिका तथा समस्त काव्य रचनाये "पारस विलास" मे सग्रहित है । लघु ग्रन्थों की अपेक्षा कविवर पार्श्वदास की काव्य प्रतिमा का पूर्ण निर्देशन उनके पदो में अधिक है । 43 राग रागनियो मे लिखित 425 पदो में अध्यात्म, भक्ति, विरह तथा नीति आदि विभिन्न विषय है । पार्श्वदास के पद विभिन्न प्रतिलिपियो के पाठ सम्पादन के आधार पर पार्श्वदास पदावली के रूप मे दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टौक द्वारा प्रकाशित करवाये जा चुके है ।[1]

79. जवाहरलाल शाह

ये जयपुर के निवासी थे तथा 20वी सदी मे हुये थे । विक्रम संवत् 1952 में इनका स्वर्गवास हुआ । इनके द्वारा रचित चेतन विलास, आलोचना पाठ, बीस तीर्थंकर पूजा, समुच्चय पूजा आदि पद्यमय रचनायें मिलती हैं । हिन्दी में अनेक पद भी लिखे हुये मिलते हैं ।

1. पार्श्वदास पदावली—सम्पादक—डॉ० गंगाराम गर्ग, भरतपुर ।

80. चैनसुख लुहाड़िया

इनका जन्म जयपुर में संवत् 1887 में और स्वर्गवास संवत् 1949 में हुआ था। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनके कितने ही स्तोत्र एवं पूजायें मिलती हैं। इनमें अकृत्रिम चैत्यालय पूजा (संवत् 1930) एवं सहस्रनाम पूजा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये निर्भयराम के पुत्र थे। लुहाड़िया इनका गोत्र था।

81. चम्पाराम भांवसा]

ये खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम हीरालाल था जो माधोपुर (जयपुर) के रहने वाले थे। इन्होंने अपनी ज्ञान वृद्धि के लिए "धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार" एवं "भद्रबाहु चरित्र" की रचनायें की थी। ये दोनों ही कृतियाँ राजस्थानी भाषा की अच्छी रचनाये मानी जाती हैं।

82. पण्डित महाचन्द

सीकर निवासी पण्डित महाचन्द जी राजस्थानी गद्य व पद्य के अच्छे विद्वान थे। संवत् 1915 में इन्होंने त्रिलोकसार पूजा लिखी थी जो अत्यधिक लोकप्रिय है। तत्त्वार्थ सूत्र की हिन्दी टीका इन्होंने की थी तथा अनेक भक्तिपरक पद लिखे थे। आपके पदों की भाषा यद्यपि ठेठ हिन्दी है परन्तु इन पर राजस्थानी का भी प्रभाव है। इन्होंने प्रत्येक पद में "बुध महाचन्द" शब्द का प्रयोग किया है। सीकर में आज भी पण्डित जी की बहुत लोकप्रियता है।

83. थानसिंह अजमेरा

अजमेरा जयपुर में 20वी सदी के पूर्वार्द्ध में हुये थे। थान विलास इनकी प्रमुख कृति है जिसमें इनकी विविध रचनाओं का संग्रह है। कवि की भाषा और शैली दोनों ही अच्छे स्तर की है। संवत् 1934 में इन्होंने बीस तीर्थङ्कर पूजा लिखी थी।

84. श्री अमरचन्द लुहाड़िया

दिगम्बर जैन मन्दिर शाहदरा के हस्तलिखित ग्रन्थों में श्री अमरचन्द लुहाड़िया कृत "चौबीसी पूजा पाठ" ग्रन्थ सग्रहित है जो सर्वथा अप्रकाशित भी है। तथा सर्वथा सुबोध एव सरस है।

श्री लुहाड़िया ने इस पाठ की रचना कार्तिक सुदी पूर्णिमा संवत् 1921 को की थी। आपके पिता का नाम श्री किशनलाल था आप खण्डेलवाल वंशीय एवं

लुहाड़िया गोत्रीय श्रावक थे । आप मूलतः कोसी के निवासी थे । कवि ने अपना नाम अमरचन्द के अतिरिक्त स्वरचन्द, सुरचन्द आदि का भी प्रयोग किया है ।[1]

85. सुगनचन्द

यह जीवराज बड़जात्या के पुत्र थे । इनकी माता गंगा और भाई मगनलाल, सुज्ञान, बख्तावर और हरसुख थे । यह अपने पिता के मझले पुत्र थे । इन्हें छन्द और व्याकरण का अच्छा ज्ञान था । इन्होंने जिन भक्ति की प्रेरणा से राम पुराण ग्रन्थ की रचना की थी ।[2]

86. खेतसी बिलाला

इनकी "सील जखड़ी" में नारी की निन्दा की गई है । यह रचना तेरहपंथी मन्दिर के गुटका नम्बर 50 के पृष्ठ 195 पर अंकित है ।[3]

87. नन्दराम

यह बख्तराम के पुत्र थे । इनके पद तेरहपंथी मन्दिर, टौंक मे ग्रन्थाक 50 में पृष्ठ संख्या 208–213 पर मिलते है ।[4]

88. माणिकचन्द

माणिकचन्द मावसा गोत्रीय खण्डेलवाल जैन थे । बाबा दुलीचन्द भण्डार, जयपुर के पद संग्रह नम्बर 428 में इनके 183 पद प्राप्त हुये हैं जो भक्ति और विरह के हैं ।[5]

□

1. सम्मति संदेश–वर्ष 13, अंक 11–11–1968 ।
2–5. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या 225 ।

अध्याय 9

सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास

खण्डेला से निकल कर खण्डेलवाल जैन राजस्थान, मालवा एवं देहली ग्रादि मे चारों ग्रोर फैल गये। खण्डेलवाल जैन बन्धु सरावगी समाज के नाम से ग्रधिक विख्यात हुये। यद्यपि ग्रग्रवाल जैनों को भी बंगाल, बिहार मे सरावगी जाति से निर्दिष्ट किया जाने लगा था लेकिन वह बहुत बाद मे प्रारम्भ हुग्रा। राजस्थान, मालवा ग्रादि क्षेत्र में तो खण्डेलवाल जैनों को सरावगी शब्द से प्रारम्भ से ही सम्बोधित किया जाता है।

सरावगी परिवार जहां भी गये उन्होंने मन्दिरो का निर्माण कराया जिससे धार्मिक ग्रास्था बनी रहे। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाएं भी होती रही ग्रौर पूरा समाज एक ही ढाचे मे चलता गया। पहले ग्राचार्यों के संरक्षण में ग्रौर फिर भट्टारको के निर्देशन में समाज सांस्कृतिक, साहित्यक एवं धार्मिक क्षेत्र मे विकास की ग्रोर बढ़ता गया। बड़े-बड़े नगरां के ग्रतिरिक्त छोटे-छोटे गांवों में वे जाकर बस गये ग्रौर समाज मे घुल-मिल गये। सरावगी समाज को सबसे ग्रधिक संरक्षण राजाग्रों एवं जागीरदारो का मिला। वे उनके विश्वस्त व्यक्ति बन गये। ग्रौर शासक एवं जागीरदार भी ग्रपने राज्य की व्यवस्था उनके हाथों में छोड़ कर निश्चिन्त हो गये।

खण्डेलवाल जैन समाज संवत् 1300 तक सभी ग्रोर तेजी से ग्रागे बढ़ता रहा। दिगम्बर जैन समाज में ग्रपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया ग्रौर उत्तर भारत के खण्डेला लाडनू, ग्रजमेर, चित्तौड़, मारोठ, नरायणा, मालपुरा, चाकसू, मथुरा, सांगानेर, शेरगढ़, हस्तिनापुर, उज्जैन, झालरापाटन जैसे नगर सरावगी समाज के प्रमुख केन्द्र माने जाने लगे।

समाज का विभाजन

इसी बीच समाज में दो बड़ी घटनाएं हो गयीं। संवत् 1352 में सूरजमल

भौंसा ने लाडनूं में एक विशाल प्रतिष्ठा का आयोजन किया। इस प्रतिष्ठा में एक धनाढ्य कुलीन दक्षिण भारत से आकर पहले तो माला पहिनने का सौभाग्य प्राप्त किया और फिर वहां आने वालों को पंक्तिबद्ध भोजन कराया। इस भोजन मे जो व्यक्ति सम्मिलित हुये वे लोहड़ साजन और नहीं जीमने वाले बड़साजन कहलाने लगे। लोहड़साजन और बड़ साजन का यह भेद समाज में पहली बार हुआ।

जैसे अन्य जातियों में लघु शाखा एवं वृहद् शाखा मिलती है इसी प्रकार सराबगी समाज भी लोहड़ एवं बड़ साजनों में विभक्त हो गया। यद्यपि पंक्तिबद्ध भोजन करने वालों की संख्या अधिक नही थी। फिर भी समाज में एक दरार पड़ गयी। कुछ वर्षों तक तो समाज के लोगों की समझ में नही आ सका लेकिन धीरे-धीरे यह भेद बढ़ता गया और यहां तक कि लोहड़ साजनों के साथ बेटी व्यवहार बन्द हो गया और एक तरह से लोहड़ साजन समाज अल्पसंख्यक समाज बन कर रह गया।

भट्टारकों द्वारा वस्त्र ग्रहण

इस घटना के कुछ ही वर्षों पश्चात् देहली में चादी साह ने भट्टारक प्रभाचन्द को संवत् 1375 में आमंत्रित किया। भट्टारक प्रभाचन्द एवं राघोचेतन के मध्य जोरदार शास्त्रार्थ हुआ। मत्र शक्ति की परीक्षा हुई। एक दूसरे के चमत्कारों का प्रदर्शन हुआ। लेकिन सभी में भ० प्रभाचन्द की विजय हुई। उस समय भट्टारक प्रभाचन्द निर्वस्त्र थे। इसी बीच इनकी प्रशसा बाहशाह तक पहुंच गयी। उन्होने उनको महलों में आकर दर्शन देने की प्रार्थना की। रनिवास में नग्न मुनि जाने का विरोध हुआ तथा बादशाह के प्रकोप से सभी भयभीत हो गये। अन्त में आपातकाल को दूर करने की दृष्टि से तत्कालीन समाज ने इनसे लंगोट लगाने की प्रार्थना की साथ मे यह भी सौगन्ध खायी कि भविष्य में उनको वही सम्मान प्राप्त होगा। जो एक निर्वस्त्र आचार्य को होता है। इसके बाद ही भट्टारकों द्वारा वस्त्र स्वीकार कर लिया गया और उन्हें समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हो गयी।

सामाजिक वैभव

राजस्थान के नगरों एवं गाँवों में खण्डेलवाल जैन समाज का सर्वाधिक प्रभाव रहा। एक के पश्चात् दूसरे प्रभावशाली व्यक्ति होते रहे। सारी सत्ता की कुञ्जी उन्हीं के हाथों में रही। व्यापार, धन एवं वैभव की दृष्टि से जैन समाज कभी पीछे नही रहा। यही नही अपनी दानशीलता, त्याग एवं सेवा में भी वे सबसे आगे रहे। संवत् 1570 मे रचित "पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी" मे चाकसू नगर का जो वर्णन दिया है उससे ऐसा मालूम पड़ता है चाकसू नगर के श्रावको के पास अपार सम्पत्ति थी और वे सब तरह से प्रसन्न थे।

देस सयलह मज्झि सुपसिद्ध, जसु पटतर अलंहतविहि ।
दु ढि दुढाहडु नाम अखिउ, तह चंपावती वर नयर ।
जहा न को जण वसइ दुखिउ, जैन महोछा महम घण ।
जहि विनि विनि वी लेति, तहा वसइ ते जण्णु नर, इउं जण विबस कहंति ।

संवत् 1630 में ब्रह्म रायमल्ल द्वारा रचित श्रीपाल रास में रणथम्भोर दुर्ग में रहने वाले श्रावकों के सम्बन्ध में निम्न पद्य उल्लेखनीय है—

हो श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पार्ले मन आइ ।

ब्रह्म रायमल्ल संवत् 1633 में ढूंढाड के प्रमुख नगर सांगानेर गये और वहां भी उन्होने दिगम्बर जैन समाज को धन्य-धान्य पूर्ण पाया—और उसी पद्य को फिर दुहराया—

श्रावक लोग बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
उपरा उपरी वैर न कास, जिम इंद्र सुर्ग सुखवास ।

इस प्रकार 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में ढूंढाड प्रदेश में श्रावकों की आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही स्थितियां अच्छी थी । व्यापार उनके हाथ में था तथा शासन तंत्र में उनका पूरा प्रभाव था ।

समाज पर भट्टारकों का पूरा नियन्त्रण था । पहले देहली फिर चित्तौड़ में रहने के पश्चात् भट्टारको ने अपनी गादी चम्पावती (चाकसू) मे ही स्थापित कर ली थी । संवत् 1580 मे रचित मेघमाला में कविवर ठक्कुरसी ने भट्टारक प्रभाचन्द को गौतम गणधर के समान मान कर उनकी प्रशसा की है ।

ढूंढार प्रदेश में 16वीं शताब्दी से लेकर 19वी शताब्दी तक जितनी भी प्रतिष्ठाएं हुई उनके सचालन में भट्टारको अथवा उनके शिष्यो का प्रमुख रूप से हाथ रहा था । भट्टारकों एव मडलाचार्यों का समाज मे बहुत सम्मान था और वे ही जैन गुरु के रूप माने जाते थे । धार्मिक एव सामाजिक मामलों मे उनकी सम्मति आदेश के रूप मे मानी जाती थी ।

राजस्थान प्रदेश में सामाजिक जीवन में सैकड़ों वर्षों तक समानता चलती रही । जाति बन्धन में दृढ़ता आती गयी । यहां दिगम्बर जैन खण्डेलवाल, अग्रवाल बघेरवाल समाजों का विशेष जोर रहा और सभी समाज धार्मिक उत्सवों, प्रतिष्ठाओं, एव ग्रंथो की पाण्डुलिपियां करवाने मे विशेष योगदान देती रही । जहां एक ओर खण्डेलवाल समाज ने पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों पर विशेष ध्यान दिया वहां दिगम्बर जैन अग्रवाल समाज ने ग्रंथ साहित्य के प्रचार प्रसार में विशेष रुचि ली थी ।

संवत् 1548 एवं संवत् 1664 की पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठाओं ने एक कीर्तिमान स्थापित किया और हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाकर सारे देश के मन्दिरों में मूर्तियों को विराजमान किया। संवत् 1664 में मोजमाबाद में जो प्रतिष्ठा हुई थी वह तो राज्य स्तर पर आयोजित हुई थी तथा मुगल बादशाह एवं जयपुर दरबार की ओर से प्रतिष्ठा में पूरी सहायता दी गयी थी। भट्टारकों का वह स्वर्ण युग था।

तेरहपंथ का उद्भव

लेकिन भट्टारकों का पूर्ण प्रमुत्व होने पर भी आगरा में जो अध्यात्म शैली थी और महाकवि बनारसीदास जिसके प्रमुख प्रचारक थे उसका प्रभाव राजस्थान में भी आने लगा था और प्रकट रूप में न सही किन्तु छिपे रूप में भट्टारकों की धार्मिक तानाशाही के विरुद्ध जन-मानस बनने लगा था। कविवर बूचराज का "चेतन पद्गल संवाद" अध्यात्म विचार धारा वाले वातावरण का एक उदाहरण है। यह संवाद अध्यात्मी बनारसीदास से भी 100 वर्ष पूर्व की रचना है। इस रचना से राजस्थान प्रदेश में अध्यात्म दर्शन के उदय का पता चलता है।

इसके पश्चात् आगरा मे जो अध्यात्मियों का संगठन बना और आत्मा की खोज के उपाय ढूंढ़े जाने लगे तो उसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा और पहले कामां में और फिर सांगानेर में इन विचारधाराओ के व्यक्तियों का जोर बढ़ने लगा। एक वर्ग भट्टारकीय परम्पराओ से बंधा रहा तो दूसरा वर्ग उन परम्पराओं का दबे स्वर से विरोध करने लगा।

संवत् 1691 मे भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति सांगानेर में भट्टारक गादी पर अभिषिक्त हुये। ये बड़े जबरदस्त भट्टारक थे। बख्तराम साह ने अपने बुद्धि-विलास मे निम्न मध्य से की है—

नरेन्द्रकीर्ति नाम, पट इक सांगानेरि में।
भये महागुण धाम, सोलहसै इक्यानवे।

अध्यात्म विचारधारा जो पहले शैली के रूप मे अपना स्थान बना रही थी अब एक पंथ के रूप मे उभर कर सामने आयी और सबसे पहले उसने अपना नाम तेरहपंथ रखा। यह पथ सुधारवादी पंथ था तथा उसके द्वारा अनेक कुरीतियो का जोरदार विरोध किया। बख्तराम साह ने अपने मिथ्यात्व खण्डन में इस पथ का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भट्टारक आंबेरिके, नरेन्द्रकीर्ति नाम।
यह कुपंथ तिनकैंस मै, नयो चल्यो अघधाम।।

लेकिन बुद्धिविलास में तेरहपंथ का उदय संवत् 1683 में माना है —

इनहिं गछ में नीकिस्यौं नूतन तेरहपंथ।
सौरहसे तीयासिये सो सब जग आनंत।।

इस प्रकार तेरहपंथ के उदय के बारे में स्वयं पं० बख्तराम साह भी एक मत नही है। लेकिन इतना अवश्य है कि महाकवि बनारसीदास के जीवनकाल में ही अध्यात्म शैली ने एक पंथ का रूप धारण कर लिया और वही तेरहपंथ कहलाने लगा।

17वी शताब्दी मे सांगानेर जैन संस्कृति एवं धर्म का प्रमुखगढ़ माना जाता था। एक ओर यहां भट्टारकों का केन्द्र था, उनकी गादी थी तो दूसरी ओर उन्हीं के विरोध मे तेरहपथ का भी यही उदय हुआ था। इसी समय सांगानेर में अमरचन्द भावसा हुए। ये विशाल सपत्ति के स्वामी थे तथा अध्यात्म शैली के सदस्य थे। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के विचारो से असहमत अवश्य थे लेकिन उनकी शास्त्र सभा मे जाते और विभिन्न प्रश्न किया करते थे। एक ओर भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का प्रभाव एवं यश अपने उच्चतम शिखर पर था तो दूसरी ओर अमरचन्द भांवसा के पास भी अपार सम्पत्ति थी। उसकी विचारधारा वाले व्यक्तियों का अच्छा समूह था। दोनों मे परस्पर ईर्ष्या बढ़ने लगी लेकिन इतने पर भी अमरचन्द ने भट्टारक जी की शास्त्र सभा में जाना नही छोडा। एक दिन किसी प्रश्न पर दोनो मे वाद-विवाद छिड़ गया। वाद-विवाद से भ० नरेन्द्रकीर्ति को अपनी प्रतिष्ठा पर ठेस लगती देखी तो उन्होने अमरचन्द से तत्काल शास्त्र सभा मे से चले जाने को कहा और जब वह वहा से नहीं गया तो उसे जिनवानी का अविनय करने के अपराध में अपमानित करके मन्दिर से बाहर निकाल दिया।

इस काण्ड से तेरहपंथ को बल मिला और अमरचन्द भांवसा ने अपनी संपूर्ण शक्ति तेरहपंथ के विस्तार में तथा भट्टारकों के विरोध मे लगा दी। तेरहपथ विचारधारा जो अब तक बहुत शिथिलता से आगे बढ़ रही थी अब तेजी से बढ़ने लगी। अमरचन्द भांवसा तन, मन और धन से अपना संगठन मजबूत करने में लग गया।

तेरहपंथ जो पहले अध्यात्म शैली के नाम से प्रसिद्ध था, आगरा में उसका सबसे अधिक प्रचार था। लेकिन महाकवि बनारसीदास की मृत्यु के पश्चात् यह शैली राजस्थान की ओर बढ़ने लगी और पहले कामां मे तथा बाद में सांगानेर में आकर जम गयी। अब तो समाज के विद्वान भी दो वर्गों में बंट गये। एक वर्ग भट्टारकों की छत्रछाया में रहने लगा तो दूसरा वर्ग तेरहपंथ के गुणानुवाद गाने

लगा। इस तरह समाज दो विचारधाराओं में बंट गया और ढूंढाड प्रदेश दोनों विचारधाराओं का प्रमुख केन्द्र माना जाने लगा।

तेरहपंथ कवियों में जोधराज गोदीका के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जोधराज श्री अमरा भौंसा (अमरचन्द भांवसा) के पुत्र थे और हिन्दी गद्य-पद्य में समान अधिकार रखते थे। प्रवचनसार भाषा में इन्होंने तेरहपंथ को ही जिनेन्द्र भगवान का असली पन्थ बतलाया।

भट्टारक सम्प्रदाय वाले बीस पंथी कहलाने लगे तो अध्यात्म शैली वाले तेरहपंथी कहलाने लगे। भट्टारको का तो समाज पर पूर्ण प्रभुत्व था साथ ही उनको राज्य सरकार की ओर से भी सरक्षण प्राप्त था। भ० नरेन्द्रकीर्ति के पश्चात् भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (संवत् 1722–33), भट्टारक जगत्कीर्ति (संवत् 1733–71) भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति (1771–92) तथा भट्टारक महेन्द्रकीर्ति (संवत् 1792–1815) हुये और उन्होंने समाज पर अपना एक छत्र प्रभुत्व बनाये रखने का पूर्ण प्रयास किया। लेकिन कभी दबे हुये स्वर मे और कभी उभरे स्वरों मे उनका विरोध होने लगा। उसके द्वारा क्रियाकाण्डो को समाज ने पूर्ण रूप से अंगीकार नहीं किया। और धीरे-धीरे विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी और समर्थक धीरे-धीरे घटने लगे। कभी पन्चामृताभिषेक को लेकर, कभी खड़ी एव बैठ कर पूजा करने को लेकर समाज में अशान्ति मच जाती। पूरे ढूंढाड प्रदेश में तेरहपंथियों ने अपने अलग मन्दिर बनवा लिये। सभी मन्दिरो का एकसा रूप रहा। जयपुर के अतिरिक्त आमेर, सांगानेर, निवाई, सवाई माधोपुर, दौसा, बसवा, मालपुरा आदि अनेक नगरों एव गांवों में तेरहपंथी मन्दिर बनाये गये। गांवो मे तेरहपंथी नाम से जैनों का एक वर्ग विशेष बन गया। स्वयं जयपुर में भी दो पंचायती मन्दिर तेरहपंथियों के तथा दो बीस पंथियों के नाम से विभाजन हो गया।

प्रवचनसार भाषा में जोधराज गोदीका ने तेरहपंथ को निम्न प्रकार नमस्कार किया है—

> **कोई देवी खेतमाल बोद्यासनि मानत है**
> **केई सती पिग्र सीतला सो कहै मेरा है**
> **कोई कहै सावलो कबीर पद कोई गावे**
> **कोई दादू पथी होय परे मोह घेरा है।**
> **कोई ख्वाजे परमान कोई पंथी नामिग के**
> **कोई कहै महाबाहू महारुद्र, चेरा है**
> **याही बारा पंथ में भरमि रह्यो सबै लोक**
> **कहै जोध अहो जिन तेरापथी तेरा है।**

संवत् 1815 के पूर्व ही महापंडित टोडरमल अपने माता-पिता के साथ जोबनेर से जयपुर आकर रहने लगे। पंडित जी की जोबनेर में भट्टारकों के पास शिक्षा हुई थी और यहीं पर उन्होंने प्राकृत एवं संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया था। संवत् 1793 में सामुद्रिक शास्त्र की प्रतिलिपि टोडरमल जी के लिये पठनार्थ की गयी थी ऐसा उस पांडुलिपि की प्रशस्ति में उल्लेख मिलता है। जोबनेर कम से कम 50 वर्ष तक जैन संस्कृति एवं भट्टारकों का केन्द्र रहा था। पंडित टोडरमल जी को प्रारम्भ से ही भट्टारकों के पास शिक्षा दीक्षा के लिये रहना पड़ा। लेकिन पंडित जी उग्र विचारों के थे। धर्म में एवं धार्मिक क्रियाओं में जरा भी शिथिलता उन्हें सहन नहीं होती थी। संयोगवश वे जोबनेर से जयपुर आ गये और यहां की समाज का वातावरण देखा। उस समय उनकी उम्र कोई 30 वर्ष की होगी, युवावस्था थी। स्वाध्याय के बल पर शास्त्रों का अच्छा ज्ञान अर्जन कर रखा था। वक्तृत्व शैली इतनी आकर्षक थी कि लोग स्वतः ही उनको सुनने के लिये चले आते थे। साथ हा लेखनी में भी जादू था। जो कुछ लिखते थे वह ऐसा होता था कि तत्व ज्ञान का अपार भण्डार उसमें भरा होता था। इसीलिये टोडरमल जी जैसे ही जयपुर आकर रहने लगे और उन्होने शास्त्र सभा के माध्यम से अपने विचार प्रकट किये तत्कालीन समाज इन पर मुग्ध हो गया। फिर क्या था वे प्रतिदिन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर में शास्त्र प्रवचन करते और सैंकड़ों हजारों श्रोताओं को अपनी ओर आकृष्ट करते। उनकी ख्याति एवं यश चारों ओर फैलने लगा और राजस्थान से परे वह पंजाब, महाराष्ट्र एवं गुजरात तक फैल गया। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं देहली के तत्वाभिलाषी श्रावक उनके पास आने लगे। तत्कालीन भट्टारकों से भी इनका यश एवं ख्याति सहन नही हो सकी और वे भी पं० टोडरमल जी को अपना नहीं बना सके। पंडित जी भट्टारक परम्परा के विरोधी एवं तेरहपंथ के समर्थक माने जाने लगे। भट्टारकीय विचारों के विरोधी स्वतः ही उनके पास आने लगे और इस प्रकार जयपुर जैन समाज दो विचारधाराओ में विभक्त हो गया। तेरहपंथ समाज के प्रमुख महापंडित टोडरमल जी बन गये तथा बीसपंथ समाज भट्टारकों को अपना मार्गदर्शक मानने लगा।

इसी बीच में महापंडित टोडरमल जी को अर्थार्जन के लिये सिंघाणा जाना पड़ा, इस कारण जयपुर में कुछ समय के लिये समाज में परस्पर में विरोध एवं कट्टरता के वातावरण में शान्ति आयी।

सिंघाना प्रवास में टोडरमल जी ने गोमट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार की विस्तृत भाषा टीका सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका समाप्त की। पंडित जी ने साहित्य की ऐसी महती सेवा की जिसकी समानता अन्यत्र मिलना कठिन हैं। यहीं माई राय-मल्लजी आपसे आकर मिले वे पंडित जी को गोमटसार जैसे ग्रंथों की भाषा टीका

करते हुए देखकर मंत्र मुग्ध हो गये। भाई रायमल्ल जी ने आपको साहित्य सेवा में इसी प्रकार जुटे रहने के लिये प्रोत्साहित किया।

टोडरमल जी कुछ वर्ष सिंघाना रहने के पश्चात् वापिस जयपुर आ गये। और इससे तेरहपंथ के प्रचार-प्रसार मे पुन: वेग आया। जयपुर जैन समाज जो पहले से ही दो भागो में विभक्त हो गया था, उसमे और कट्टरता आई। तेरहपंथ के मुख्य प्रवक्ता थे महापंडित टोडरमल जी तथा बीसपंथ के प्रमुख प्रवक्ता भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति एवं फिर भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति एवं पंडित बख्तराम साह। बख्तराम साह कट्टर बीसपंथ पंडित थे जिनका मुख्य केन्द्र दिगम्बर जैन मन्दिर लश्कर था। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भी विद्वान थे। संस्कृत के ज्ञाता थे। भाषण पटु भी थे। इसीलिये पंडित टोडरमल जी के कारण दोनो ओर की बराबर की टक्कर थी। लेकिन तेरहपंथ की ओर समाज अधिक झुकी हुई थी।

संवत् 1821 (सन 1764) में जयपुर मे तेरहपंथ समाज की ओर से इन्द्र-ध्वज पूजा महोत्सव का विशाल रूप से आयोजन हुआ। भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में महोत्सव का जिस सुन्दर ढंग से वर्णन किया है उससे पता चलता है कि इस महोत्सव को सफल बनाने के लिये राज्य की ओर से भी पूरी सुविधाएं प्रदान की गयी थी। भाई रायमल्ल ने इस उत्सव की प्रशंसा में लिखा है—"ऐ उछव फेरि इस पर्याय में देखना दुर्लभ छै"

जयपुर राज्य के तत्कालीन दीवान बालचन्द छाबड़ा एवं रतनचन्द्र दोनो ही की पंडित जी पर विशेष श्रद्धा थी। यद्यपि वे भट्टारको के भी प्रशंसक थे। किन्तु विद्वत्ता की दृष्टि से महापडित टोडरमल जी से विशेष अनुराग था। टोडरमल जी की विद्वत्ता के कारण कुछ जैनेतर विद्वान भी उनसे नाराज थे। संवत् 1824 में लगभग जयपुर पर महाराजा माधोसिंह (प्रथम) का शासन था। जैनेतर पंडितो ने राजा पर जादू कर रखा था तथा जैनो से साम्प्रदायिक द्वेषता थी। जैन मन्दिरों को शैव मन्दिर में बदल देना आसान बात हो गयी थी। कभी शैव पंडितों की बन आती थी और कभी जनमत उनके खिलाफ बन जाता। विचारों की इस लड़ाई में पंडित टोडरमल जी को प्रथम निशाना बनाया गया। एक ओर महाराजा माधोसिंह को बहकाकर उनको हाथी के पांव के नीचे कुचला दिया गया। यद्यपि उस समय दो-दो जैन दीवान थे। बड़े-बड़े अधिकारी भी जैन थे लेकिन वे उफ भी नहीं कर सके। महाराजा का इतना आतंक था कि तत्कालीन प्रमुख पंडित जयचन्द.जी छाबड़ा जो टोडरमल जी के भक्त थे उन्हें अपना गुरु मानते थे वे भी अपनेकिसी ग्रंथ में टोडर मल जी के बलिदान का उल्लेख नही कर पाये। पता नही कैसे पंडित बख्तराम साह अपने बुद्धि विलास में कुछ पंक्तियां लिखने का साहस कर सके।

तेरहपंथ की मान्यताएं

पं० पन्नालाल ने तेरहपंथ खण्डन नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "पूर्वरीति तेरह थी" तिनको उठा विपरीत चले, तातैं तेरापन्थ भये, तेरह पूर्व किसी ताका समाधान—

दस दिक्‌पाल उथापि 1 पुष्चरणां नहीं लावै 2 ।
केसर चरणा नहीं धरै 3, पुष्पपूजा फुनि त्यागै 4 ।।
दीपक अर्चा छांडि 5, आसिका छुमाल न करही 7 ।
जिन न्हावणा ना करै 8, रात्रिपूजा परिहरही 9 ।।
जिनशासन देव्यां तजी 10, राध्यौ अन्न चढ़ौड़े नहीं 11 ।।
फल न चढ़ावे हरित फुनि 12. बैठिर पूजा करैं नहीं 13
ये तेरे उरधारि पंथ तेरै उर थापे ।
जिनशास्त्र सूत्र सिद्धांत मांहिला वचन उथप्पे ।।

संवत् 1749 में कामां वालों ने सांगानेर के भाइयों को एक चिट्ठी लिखी थी । इसमें कामां वालों ने लिखा है कि हमने इतनी बातें छोड़ दी है सो आप भी छोड़ देना—जिनचरणों में केसर लगाना, बैठकर पूजा करना, चैत्यालय भंडार रखना, प्रभू को जलौट पर रखकर कलश ढोलना, क्षेत्रपाल और नव ग्रहों की पूजा करना, मन्दिर में जुआ खेलना और पंखे से हवा करना, प्रभु की माला लेना, मन्दिर में भोजकों को आने देना, भोजकों द्वारा बाजे बजवाना, रांधा हुआ अनाज चढ़ाना, थालौड़ी करना, मन्दिर में जीमन करना, रात्रि को पूजन करना, रथयात्रा निकालना, मन्दिर में सोना, आदि ।

आगे चल कर तेरहपंथी अपने आपको शुद्धाम्नायी कहने लगे । लेकिन विगत 100 वर्षों में जिस प्रकार धीरे-धीरे धार्मिक असहिष्णुता कम हुई है, तेरहपंथ और बीस पंथ का मतभेद भी कम हुआ है और अब ऐसा लगता है कि 21वी शताब्दी में दोनों पंथों में मतभेद समाप्त हो जावेंगे ।

गुमान पंथ

महापंडित टोडरमल जी के पुत्र गुमानीराम ने एक नये पंथ को जन्म दिया जो उन्हीं के नाम से—गुमान पंथ नाम से प्रसिद्ध हुआ । उसका प्रमुख उद्देश्य मंदिर में, पूजादि क्रियाओं में पूर्ण शुद्धता लाना था । इस पंथ की स्थापना कब हुई थी यह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता लेकिन उनकी मृत्यु संवत् 1853 में हुई

थी इसलिये यह तो कहा जा सकता है कि गुमान पंथ का प्रचलन इसके पूर्व ही हो गया था। इस आम्नाय का प्रचार बहुत जल्दी हुआ। जयपुर के अतिरिक्त भावता, मारोठ, अजमेर, लश्कर आदि में गुमानपंथ के मन्दिर बन गये और उसमें शुद्धता-पूर्वक पूजा पाठ होने लगे। लेकिन समाज तीन वर्गों में बीसपंथ, तेरहपंथ एव गुमानपंथ में बंट गया और वे एक-दूसरे से लड़ने लगे। तथा एक दूसरे पर दोषा-रोपण होने लगा। लेकिन गुमानपंथ में शुद्धता के नाम पर अधिक आडम्बर था तथा धर्मसाधना के लिये दिन भर चौके एवं शुद्धि मे रहने के कारण प्रारम्भ में तो यह पंथ सबको अच्छा लगा और अपने को धर्मात्मा सिद्ध करने के लिये चौके चूल्हे एवं स्पृश्य अस्पृश्य में ही लगे रहे। दीवान शिवजीलाल जी स्वयं अपने हाथो से मन्दिर मे झाड़ू लगाते, पानी लाते। इसके पश्चात् गुमानपंथ का प्रचार तो बढ़ने लगा लेकिन उसमे तेरहपंथियों को भी ईर्ष्या होने लगी और वे भी गुमानपंथ के प्रचार में रोड़ा अटकाने लगे। जयपुर शहर के बाहर यद्यपि मन्दिरों का निर्माण तो हो गया लेकिन धीरे-धीरे गुमानपंथ की क्रियाओ में शिथिलता आ गयी और वे भी धीरे-धीरे नाम मात्र के गुमानपंथी रह गये। गुमानपंथ ने धार्मिक क्रियाओं में निम्न सुधार किये—

1. सूर्योदय होने से पहले मन्दिरजी की कोई भी क्रिया न करें।
2. सप्त व्यसन का त्यागी हो वही श्रीजी का स्पर्श करे।
3. पूजन खड़े खड़े करे।
4. द्रव्य चढाते समय अग्निसात् करे तो स्वाहा बोले अन्यथा अमुक द्रव्य अर्चयामि बोले।
5. चमड़े व ऊनी चीजें मन्दिर में न ले जावें।
6. माली व्यास सेवक आदि छतरी से आगे प्रवेश न करें।
7. मन्दिरजी के आंगन में सफाई कार्य, पूजा के बर्तन मांजना, बिछायत बिछाना आदि सारा कार्य श्रावक अपने हाथ से करें।
8. गंधोदक को लगाने के बाद हाथ धोना।
9. जिन प्रतिमा के चरणों पर चन्दन केसर आदि चर्चित न करना।
10. रात्रि में जिन मूर्ति के पास तथा मन्दिर में दीपक न जलावें।
11. केसर को पूजा में नहीं लेना केवल चन्दन घिसकर ही काम लेना।
12. पूजा में नारियल बादाम आदि की गुली चढ़ाना अर्थात् अखण्ड फल न चढ़ाना।

13. पूजा के द्रव्य को अग्नि में क्षेपन कर देना, माली व्यास आदि को देने से निर्माल्य का पाप लगता है ।

बीजावर्गीय खण्डेलवाल जैन

वर्तमान में तो बीजावर्गीय समाज एक स्वतन्त्र समाज है तथा वैष्णव धर्मानुयायी है । लेकिन अतीत में यह जाति भी खण्डेलवाल जैन समाज का ही एक अंग थी तथा इस समाज का एक भाग दिगम्बर धर्मानुयायी था । इस सम्बन्ध में हमें संवत् 1602 की एक प्रशस्ति मिली है जिसमें "बीजावरग्यन्वये अजमेरा माहरोठ्या गोत्रे" का उल्लेख हुआ है । यह अजमेरा गोत्र खण्डेलवाल जैन जाति का एक गोत्र है । माहरोठ्या सम्भवतः मारोठ क्षेत्र के होने के कारण लिखा होगा । वैसे गाँव का नाम दावडदू वा लिखा है तथा जिन पूजा पुरन्दर साह कीला ने पाण्डव-पुराण की प्रतिलिपि करवा कर मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य कमलकीर्ति को भेंट दी थी । पूरी प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

संवत् 1602 वर्षे माघमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी तिथौ दावडदू वा शुभस्थाने प्रोहितद्वारकेशरप्रतापे श्री मूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तत् शिष्यमंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्रदेवास्तदाम्नाये बीजावरग्यन्वये अजमेरा माहरोठ्यागोत्रे साह सकत् भार्या नाऊ तत् पुत्राश्चावार: प्रथम साह धरणि द्वितीय साह धर्मसी तृतीय साह कर्मसी चतुर्थ साह आसा । साह धरणि भार्या हरखू तत्पुत्रौ द्वौ । प्रथम साह बील्हा द्वितीय संघभारधुरन्धर जिणपूजापुरन्दर साह कील्हा प्रथम भार्या पूरा द्वितीय भार्या लाड़ी । साह हठ भार्या चत्वार: प्रथम सीता द्वितीय लस्श्री तृतीय तोल्ही चतुर्थ मोल्ही पुत्र चत्वार: साह बोहिथ रामादास महेश दामोदर एतेषां मध्ये साह कीलाख्येन इदं पांडवपुराणकं शास्त्रं लिखाप्य मंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्र शिष्य कमलकीर्तिये दत्तं ।[1]

स्थानकवासी-तेरहपंथी साधुओं का प्रभाव

दिगम्बर जैन समाज मे तेरहपंथ के उदयकाल मे जबर्दस्त एक धार्मिक क्रांति फैली और उस समय जोधपुर के पश्चिमी हिस्से तथा बीकानेर राज्य के निवासी दिगम्बर जैन खण्डेलवालों में भट्टारकों की मान्यता समाप्त कर दी गई । दिगम्बर जैन साधुओं का अभाव था तथा श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनिगणों का उस प्रान्त में पूर्ण जमाव था । इस कारण खण्डेलवाल जैन बन्धु उन साधुओं के

1. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल पृष्ठ संख्या 127 ।

प्रति आकृष्ट हो गये। ऐसे समय में ही बीकानेर राज्यान्तर्गत "जसरासर" ग्राम के खण्डेलवाल दिगम्बर जैनकुलीय रेखराम जी बाकलीवाल के यहाँ संवत् 1883 मे रामचन्द्र जी का जन्म हुआ। मालूम पड़ता है कि इनके पिता स्थानकवासी मुनि जयमल जी महाराज के सम्प्रदायानुयायी थे। इसलिए रामचन्द्र जी की बाल दीक्षा मात्र 9 वर्ष की आयु में संवत् 1900 के वैसाख सुदी दसमी के दिन मुनि सबलदास जी के द्वारा हुई और ये उनके पट्ट शिष्य हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान हुए। इनके द्वारा "अमृतरस संग्रह" नामक ग्रन्थ तथा और भी ग्रन्थ रचे गये। स्थानकवासी सम्प्रदाय में इनकी काफी मान्यता हुई।[1]

स्थानकवासी प्रसन्नचन्द्र जी

ये मेन्सर गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामसुख एवं माता का नाम केसरबाई था। इन्होंने स्थानकवासी मुनि रामचन्द्र जी से संवत् 1920 में स्थानक सम्प्रदाय मे दीक्षा ली थी। ये भी अच्छे विद्वान थे। इनके अतिरिक्त रामसुख जी कासलोवाल आदि और भी खण्डेलवाल श्रावकों ने तेरहपंथी साधु जीवन अपना लिया।

इससे पता चलता है कि मारवाड़ में दिगम्बर जैन मुनियो भट्टारकों का प्रभाव होने के कारण वे श्वेताम्बर तेरहपंथ की ओर झुकने लगे थे।

राम-स्नेही सम्प्रदाय की रेण शाखा के आचार्य हरखाराम जी

हरखाराम जी का जन्म नागौर में विक्रम संवत् 1803 भाद्रपद कृष्णा द्वादशी के दिन दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जाति में हुआ था। आपके पिता विजयराम जी एवं माता बहाला देवी थी।

संवत् 1775 मे विजयराम जी ने श्री दरियाव महाराज से राम मन्त्र ग्रहण कर परम श्रद्धालु राम-स्नेही भक्त बन गये थे। आपके पाँच पुत्र थे जिनमे सबसे छोटे हरखाराम जी आचार्य दरियाव महाराज के शुभाशीर्वाद से परम भागवत तपोमूर्ति हुए।

श्री हरखाराम जी महाराज अखण्ड भीष्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर राम भजन की साधना में मग्न हो गये थे। उनके परिवार के शेष सदस्य दिगम्बर जैन धर्मानुयायी ही रहे तथा समय-समय पर हरखाराम जी को राम-राम छोड़ने तथा णमोकार मन्त्र का जाप करने का आग्रह करते रहे।[2]

---

1. दिव्य ध्वनि, वर्ष 2, अंक 8।
2. सन्मति सन्देश, जनवरी 1966।

सामाजिक रीति-रिवाज

प्रत्येक समाज का संचालन उसके रीति-रिवाजों के अनुसार होता है। ये रीति-रिवाज समय-समय पर बदलते भी रहते हैं तथा समय परिवर्तन के अनुसार कभी इनमें स्वतः ही परिवर्तन आ जाता है और कभी समाज द्वारा किया जाता है। जब पंचायती प्रथा थी। पंचायतों को शासन की ओर से मान्यता प्राप्त थी तब पंचायती रीति-रिवाजों के विरुद्ध जाना सहज काम नहीं था। लेकिन जब से पंचायती प्रथा समाप्त हो गयी है तब से रीति-रिवाजों की पकड़ नहीं रही है तथा समाज मनमाने व्यवहार करने लगा है। फिर भी रीति-रिवाजों के बल पर ही समाज टिका हुआ है। इसलिये उनका जानना भी आवश्यक है। हम यहाँ ऐसे ही रीति-रिवाजों का वर्णन कर रहे हैं जो कभी पूरी तरह पालन किये जाते थे और आज भी किसी न किसी रूप में उनकी मान्यता है।

1. आगरणी (परोजन, साध या आठवाँ)

बच्चे में धार्मिक संस्कार पड़े उसके लिए गर्भावस्था के सातवें महीने में गर्भवती स्त्री को उल्लास पूर्वक मन्दिर में ले जाते हैं। उसके पीहर से कपड़ा तथा मिठाई इत्यादि आने का रिवाज है। इस अवसर पर पहले घुघरी, कसार तथा कांचली पंचायती में बँटती थी। इस प्रथा को आठवाँ कहते है। वर्तमान में आठवें की प्रथा प्रायः बन्द हो गयी है।

2. मासवां (दशोटन या जलवा)

पिहर से नवजात शिशु के लिए कपड़ा, खिलौना और बेटी जंवाई के लिए बेश तथा शिरोपांव आता है तथा पंचायती मे नारियल बांटे जाते है। जीमनवार होती है। समाज में जब वैष्णवी परिपाटी चलती थी तो उस समय कुंआ पूजने का रिवाज था लेकिन आजकल यह परिपाटी उठ गई तथा मन्दिर में जाने का रिवाज हो गया। नवजात शिशु को मन्दिर में णमोकार मंत्र सुना कर उसे जैन संस्कार से संस्कारित किया जाता है।

3. जामना (बेश)

बच्चा होने के बाद जब बेटी पहले-पहले अपने पीहर आती है तथा कुछ दिनो के पश्चात् जब वापस विदा होने लगती है उस समय बेटी-जंवाई तथा उसके समस्त कुटुम्बियों को बेश शिरोपाव दिये जाते हैं। शक्ति के अनुसार सोना-चाँदी तथा नकदी रुपये भी देते हैं।

4. सगाई (मंगनी)

पुत्र और पुत्री का सम्बन्ध निश्चित हो जावे उस प्रथा को सगाई कहते हैं।

पुराने जमाने में लड़कियों का रुपया लेने का समाज में प्रचलन था। क्योंकि लड़कियों की संख्या लड़कों से कम थी। आजकल लड़कों का रुपया लेने का प्रचलन समाज में है। पुराने जमाने में चार गोत्र टाल कर सगाई की जाती थी। आजकल दो गोत्र भी टाल कर तथा कहीं-कहीं एक गोत्र भी टाल कर सगाई करने का रिवाज हो गया है। सगाई के समय 1/– रुपया मुद्दे का पंचों के सामने दिया है। दोनों पक्षों से 2/– (दो-दो) रुपया लेकर पंचायती की बही में नाम और गोत्रों का उल्लेख दर्ज कर लिया जाता है।

5. टीका

लड़की पक्ष वालों के यहाँ से लड़के का कपड़ा तथा उसके छोटे भाई-बहनों का कपड़ा, जेवर तथा फल, मिठाई तथा नकद रुपया आता है। इस प्रथा को टीका कहते हैं। उस समय पंचों को जीमनवार या नाश्ता कराया जाता है और मिलनी हुआ करती है। लड़की के भाई-भतीजे अगर टीका के समय में उपस्थित रहते हैं तो लड़के वाला उनको कपड़े तथा नकदी पैसे म विदाई करते है।

6. चौकटी कोथली

लडका पक्ष से टीका होने के बाद लड़की के लिए कपडे, जेवर, फल, मिठाई तथा उसके छोटे भाई-बहनों के लिए कपड़े भेजने का रिवाज है, उसे चौकटी कोथली कहते है।

7. सिंझारा (चतड़ा चौथ, दीपावली हटरी, सावन की तीज, भादवा की बड़ी तीज और तीज रोट)

सगाई और विवाह के बीच उपरोक्त त्यौहार आते है। उस समय लड़का पक्ष से लड़की के लिए कपडे, फल और मिठाई भेजने का रिवाज है। ब्याह हो जाने के बाद इन त्यौहारो पर लड़की पक्ष वाला अपनी बेटी के लिए उपरोक्त सामान भेजता है।

8. मोक्ष सप्तमी (मोक्ष साते)

कन्या मोक्ष सप्तमी का उपवास करती है। उस समय सिंझारा के जैसा ही सामान का आदान-प्रदान होता है।

9. लगन (छांटना, पीली चिट्ठी)

लड़की वाले के यहाँ जिम रोज ब्याह हाथ में लेते हैं तथा पीला चावल होता है। उस रोज पंचों के द्वारा एक पत्रिका लड़के वालों के नाम से लिखी जाती है। उसमें पीला चावल तथा रुपया नकद रखकर नाई के द्वारा (आजकल

रजिस्ट्री) लड़के वाले के यहाँ जाते हैं। लड़के वाले के यहाँ चिट्ठी पहुंचने के बाद पीला चावल का दस्तूर होता है। पीली चिट्ठी लड़के को तिलक करके उसके हाथ में दे दी जाती है तथा वहाँ के पंच लड़की वाले के पास पीली चिट्ठी का प्रत्युत्तर उसी नाई के मार्फत या रजिस्ट्री से भेजते हैं। नाई, व्यास की उचित विदाई तथा ग्रमल पानी के लिए रुपये देकर की जाती है।

10. गुड बांटना

ब्याह हाथ में लेने के रोज से लड़का ग्रौर लड़की वालों के यहाँ से ग्रपने-ग्रपने गाँव की पंचायती में गुड बांटा जाता है।

11. बत्तीसी

बहन ग्रपने भाई को ब्याह का निमंत्रण देने ग्रपने पिहर जाती है। उस समय 16 बतासे, 16 सुपारी, 16 छुहाड़े, 16 बादाम तथा 16 गड़ी गोले लेकर जाती है। तिलक लगाकर भाई-भतीजे को नकद रुपये देती है। इस प्रथा को बत्तीसी कहते हैं।

12. चबीनी (कवलजोड़)

भाई जब बहन के गाँव में पहुंच कर यथा योग्य स्थान पर ठहर जाता है तब बहन भाई के डेरे पर गाँव की ग्रौरतो तथा परिवार के साथ जाती है। वहाँ पर भाई चुनरी पहनाकर तथा बहन का मुँह मीठा कर विदा कर देता है।

13. माहिरा (मामेरा, मायरा, भात)

भाई ग्रपने बहन बहनोई ब्याह होने वाले लड़का या लडकी तथा उनके समस्त परिवार के लिए बेश तथा सिरोपांव नकद रुपये लेकर ग्राता है। लड़की की शादी हो तो नथ, मांग टीका (बोर), बिछुरी ग्रौर कांवला देता है। बहन की ग्रोर से भाइयों ग्रौर भौजाइयो को बेश तथा सिरोपांव दिये जाते हैं, जिसे थामा का कहते है। बेश ग्रोड़ने बाद बहन भाई के मुँह में शरबत का लौटा लगाती है। चावल तथा गुड की थाली भाई को दी जाती है। बहन ग्रारती करती है तथा समय भाई नगद रुपये बहन की थाली में देता इस प्रथा को मायरा कहते हैं।

14. बान (छोटा बिनायका)

लड़के या लड़की को तेल ग्रौर हल्दी जिस रोज से लगाई जाती है उसको बान कहते है। बान हमेशा मुहूर्त में बैठना चाहिए। वैवाहिक कार्यक्रम बान पर ही ग्राधारित है। ग्रगर ग्रशुद्ध समय में बैठ जावे तो वैवाहिक कार्यक्रमों में ग्रनेक उपद्रव
रोज गाँव में घुघरी तथा बान के लड्डू बांटने की प्रथा है।

15. बिन्दोरी

बान बैठने के रोज से लड़का या लड़की को अच्छी तरह सजाकर सवारी मे बैठाकर बारात आने या जाने के पहले तक गाँव मे रोजाना शाम को घुमाया जाता है। उसमें बाजा, रोशनी तथा परिवार के लोग शामिल होते हैं। अब यह प्रथा धीरे-धीरे कम हो रही है।

16. सांकड़ी (बड़ा बिनायक या कंगन डोरा, पांचा बाना)

तेरहपथ के उदय होने के पहले हर श्रावको के घर में अपनी-अपनी कुल-देवियो का स्थान बनाया हुआ रहता था। उसी स्थान पर लडके या लडकी को बैठाकर पूजन कराया जाता तथा रक्षा-सूत्र बाँधा जाता था तथा परिवार के लोगों को उसी दिन से भोजन विवाह समाप्ति पर्यन्त कराया जाता था।

17 चाक पूजन (कुम्हार के यहाँ से बर्तन लाना)

लड़की के ब्याह में मंडप बाँधने के लिए बर्तनो की जरूरत पड़ती है। स्त्रियाँ कुम्हार के यहाँ जाकर बर्तन निकलवाती कुम्हार के तिलक लगाती भोजन सामग्री तथा नकद रुपये देकर उसके यहाँ से बर्तनो को जेवर पहना कर गाजे-बाजे के साथ अपने घर बर्तनो को लेकर आती, इस प्रथा का नाम चाक पूजन था अब यह प्रथा प्रायः मिट गई है। कहीं-कहीं कुम्हार को घर पर ही बुलाकर तथा घर ही पर उससे बर्तन इत्यादि लेकर दस्तूर कर लेते है।

18. मेल (भात की जीमनवार, गाँव-गरा)

लड़के के ब्याह मे बारात चढ़ने के पहले रोज अपने परिवार, मित्रों तथा सगे-सम्बन्धी परिवारों को आमन्त्रित कर भोजन कराया जाता था। इस प्रथा को मेल की जीमनवार कहते है। लडकी के ब्याह मे बारात जाने के दूसरे दिन लड़की वाला अपने परिवार तथा इष्ट मित्रो को निमंत्रण देकर भोजन कराता है। उसे गाँव-गरा या भात की जीमनवार कहते है।

19. निकासी (घुड़चढ़ी या घोड़ी पूजना)

लड़के को पीठी इत्यादि लगाकर स्नान कराया जाता है। उसके बाद लड़के का मामा स्नान के पाटे पर से उतारता है। लड़के के बहनोई उसे साफा या पगड़ी बंधवाते है। लड़के को घोड़ी पर बैठाते है। परिवार का औरतें लावाछना लेती है, भौजाइयाँ काजल लगाती हैं। माँ दूध पिलाने की रस्म करती है। उसके बाद परिवार और पंच लोग लड़के को लेकर मन्दिर जाते है। वहाँ से लड़के को किसी योग्य स्थान पर (घर से अलग) ठहरा दिया जाता है। लड़की के ब्याह में यह रस्म नहीं होती है।

20. खर्ची देना

निकासी होने के बाद लड़के को जिस योग्य स्थान पर ठहराया जाता है वहाँ माँ, बहिन तथा परिवार की महिलाएँ जाकर लड़के को रुपये-पैसे देती हैं। इस प्रथा का नाम खर्ची देना है।

21. आगुनी

लड़की वाले के गाँव में बारात पहुंचने के बाद बारात में आया हुआ नाई लड़की वाले के यहाँ जाता है तथा उसे पगड़ी तथा रुपया देकर बिदा किया जाता है। यह बारात आने की प्रथम सूचना होती है। बड़े-बड़े शहरों में यह प्रथा प्रायः बन्द हो गयी है।

22 लाजू-खाजू

जनवासे में बारात को ठहर जाने के बाद लड़का पक्ष वाले अपने जवाई अथवा बहनोई को लड़की वाले के यहाँ भेजते थे। यह प्रथा इसलिए थी कि लड़की वाले को सूचना हो जाती है कि बारात योग्य स्थान पर ठहर गयी। सूचना देने वाले जवाई या बहनोई को मेंहदी की छाप उसकी पीठ पर लगाते तथा रुपये नारीयल देकर उसे बिदा करते थे।

23 जबीरणो

बारात को योग्य स्थान मे ठहर जाने के बाद बुंदिया तथा भूंगड़ा बारातियो के जलपान के लिए जनमासे में भेज दिया जाता था तथा बाराती उसे आनन्दपूर्वक खाते थे तथा शाम का भोजन लड़का पक्ष वाला ही कराता था। आजकल यह प्रथा बन्द हो गयी। अब तो बारात के खाने-पीने तथा नाश्ते का पूरा प्रबन्ध लड़की वाला ही करता है।

24 बारात ठहरना

पुराने जमाने में बारात छः रोज, उसके बाद पाँच रोज आज से तीस वर्ष पहले तक चार रोज बाद, 3 रोज तथा अब 2 दिन ठहरती है। बारात जब छः रोज ठहरती थी, तब पहले रोज को मुकाम कहते थे, दूसरे दिन बारात की शोभा-यात्रा तोरण सामेला होता था। तीसरे रोज वैवाहिक कार्यक्रम यानि फेरा होता था। चौथे रोज सोलावना ध्वजा होती थी। पाँचवें रोज जुवा-जुई तथा बढ़ार (सज्जन कोठ) होती थी। छठे रोज पहरावनी होकर बारात बिदा होती थी। जैसे-जैसे बारात ठहरने का समय कम होता गया, वैसे-वैसे ये रस्म और रिवाज कम समय में होने लगे या कई रीति-रिवाज उठा दिये गये।

25. म्रलुफा (सामेला तथा सिवाला, तोरण)

बारात की शोभा यात्रा निकालने के बाद लडकी वाले के घर के नजदीक पहुचने पर सड़क किनारे बिछायत कर दी जाती थी तथा वहीं पर मुंग, मोठ, पेठा, जुवाली, पापर तथा कलश पट्टी लाकर लड़की पक्ष के लोग पंचों के साथ-साथ में स्त्रियाँ भी गालियाँ गाती हुई म्राकर बारातियो के बीच मे बैठती तथा लड़की की बहन या भुम्रा बीन्द के बहनोई या फूफा को लेहरीया बधाती थी । यह प्रथा संवत् 1950 के लगभग प्रचलित थी । उसके बाद लड़को के बहनोई या फूफा के द्वारा लेहरिया बंधाना शुरू हो गया । सामेला में लड़के के सबसे बड़े कुटुम्बी को राम-रामी (मिलनी) का रुपया तथा सामेला का रुपया दिया जाता है । म्रब यह प्रथा जनवासे में ही कर दी जाती है म्रौर उसके बाद शोभा यात्रा निकलती है ।

26. म्राड़ बिन्दायक

शोभा यात्रा निकलने के पहले लडकी घोड़ी पर चढ़कर जनवासे म्राया करती थी । वहाँ उसे म्रोढनी म्रोढ़ाई जाती तथा गोद भरी जाती थी । इस प्रथा का रहस्य यह था कि शादी होने से पहले लड़की को उसके होने वाले ससुर म्रादि म्रच्छी तरह देख ले ।

27. छाणी छोल

शोभा यात्रा निकलने के पहले लडकी म्रपनी सहेलियो के साथ गाँव के बहार जाती थी तथा वहाँ पर लड़का (बीन्द) म्रपने इष्ट मित्रो के साथ जाता था म्रौर लड़की की गोद भरता था । इस प्रथा का रहस्य यह था कि शादी होने के पहले लड़का लडकी म्रापस में देखा देखी कर लें ।

28. ऊंची पीठी

फेरों मे म्राने से पहले लड़की को पीठी लगाकर स्नान कराया जाता था म्रौर उसमे से बची हुई पीठी लेकर म्रौरतें गीत गाती हुई जनवासे म्राती थी म्रौर लड़के को वही पीठी लगाकर स्नान करती थी । इस प्रथा का रहस्य यह था कि ब्याह होने के पहले लड़के के म्रंगोपाग को म्रच्छी तरह देख लिया जावे ।

29. खावका

पतासा, मेवा, मेहंदी, मोली, जुवाली तथा कन्या का लाया हुम्रा जेवर फेरों के पहले कन्या पक्ष वालों के यहाँ भेज दिया जाता है । पुराने समय में इस रिवाज के लिए एक दिन का समय निश्चित था तथा 51 थाल या 61 थाल या कहीं-कहीं 101 थालों से इस रिवाज को करते थे । जो म्रब सिमट कर 5 थालों पर म्रा गया ।

30. तोरण

सामेला होने के बाद लड़का लड़की वाले के दरवाजे पर घोडी की सवारी पर चढ़कर ग्राता है वहां पर ग्रौरतें लावा-छना लेती हैं तथा साले की बहू बीन्द के काजल लगाती है । लड़की ग्रपनी सहेलियो के साथ उसी भीड में ग्राकर चांवल के लड्डूग्रों से बीन्द को मारती थी । ग्रब यह प्रथा बन्द हो गयी है । नीम की छड़ी से बीन्द तोरण को मारता है तथा वह तोरण कन्या पक्ष वालों के दरवाजे पर लटका दिया जाता है ।

31. पाणिग्रहण (फेरा या हथलेवा)

पुराने समय में सारे वैवाहिक कार्यक्रम ब्राह्मण पण्डितों के द्वारा पद्धति वैष्णव पद्धति से सम्पन्न होते थे । जैन पद्धति से सर्वप्रथम ग्रजमेर निवासी राय बहादुर सेठ मूलचन्द सोनी ने ग्रपने सुपुत्र कुवर नेमिचन्द जी का विवाह संवत् 1948 में कराया था । उसके बाद धीरे-धीरे जैन पद्धति चालू हुई । फेरों के बाद लडकी पक्ष वाले वीन्द के हाथ में नगद तथा जेवर इत्यादि देकर लड़की का हाथ छुड़वाते है । इस प्रथा को हथलेवा बोलते है ।

32 कंवर कलेवा

फेरो के दूसरे रोज सुबह वर तथा उससे छोटे भाई, बहिन, जवाई ग्रादि को बुलाकर कलेवा कराया जाता है । उस समय घर की ग्रौरते दूल्हे के मुंह में ग्रास देती है तथा बदले में रुपया या जेवर उसके हाथ मे देती है ।

33 सोलावना (ध्वजा या मन्दिर जी का दस्तूर)

फेरो के सुबह बाराती बीन्द को लेकर मंदिर ग्राते हैं तथा लड़की पक्ष वाले भी ग्रपने गाँव के पचो को लेकर ग्राते है ग्रौर प्रबन्धानुसार लड़का पक्ष वाले मंदिर जी में उपकरण, ग्रासनौत, पुछारा तथा नकद भेट चढाते है । पुराने जमाने में ध्वजा चढ़ती थी तथा गज के भाव से ध्वजा का दाम कई दरों में निश्चित रहता था । उदाहरणार्थ—दस रुपये गज से 100/– रुपये गज तक का होता था ग्रौर मंदिर में ग्राने के बाद गाँव के पंच लड़के के ग्रभिभावक से यह पूछते थे कि किस दर की कितने गज की ध्वजा ग्रापको चढ़ानी है । उसी हिसाब से रुपया जोड़कर ले लिया जाता था । ग्रब यह प्रथा लुप्त प्राय: हो गई है ।

34. दूधापाती तथा जुग्रा-जुई

फेरों के वाद उसी मण्डप के नीचे लड़के ग्रौर लड़की को बैठाकर ग्रौरतें दोनों के हाथ की ताकत का जायजा लेती है तथा कई प्रकार के खेल करवाती थी ।

हाथ में बंधे हुये रक्षा सूत्र को एक दूसरे से खुलवा कर बीन्द का बीन्दनी को और बीन्दनी का बीन्द को बंधवा दिया जाता है । इस प्रथा को जुआ-जुई कहते हैं । शाम को भोजनोपरान्त बीन्द को उच्चासन पर बैठा कर औरतें नाना प्रकार के स्वर लहरी के गीत बीन्द को सुनाती थी तथा लड़की माँ दूध पिलाती थी तथा रुपये इत्यादि भेंट दिये जाते थे । इस प्रथा को दूधावाती कहते है ।

35. तरणी खुलाई

जिस मंडप में वैवाहिक कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं, उस मंडप को बीन्द के हाथ में रुपया नारियल देकर खुलवा दिया जाता है ।

36. कोरा भात

लडकी पक्ष वाले लडका पक्ष वालो को मिठाई, आटा, दाल, चावल, मंगोरी, पापड़ तथा रसोई के काम में आने वाले सब प्रकार के बर्तन कोठी इत्यादि सामान भेंट करते थे । अब यह प्रथा नही के बराबर है ।

37 बढ़ार (सज्जन गोठ, मिजमानी)

विवाहोपलक्ष्य मे जो भोजन व्यवस्थित रूप से सब बारातियों के साथ बीन्द, अभिभावक करते हैं, उसे बढार कहा जाता है । इस समय लडकी पक्ष वाला सारे बारातियों को जिमनी के रुपये देता है । पूर्व भारत मे इस प्रथा के अनुसार चौक मे बैठने वाले सज्जनो को ही एक रुपये के हिसाब से जिमनी दी जाती है ।

38. पग छुपाई

बीन्द के सबसे बड़े अभिभावक को बढ़ार हो जाने के बाद उच्चासन पर बैठाकर के नाई या नौकर के द्वारा पैर धुलवाया जाता है तथा नाई को अभिभावक के द्वारा कुछ नकद रुपये दिया जाता है ।

39 पहरावणी

बारातियो को लडकी पक्ष वाला नकद रुपये, कपड़े, बर्तन इत्यादि सामानो से सत्कार कर विदा करता है । इस प्रथा को पहरावणी कहते हैं । इसमे बारातियो के साथ गाँव के लोग हंसी-मजाक भी करते हैं । पुराने समय मे बारातियो के पहरावनी हो जाने के बाद लडकी की माँ लडके के पिता को स्त्रियो के कपड़े पहनाती और उसके काजल टीकी लगा कर आईना दिखाती थी और उस समय बहुत बेहूदा हँसी-मजाक होता था । अब यह रिवाज पुरुषो ने करना शुरू कर दिया है ।

40. विदा (बींद जुहारी)

लड़की को ब्याह के बाद आखिरी विदा देने की रिवाज को जुहारी कहते हैं। लडकी पक्ष का सारा परिवार एक रुपया नारियल तथा बीन्द को तिलक लगा कर देते है।

41. लेए (बहिन-बेटियों को टका बांटना)

सारे कार्यक्रमो के बाद लडके का पिता अपने गोत्र की लड़कियों, भांजियों तथा अपने गाँव की किसी जाति की लड़की जो उस गाँव मे ब्याही हुई हो तो उन लोगो को कपड़ा, मिठाई, बर्तन, नकद रुपये देकर आता है।

42 टूटिया

बारात रवाना हो जाने के बाद लडके के यहाँ फेरों की रात में घर की तथा गाँव की औरतें मिलकर ब्याह करने का नाटक करती है। उसे टूंटिया कहते है।

43 मुकलावा (गौना)

जब बाल विवाह की प्रथा थी। उस समय मुकलावा ब्याह के तीन या पाँच वर्ष के बाद होता था। लड़के के सारे परिवार के वेश तथा सिरोपाँव तथा नित्य प्रति काम आने वाली चीजे और बिछावन, रजाई, तकिया, चादर, जेवर, मिठाई आदि देकर लड़की को बिदा करते थे।

पहले बारात मे वेश्याओ को ले जाते थे तथा तीन चार रोज तक उनका नृत्य मुजरा होता रहता था। शोभा यात्रा में आतिशबाजी तथा फूलबारी भी होती थी। इन सब कुरीतियों को पहले पहल सेठ मूलचन्द जी सोनी अजमेर वालों ने बंद किया और उसके बाद धीरे-धीरे ये प्रथाएँ बन्द हो गई।

44. गोद नशीनी

निसंतान व्यक्ति अपने ही गोत्रका लड़का गोद लाकर घर का मालिक बनाता है। पति के मर जाने के बाद अगर घर में सिर्फ निसंतान स्त्री रह जाती है तो वह भी लड़का गोद लाकर अपने घर का मालिक बना सकती है। आजकल अन्य गौत्र के लड़कों या अपने दौहित्र इत्यादि को गोद बैठा लेते है।

45. मरण

1. **शव पर ओढ़ना ओढ़ाना**—स्त्री की मृत्यु होने पर उसके शरीर पर

ओढ़ना ओढ़ाकर ले जाने का चलन है। पुराने समय में किसी की जवान औरत मर जा ती तो उस औरत को अपना पराया जितना हो सके गहना पहनाकर श्मशान में जलाने के लिये ले जाते थे। फिर उसका गहना बड़े जोर से बेरहमी से उतारकर तराजू मे उस गहने को तौलते थे। जिसका गहना बहुत होता है। उस लड़के की सगाई बहुत जल्द हो जाती है, ऐसी मान्यता थी। इस प्रथा की सूचना 'जैन पत्रिका' 1 अप्रेल सन् 1898 पेज–15 पर प्रकाशित हुई थी।

2. तीया—मृत्यु के तीसरे दिन घर के मर्द तथा औरतें घर के बाहर खुले स्थान में स्नान किया करते है तथा गाँव मे जितने भी समाज के मर्द और औरते घर पर आकर इकट्ठे हो जाते है बिछायत होती है और सबके इकट्ठे हो जाने के बाद मंदिर जाया जाता है। मन्दिर से आकर घर के सामने दूसरे व्यक्ति के घर वालो से विदा लेते हैं। व्यापारी वर्ग के यहा मंदिर से लौटने पर घर के मालिक से चाबी लेकर पच लोग दूकान इत्यादि खुलवा देते है।

3. बारहवां घड़िया—बारहवे के रोज अपने पराये तथा गाव के औरत मर्द जितने भी इकट्ठे होते है। वे घर के मालिक को साथ लेकर मदिर जी जाते है। साथ मे पूजन सामग्री तथा कोई उपकरण मृत्यु प्राप्त व्यक्ति की यादगारी में चढावा जाता है यथाशक्ति नगद भी मंदिर जी मे चढाते है। सस्थाओ के लिए भी दान निकाला जाता है तथा अपने पराये को भी और गाव की पचायती में भी यादगारी के बर्तन बाटे जाते है।

4. तेरहवां, मौसर नुकता तथा पगड़ी का दस्तूर-- स्त्री की मृत्यु होने पर परिवार के लोगों के अलावा गाव के पचो को भोजन कराया जाता है। मर्द की मृत्यु होने पर उनके लडको को ननिहाल तथा ससुराल की पगडी बधाई जाती है। ननिहाल की एक ही पगडी होती है जो ज्येष्ठ लडके को बधाई जाती है। बाकी लडको को अपने-अपने ससुराल की पगडी बंधाते है न्योते का रुपये लिया जाता है। इस अवसर पर गाव के पच भी न्योता का रुपये देते है। तथा सारे सामान तथा परिवार का भोजन होता है। बहन बेटियां तथा भौजियो को यथाशक्ति कपडा नकदी तथा जेवर दिया जाता है।

5. उजली रोटी करना— मृत्यु के बाद सवा महीने तक शोक रखने का नियम है। पुराने जमाने मे छः छः महीने तक शोक रखा जाता था। उसके बाद ससुराल से रगीन पगडी के साथ सिरोपाव तथा वेश आता है। गांव के पंच सफेद चादर उतरवाकर तथा रगीन पगडी बधवाकर शोक की इति श्री करवा देते है।

प्रस्तुत इतिहास में हमने खण्डेलवाल जैन समाज मे उत्पन्न होने वाले आचार्यों, मुनियो एवं भट्टारको, पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने वाले प्रतिष्ठाकारको, मन्दिर

निर्माताओं, मूर्ति-प्रतिष्ठाकारकों, साहित्य निर्माताओं, कवियों एवं विद्वानों, शासन में योग देने वाले दीवानों एवं मंत्रियों के बारे में संक्षिप्त रूप से परिचय प्रस्तुत किया है लेकिन समाज को कुछ ऐसे व्यक्ति अथवा श्रेष्ठि हुये हैं जिन्होंने समाज को गतिशील बनाने तथा उसकी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योजनाओं को मूर्त रूप देने में अपना पूरा योगदान दिया। यदि उनका सहयोग नही होता तो समाज किसी भी क्षेत्र में आगे नही बढ़ सकता था। उनका व्यक्तित्व विशाल था। अर्थ से वे सम्पन्न थे तथा समाज में उनका अच्छा प्रभाव था। उन्होंने समाज के संरक्षण में अपना पूरा योग दिया। यद्यपि विगत दो हजार वर्षों में ऐसे अनगिनत व्यक्ति हो चुके हैं जिनका नाम भी हम भूल चुके हैं और न कोई ऐसी सामग्री है जिनके आधार पर हम उनका परिचय लिख सकें फिर भी हमने प्रशस्तियों, लेखों, शिलालेखों एवं अन्य उपायों से ऐसे विशिष्ट श्रावकों का जो परिचय एकत्रित किया है उसको इतिहास के पृष्ठो में सम्मिलित कर रहे है। आशा है इन महानुभावो के जीवन से हमें प्रेरणा मिलेगी और हम भी समाज सेवा में अपने आपको समर्पित कर सकेंगे।

1. हेमराज पाटनी

हेमराज पाटनी वाग्वर (बागड) प्रदेश मे स्थित सागवाड़ा (सागपत्तन) के निवासी थे। इनकी पत्नी का नाम हमीर था। अपूर्व धनधान्य से सम्पन्न थे। जिन पूजा एवं यात्राओं में संघपति बन कर सम्मेद शिखर की यात्रा गये थे। अपनी यात्रा की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिये उन्होने भट्टारक रत्नचन्द्र से सुभौमचक्रिचरित्र के रचना करने का आग्रह किया। उन्होंने हेमराज के लिये संवत् 1683 में उक्त चरित की रचना विवुध तेजपाल की सहायता से की थी। हेमराज जिनवाणी के अनन्य भक्त थे।[1]

2. ऊदासाह
(संवत् 1636)

उदा साह साखरणा ग्राम के निवासी थे। उनके पिता का नाम साह कमा था। वे साह गोत्रीय खण्डेलवाल श्रावक थे। उनके चार भाई और थे जिनके नाम माधु, साधु, चांदु एव कालू थे। ऊदा साह भगवान जिनेन्द्र के बड़े भक्त थे। जब वे करते तो इन्द्र के समान लगते थे। राय सुरजन की सभा के वे शृंगार थे। चन्द्रमा के समान शीतल एवं सूर्य के समान प्रतापी थे। तथा गभीरता उनका स्वभाविक गुण था। मंडलाचार्य चन्द्रकीर्ति के वे मित्र थे। साह के पुत्र थे साह सेखा। सेखा

1. प्रशस्ति सग्रह–पं० परमानन्द शास्त्री–पृ. सं. 63

ने आचार्य शुभचन्द्र द्वारा निबद्ध जीवंधर की एक पाण्डुलिपि लिखवा कर पं० पदा-रथ को भेंट की। पं० पदारथ भट्टारकीय परम्परा के पंडित थे।[1]

3. हरिपति एवं पद्मश्रेष्ठि
(16वीं शताब्दी)

हरिपति एवं पद्मश्रेष्ठि रणथम्भोर के समीप नवलक्षपुर के निवासी थे। हरिपति को पदमावती देवी का वर प्राप्त था और वे पेरीजशाह नामक राजा से सम्मानित थे। हरिपति के वंश मे पदम श्रेष्ठि हुये जिन्होंने अनेक प्रकार के दान दिये और ग्यासशाह नामक राजा से बहुमान्यता प्राप्त की। इन्होने शाकम्मरी नगरी मे विशाल जिन मन्दिर बनवाया था। वे इतने प्रभावशाली थे कि उनकी आज्ञा का किसी ने उल्लघन नही किया। वे मिथ्यात्व घातक थे तथा जिन गुणो के नित्य पूजक थे। इनके पुत्र का नाम बिझ था जो वैद्यराज था। बिझ ने शाह नसीर से उत्कर्ष प्राप्त किया था। इनके दूसरे पुत्र का नाम 'सुरजन' था जो विवेकी और वादि रूपी गजों के लिये सिह के समान था। सबका उपकारक और जिनधर्म का आचरण करने वाला था। यह भट्टारक जिनचन्द्र के पट्ट पर प्रतिष्ठित हुआ और उसका नाम प्रभाचन्द्र रखा गया। इसने राजाओ जैसी विभूति का परित्याग किया था।[2]

उक्त बिझ का पुत्र धर्मदास हुआ जिसे महमूदशाह ने बहुत सम्मान प्रदान किया था। वह भी वैद्य शिरोमणि और विख्यात कीर्ति वाला था। इन्हें भी पद्मा-वती का वर प्राप्त था। इसकी धर्मपत्नी का नाम धर्मश्री था जो अद्वितीय दानी, सद्दृष्टि रूप से मन्मथ विजयी और प्रफुल्ल वदना थी। इसका रेखा नामक एक पुत्र था जो वैद्य कला मे अति दक्ष, वैद्यो के स्वामी और लोक मे प्रसिद्ध था। यह वैद्य कला अथवा विद्या आपकी कुल परम्परा से चली आ रही थी और उससे आपके बंस की बड़ी प्रतिष्ठा थी। रेखा अपनी वैद्य विद्या के कारण रणस्तम्भ (रणथम्भौर) नामक दुर्ग में बादशाह शेरशाह द्वारा सम्मानित हुये थे। इनके पुत्र का नाम पंडित जिनदास था जो संस्कृत का बड़ा भारी विद्वान था जिसने संवत् 1608 मे 843 श्लोकों वाली होली रेणुका चरित्र को समाप्त किया था।

4 बधराम खिन्दूका

बधूराम खिन्दूका जयपुर निवासी श्रावक थे। पाटनी उनका गोत्र था। उनके

2 प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल—पृ. सं. 15

1. प्रशस्ति संग्रह—होली रेणुका चरित्र—पं० परमानन्द शास्त्री—पृ. 67

माता-पिता का नाम संतोषराम एवं संतोषदे था। बघूराम दान देने में उदार, पूजा एवं व्रत पालन में कट्टर एवं श्रावकों की क्रिया पालन में तत्पर रहने वाले श्रावक थ। भट्टारकों के भक्त थे तथा भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की उन पर विशेष कृपा थी। एक बार भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने खिन्दूका जी से स्वाध्याय के लिये मुनिसुव्रत पुराण की आवश्यकता बतलाई तो बघूराम ने तत्काल मुनिसुव्रतपुराण लिखवा कर भट्टारक जी को भेट किया।[1]

जयपुर में खिन्दूका परिवार को काफी प्रसिद्धि प्राप्त थी। खिन्दूका एक बैंक है। जिसका अपना इतिहास है।

5. पचाइण पहाड़िया

पचाइण डेह निवासी थे लेकिन ये नागौर आकर रहने लगे थे। पचाइण भट्टारक परम्परा के प्रशसक थे। इनके पिता का नाम ऊधा एवं मां का नाम लाडी था। उन्होने सवत् 1566 आषाढ सुदी 3 के दिन कर्म प्रकृति की प्रतिलिपि करवाई थी। जो वर्तमान में आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहित है।[1]

6. पोमराज सोगाणी
(17वीं–18वीं शताब्दी)

पोमराज टोडारायसिंह के निवासी थे। सोगाणी इनका गोत्र था। पोमराज बड़े भाग्यशाली थे। स्वाध्याय की ओर इनकी विशेष रुचि थी। इनके चार पुत्र थे और चारों ही विद्वान थे। इनका सबसे बड़ा पुत्र महापंडित जगन्नाथ था जिन्होने श्वेताम्बर पराजय चतुर्विंशति संधान स्वोपज्ञ टीका एवं सुख-निधान जैसे ग्रंथों की रचना की थी। इनके दूसरे भाई वादिराज थे जो संस्कृत भाषा के प्रौढ़ विद्वान और कवि थे। इन्होने संवत् 1729 में वाग्भट्टालंकार की कविचन्द्रिका नाम की एक टीका बनाई थी। इनका बनाया हुआ ज्ञान लोचन नामक एक संस्कृत स्तोत्र भी है जो माणिक चन्द्र ग्रंथमाला से प्रकाशित हो चुका है। वादिराज कवि के भी चार पुत्र थे जिनके नाम रामचन्द्र, कालकी, नेमिदास और विमलदास थे। वादिराज कवि राजा जयसिंह के सेवक थे तथा राज्य के किसी ऊंचे पद का कार्य संचालन करते थे।[3]

7. पंडित देवपाल

अपभ्रंश कवि विजयसिह के अजितपुराण की लेखक प्रशस्ति मे पडित देवपाल का उल्लेख आता है जिसने संवत् 1502 में उक्त ग्रंथ की प्रतिलिपि करवाई

1. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल–पृ. सं. 48
2. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल–पत्र 96
3. प्रशस्ति संग्रह—वाग्भट्टालंकारावचूरि

थी । पं० देवपाल खण्डेलवाल जैन थे उसने वणिपुर या वणिकपुर में वर्धमान चैत्यालय भी बनवाया था जो उत्तुंग ध्वजाओं से अलंकृत था तथा जिसमें वर्धमान तीर्थङ्कर की प्रशांत मूर्ति विराजमान थी । उसके पूर्वजों की परम्परा निम्न प्रकार थी[1]—
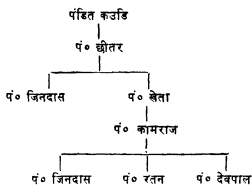
8. दयाराम सोनी

दयाराम सोनी भ० देवेन्द्रकीर्ति के शिष्यो मे से थे । ये नरायणा के निवासी थे । लेकिन भट्टारको के साथ रहकर ग्रंथों की प्रतिलिपि करने का कार्य करते थे । राजस्थान के जैन ग्रंथ भण्ड़ोरों में उसके द्वारा प्रतिलिपि किये हुये पचासों पाण्डुलिपियां मिलती है । दयाराम देहली में जयसिंहपुरा में ठहरा करते थे ।[2] उनके द्वारा प्रतिलिपि की हुई नेमिचन्द का हरिवंश पुराण (संवत् 1793), सीता चरित्र (संवत् 1808), सम्यक्त्व कौमुदी (संवत् 1793) आमेर शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है । यशोधर चरित (लक्ष्मी-राम) की लेखक प्रशस्ति (संवत् 1801) में दयाराम सोनी ने अपनी गुरु परम्परा का निम्न प्रकार उल्लेख किया है[3]—
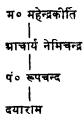
1. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग–22 किरण–2
2. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ 281
3. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ 256

9. साह रतनसी

टोडारायसिंह में 16वीं शताब्दी में साह परिवार उन्नतशील परिवार था। पुराने ग्रंथों की प्रतिलिपि करवाकर साधुओं को भेट करने में उनकी पूरी रुचि थी। संवत् 1597 माघ शुक्ला द्वितीया को, नयनन्दि के सुदंसणचरिउ की प्रतिलिपि करवाकर साह रतनसी ने आचार्य अभयचन्द्र देव के शिष्य मुनि पद्मकीर्ति को समर्पित किया था। उस समय टोडारायसिंह पर सोलंकी राजा सूर्यसेन का राज्य था। रतनसी ने अपने पूर्वजों का नाम निम्न प्रकार गिनाया है—

साह तेजा, भार्या करमा — लोचमदे

साह दूलह — साह श्रीपाल

आशा एवं साह हेमा — साह होला, साह लाला

साह सुरत्राण — रलसी (रतनसी)
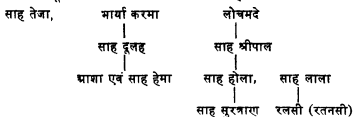
10. साह राणा हरदास छाबड़ा

निवाई (राजस्थान) में संवत् 1636 में छाबड़ा परिवार एक सम्पन्न एवं धार्मिक परिवार था। उसके मुखिया थे साह राणा एवं हरदास छाबड़ा। ये दोनों भाई थे। साह राणा की पत्नी का नाम लाडमदे था तथा साह हरदास की पत्नी हरदमदे थी। इन्होंने षोडशकारण व्रत रखा था और उसी व्रत के उद्यापन के अवसर पर नेमिनाथ चैत्यालय में मुनि यशःकीर्ति के पाण्डवपुराण की प्रति आचार्य हेमचन्द्र को भेंट स्वरूप प्रदान की थी। राणा और हरदास के पूर्वज साह रेडा एवं पदारथ सम्पन्न एवं साहित्यिक रूचि वाले थे। भट्टारकों में उनकी पूर्व श्रद्धा थी। उनकी वंश परम्परा निम्न प्रकार थी[1]—
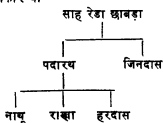
11. जोधराज पाटोदी

जोधपुर पाटोदी जयपुर बसने के साथ ही संभवतः आमेर से जयपुर आकर रहने लगे थे। संवत् 1785 कार्तिक सुदी 13 दीतवार को जन्मी उनकी पडपोती

1. प्रशस्ति संग्रह—डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ 128

लिखमी की कुण्डली प्राप्त हुई है । इसके अनुसार उक्त वर्ष तक पडपोती हो चुकी थी। उनके पोते का नाम सुरतिराम एवं पुत्र का नाम सुखराम था । वे सम्पन्न-परिवार के थे यही कारण है कि उनकी पडपोती की टिप्पण भी एक ज्योतिष की पाण्डुलिपि में लिखी हुई है ।

जोधराज ने चोकड़ी मोदीखाने में एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मंदिर पहले ऋषभदेव चैत्यालय के नाम से प्रसिद्ध था लेकिन वर्तमान में यह पाटोदी के मंदिर के नाम से ही जाना जाता है । जोधराज जी ने इस मंदिर को कब बनाया इसका कोई निश्चित समय नही मिलता लेकिन यह जयपुर का पंचायती मंदिर है, भट्टारको का केन्द्र रहा हुआ है इसलिये यह जयपुर बसने के कुछ समय बाद बनकर तैयार हुआ होगा ऐसा अनुमानित किया जा सकता है ।

जोधराज अपने समय के प्रभावशाली श्रावक थे तथा धार्मिक वृत्ति वाले थे। उन्होने मंदिर का निर्माण करवाकर समाज को सौप दिया और समाज ने इसे अपना प्रमुख मदिर बनाया । मंदिर विशाल है तथा उसकी मुख्य वेदी एवं उसके ऊपर का गुम्बज अत्यधिक कलापूर्ण है । जोधराज जी की मृत्यु संभवतः संवत् 1785 के पश्चात् किसी समय हुई होगी । भट्टारको का केन्द्र स्थली होने के कारण यहां विशाल शास्त्र भण्डार है जिसके शास्त्रो की सूची राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची भाग चतुर्थ में प्रकाशित की जा चुकी है ।

12. आनन्दराम कासलीवाल

"आनन्दराम" महाकवि दौलतराम के पिता थे । सर्वप्रथम "पुण्यास्रव कथा-कोश" मे कवि ने आनन्दराम सुत लिखकर अपना परिचय दिया है । आनन्दराम बसवा (जयपुर) के रहने वाले थे और ये भी सम्भवतः जयपुर महाराजा की सेवा में थे । आनन्दराम के पुत्रो तथा उनकी पत्नी के बारे में कवि ने कोई परिचय नहीं दिया है । "पुण्यास्रव कथा-कोश" के अतिरिक्त कवि ने त्रेपन क्रिया-कोश, जीवन्धर चरित, पद्मपुराण और हरिवशपुराण आदि सभी कृतियो मे "आनन्दराम" का सादर उल्लेख किया है। जो उनकी अपने पिता के प्रति अनन्यतम भक्ति का प्रतीक है । आनन्दराम सम्पन्न श्रावक थे । उन्होंने बसवा मे एक मन्दिर भी बनवाया था ।

13. भाई रायमल्ल

"भाई रायमल्ल" धर्म एव साहित्य प्रचार की उत्कट प्रेरणा लेकर विद्वानों की सेवा में जाते थे और उनसे नव-साहित्य निर्माण का सानुरोध निवेदन करते थे । जहाँ भी उन्हे विद्वान् एव पण्डित दिखाई देते थे, वे तत्काल उसके पास जाकर अपनी हार्दिक भावनायें प्रस्तुत करते थे ।

उनका जन्म संवत् 1770 के लगभग माना जाता है। बचपन में ही इनके ज्ञान की पिपासा बढ़ने लगी और 22 वर्ष की अवस्था मे ही उन्होंने शाहिपुरा के विद्वान श्रावक नीलपति साहूकार से ज्ञान प्राप्त किया और उसके पश्चात् ही वै पूर्ण संयमित जीवन व्यतीत करने लगे एवं ज्ञान-वृद्धि को ही एक मात्र अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। संवत् 1805 के पूर्व ही वे महाकवि दौलतराम से मिलने उदयपुर पहुचे। वहाँ की आध्यात्मिक शैली एवं वहाँ के श्रावकों द्वारा धर्म प्रचार को देखकर उन्हें अत्यधिक सन्तोष हुआ। इस घटना का भाई रायमल्ल ने अपने पत्र में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"जहाँ दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी व दस बीस बायां सहित शैली का वाणी बणि रह्यता अवलोकन करि साहिपुरा पाछा आया।

"महाकवि दौलतराम" जब जयपुर आ गये तब उन्होने कवि को पद्मपुराण की भाषा करने के लिए विशेष आग्रह किया जिसका कवि ने उक्त प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व-पर विवेक।
दयावंत गुणवत सुजान, पर उपकारी परम निधान॥
दौलतराम सु ताको मित्र, तासों भाख्यों वचन पवित्र।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रन्थ, तामें लोक शिखर को पंथ॥
भाषा रूप होय जो यह, बहुजन वाचें करि अति नेह।
ताके वचन हिये में धार, भाषा कीनी मति अनुसार॥

इसके पूर्व भाई रायमल्ल महापण्डित टोडरमल के घनिष्ठ सम्पर्क मे आ चुके थे। उन्होने सिंघाणा जाकर गोम्मटसार जैसे महान् एवं विशाल ग्रन्थ की भाषा टीका करवाने में सफलता प्राप्त की।[1]

महापण्डित टोडरमल जी भाई रायमल्ल से काफी प्रभावित थे। उन्होंने निम्न शब्दों मे उनके प्रति श्रद्धाजली अर्पित की है—

रायमल्ल साधर्मी एक, धर्म सधैया सहित विवेक।
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज थयो॥

संवत् 1821 मे जयपुर में जो इन्द्रध्वज महोत्सव हुआ था, उसका भाई रायमल्ल ने अतीव सजीव वर्णन किया है। उससे तत्कालीन जयपुर नगर की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियो का भली-भाँति परिचय मिलता है।

---

1. **शुभ दिन टीका प्रारम्भ हुई……वे तो टीका बणवते गये। हम बांचते गये। बरस तीन में वारि, ग्रन्थों की 65000 टीका भई। पीछे जयपुर आये।**

संवत् 1827–28 में रायमल्ल मालवा देश गये हुये थे। वहाँ उन्होंने महाकवि दौलतराम द्वारा भाषा में निबद्ध आदिपुराण एवं पद्मपुराण का प्रवचन किया। दोनों ग्रन्थों को सुनकर सभी श्रावक हर्षित हो गये और उनमें स्वाध्याय की रुचि में वृद्धि हुई। उसी समय वहाँ के श्रावकों ने भाई रायमल्ल से दौलतराम के द्वारा हरिवंश पुराण की भी टीका करने का निवेदन किया। जिससे इस महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय भी सुगमता ही सकें। भाई रायमल्ल ने वहीं से दौलतराम को पत्र भेजा, जिसमें सारी वस्तु-स्थिति का दिग्दर्शन कराया। महाकवि को भाई जी का यह आग्रह स्वीकार करना पड़ा। इस घटना का कवि ने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में उल्लेख किया है।

14. रिषभदास

"पुण्यास्रव कथा-कोश" की रचना में तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने की ओर सबसे अधिक प्रेरणा देने वालो मे रिषभदास का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं के उपदेश से कविवर दौलतराम कासलीवाल मिथ्याचरण त्याग कर सम्यक् आचरण की ओर प्रवृत्त हुये थे। महाकवि ने रिषभदास की प्रशंसा मे निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

> **रिषभदास उपदेस सौं, हमैं भई परतीति।**
> **मिथ्यातम को त्यागि कैं, लगो धरम सौं प्रीति ॥21॥**
> **रिषभदेव जयवन्त जग, सुखी होहु तसु दास।**
> **जिन हमको जिन मत विषैं, कीयो महा गढास ॥22॥**

अध्याय 10

कला एवं संस्कृति

जैन समाज प्रारम्भ से ही कला प्रेमी समाज रहा है। उसके द्वारा निर्मित कितने ही मन्दिर स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने है। अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ मूर्तिकला की विशेषताओं को लिए हुये है। मन्दिरो में भित्ति चित्र एवं भण्डारों में संग्रहित चित्रित पाण्डुलिपियाँ समाज के कला प्रेम को उजागर करने वाली है। तीर्थों की स्थापना एवं विकास में उसकी सास्कृतिक रुचि के दर्शन होते हैं। यहीं नही शिक्षा एव संस्कृति के प्रचार-प्रसार मे भी इस समाज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्रस्तुत अध्याय में हम निम्न विषयो पर सक्षिप्त प्रकाश डाल रहे है—

1. जैन विद्या केन्द्रों की स्थापना
2. शिक्षण संस्थानों को स्थापना
3. कला संस्थानों की स्थापना
4. शास्त्र भण्डारो की स्थापना
5. कलापूर्ण मन्दिरों का निर्माण
6. तीर्थों की स्थापना एवं विकास

1. जैन विद्या केन्द्रों की स्थापना

जैन समाज को विद्या प्रेमी समाज कह सकते हैं। जैन विद्या के क्षेत्र में उसने प्रारम्भ से ही ध्यान दिया और इस दिशा में सक्रिय कदम उठाकर वह देश में अपने आपको सबसे अधिक शिक्षित समाज के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा। 13वी शताब्दी के पूर्व आचार्यों के केन्द्रों एवं इसके पश्चात् भट्टारको एवं उनके शिष्यों की गादियो मे जैन विद्या केन्द्रो का संचालन होता रहा। आचार्य कुन्दकुन्द, धरसेन, समन्तभद्र, उमास्वामी, विद्यानन्दि, अकलंक, नेमिचन्द्र, जिनसेन जैसे आचार्यों के पादमूल मे बैठकर समाज मे जैन विद्या का अध्ययन होता रहा और जब भट्टारक युग ने देश का पथ प्रदर्शन एवं दिशा निर्देशन करना प्रारम्भ किया तो इन भट्टारकों

के केन्द्र ही जैन विद्या के केन्द्र बन गये जिनमें सैकड़ों साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकायें जैन विद्या के विभिन्न अंगों के पाठी बनते गये। भट्टारक पद्मनन्दि, भट्टारक सकलकीर्ति, शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, जिनचन्द्र, ज्ञान भूषण, भट्टारक रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, जगत्कीर्ति जैसे उदभट भट्टारको का सानिध्य ही जैन विद्या का संगम बन गया। गिरनार क्षेत्र, चित्तौड़, बारां, अजमेर, नागौर, आमेर एव सांगानेर संकड़ो वर्षों तक जंन विद्या के केन्द्र माने जाते रहे। इन सबमे ग्रन्थ निर्माण, ग्रन्थ लेखन, पठन-पाठन, अध्ययन एवं अध्यापन का शुभ कार्य चलता रहा।

चित्तौड़ मे आचार्य वीरसेन ने एलाचार्य से सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। यह नगर एक हजार वर्ष तक जैन विद्या का केन्द्र बना रहा। कुछ समय तक यहाँ भट्टारको की गादी रही। श्वेताम्बर आचार्य हरिभद्र सूरी ने भी चित्तौड़ को ही अपनी साहित्यिक साधना का केन्द्र बताया। 10वी शताब्दी में होने वाले अपभ्रंश भाषा के कवि हरिषेण भी चित्तौड़ के निवासी थे जिन्होंने धम्मपरिक्खा को निबद्ध करने का श्रेय प्राप्त किया। 15वी शताब्दी के हिन्दी कवि पद्मनाभ चित्तौड के निवासी थे।

बारां (राजस्थान) सैंकडो वर्षों तक जैन विद्या का केन्द्र बना रहा।[1] आचार्य पद्मनन्दि ने इसी नगर मे जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की रचना ईस्वी सन् 748 मे समाप्त की थी। आमेर ढूढाड़ प्रदेश का प्रसिद्ध नगर रहा। भट्टारको का यह नगर सैंकडो वर्षों तक केन्द्र बिन्दु बना रहा। यहाँ का सावलां बाबा का मन्दिर मे सैंकडो पाण्डु-लिपियाँ लिखी जाती रहीं जो वर्तमान मे आमेर शास्त्र भण्डार के अतिरिक्त राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे संग्रहित है। यहाँ के हिन्दी कवियो मे नेमीचन्द, अजय राज पाटनी, खुशालचन्द काला[2], दीपचन्द के नाम उल्लेखनीय है।

इसी तरह बैराठ, रणथम्भौर, चंम्पावती, चाकसू, सागानेर, नागौर भी जैन विद्या के केन्द्र माने जाते रहे। जयपुर विगत 260 वर्षों से जैन विद्या का प्रमुख

---

1. णाणा गुणगण कलिओ, णखइ संपूजिओ कलाकुसलो।
   बाराणयरस्य पहु णरुत्तमो सत्तिभूपालो ॥166॥
   पोक्खर णिवाविपउरे, बहुभवन विहुसिए परमरम्मे।
   णा जण संकिण्णे, धणधण्ण समाउले दिव्वे ॥167॥

2. ऐसे लिखमीदास ढिग में कुछ पढ्यो सुग्यान।
   पठन कीयौ मौ बुध लौ, वे तो ग्यान निधान॥
   तिनही के उपदेश तै, भाषा सार बनाय।
   श्रुतसागर ब्रह्मचार को, सुभ अनुसार सुनाय॥

केन्द्र माना जाता है। इस नगर को महाकवि दौलतराम, टोडरमल, बख्तराम साह, साह, जयचन्द छाबड़ा, सदासुख कासलीवाल एवं वर्तमान शताब्दी में पण्डित चैनसुख दास जैसे मनीषियों का साधना नगर बनने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा।

2. शिक्षण संस्थानों की स्थापना

आचार्यों एवं भट्टारकों के केन्द्र स्थानों में बालको एवं युवाओं की पूरी शिक्षा व्यवस्था थी। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थो को पढ़ाया जाता था। वैसे तो प्रारम्भिक शिक्षा तो समाज के प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य थी। इसके पश्चात् व्याकरण कोश, काव्य, नाटक, दर्शन विषयक ग्रन्थों का अध्ययन छात्रों के लिए उपलब्ध कराया जाता था। सारस्वत व्याकरण, कातन्त्र रूपमाला का अध्ययन कराया जाता था। काव्य ग्रंथो में जैन ग्रथों के अतिरिक्त कालिदास, भारवि, हर्ष, भवभूति के काव्यो को पढाया जाता था। भट्टारक शुभचन्द्र (1339–1450 ए डी.) जिनचन्द्र (1450–1514 ए. डी.), प्रभाचन्द्र (1514–1523 ए. डी.), सकलकीर्ति (15वी शताब्दी), शुभचन्द्र (16वी शताब्दी), ज्ञान भूषण (16वी शताब्दी), देवेन्द्रकीर्ति (17वी शताब्दी) जैसे भट्टारक गण शिक्षा के प्रमुख प्रचारक थे। इनके केन्द्रो मे सैकडो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में ऐसी सैकड़ो पाण्डुलिपियों का संग्रह है जो इन केन्द्रो में पढने वाले विद्यार्थियों, साधुओं एवं सन्तों को पढ़ने के लिये लिखी गई थी। यहाँ इससे सम्बन्धित कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

1. भट्टारक शुभचन्द्र के चन्द्रप्रभचरित[1] की एक पाण्डुलिपि को 18वी शताब्दी में आनन्दराम, भगवानदास के पढ़ने के लिए लिखी गई थी।

2. संवत् 1579 मे पण्डित पदारथ के पढ़ने के लिए सारवणा गाँव में शुभचन्द्र के जीवन्धर चरित की एक पाण्डुलिपि शेरवा पुत्र उदा ने भेंट की।[3]

---

1. धर्मदास को पूत लघु, जाति लुहाड्यो जोय।
नाम कल्याण सु जानिये, कवि को मामो सोय॥
ताकि पढिवे कारने, कियो ग्रन्थ यह जोध।
नाम समकित कौमुदी, दायक केवल बोध॥

2. आमेर शास्त्र भण्डार, प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या 8।

3. वही, पृष्ठ संख्या 15।

3. सोमकीर्ति के प्रद्युम्न चरित की एक पाण्डुलिपि आचार्य देवेन्द्र भूषण अपने पढ़ने के लिए एवं अपने शिष्य दयाचन्द्र, वर्धमान, विमलदास, दौलतराम, ऋषभदास, गुलाबचन्द्र, भगवानदास, वीरदास, मोती एवं जगजीवन के लिए संवत् 1667 मे लिखी गई। यह पाण्डुलिपि आमैर शास्त्र भण्डार में सग्रहित है।

4. संवत् 1579 में भक्तासर स्तोत्र वृत्ति पण्डित शिरोमणी केशीदास ने अपने अध्ययन के लिए श्री कायस्थ पूरणमल से लिखवायी थी।[1]

महापण्डित टोडरमल के समय मे शिक्षा का बहुत जोर था। भाई रायमल्ल ने अपनी एक पत्रिका में लिखा है कि बालक-बालिकाओं को धार्मिक ज्ञान प्रदान करने के लिए कुछ विद्वानों को नियुक्त किया गया था।

"और यहाँ दस बारा सदैव मामने जिनवाणी लिखते है वा साधते है और एक ब्राह्मण महैनदार चाकर राख्या है तो बीस तीस लडके बालकन कूं न्याय व्याकरण गणित शास्त्र पढ़ाते है और सौ-पचास भाई वा बायाँ चर्चा व्याकरण का अध्ययन करे है।"[2]

3. कला संस्थानों को स्थापना

जैन समाज ने कला संस्थानो के सचालन मे खूब रूचि ली है। उसने कला-पूर्ण मन्दिरों का निर्माण करवाया। मन्दिरो मे भित्ति चित्रो को लिखवाने में योग दिया। सचित्र पाण्डुलिपियाँ तैयार करवाई। शास्त्रो के दोनो ओर रखे जाने पुट्ठो पर विभिन्न चित्रो को लिखवाया। मन्दिरो मे षट् लेश्या, ससार वृक्ष, समवसरण, नेमिनाथ की बारात, सुकुमाल, गजकुमार जैसे मुनियो पर उपसर्ग, राजा श्रेणिक द्वारा मुनि के गले मे सर्प डालने जैसी क्रिया, स्वर्ग एवं नरक वर्णन जैसी कलाकृतियों को तैयार करवाने मे समाज में रूचि जाग्रत की। उन्होंने कलाकारो को संरक्षण प्रदान किया तथा उनकी कला को जीवित रखा। किन्तु कही-कही कला-कृतियो के प्रति हमारी उपेक्षा के कारण ही या तो वे दीमक, सीलन का शिकार बन गई या फिर समाज विरोधी तत्त्वो के हाथ मे पड़ जाने के कारण कही इधर-उधर कर दी गई।

जयपुर के दिगम्बर जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर में आदिपुराण, भक्तामर स्तोत्र की सचित्र प्रतियाँ हैं। इनमें उच्च कोटि की कला के दर्शन होते है।

---

1 प्रशस्ति संग्रह–44।

2. भाई रायमल्ल की चिट्ठी।

इस मन्दिर में महाकवि पुष्पदन्त के आदिपुराण की पूरी प्रति सचित्र है जिसमें 440 से अधिक छोटे-बड़े चित्र हैं। सभी चित्र आदिपुराण की कथा-वस्तु पर आधारित है। यद्यपि इसमे चित्रों का आकार समान नहीं है किन्तु चित्र चाहे छोटा-बड़ा किसी भी आकार का हो, सभी घटनाओ पर आधारित है। इसलिए इन चित्रो के आधार पर सारी आदिपुराण कथा को समझा जा सकता है। कितने ही चित्र पूरे पृष्ठ के हैं, कितने ही आधे पृष्ठ के और कितने ही पाव पृष्ठ के। चित्रों मे लाल, पीला व नीले रंग का प्रयोग किया गया है। महिलाओं की धनुष के समान आंखे नुकीले नाक चिपटा एव उभरा हुआ सीना, पतली कमर, आंखों का कान तक काजल, चैक दुपट्टे एवं साडियों में दिखलाया गया है। उनके आभूषण मे चाहे वह गले की माला हो या कानो के झुमके, चूडियाँ, ललाट पर तिलक देखते ही बनता बनता है। पुरुषों को पगड़ी, दुपट्टा, चैक अथवा बिना रंग की धोती में चित्रित किया है। कलाकृति मे युद्ध के दृश्य भी खूब लुभावने एवं यथास्थिति को बतलाने वाले है। सैनिको को हाथी, घोड़े एवं पैदल दौड़ते हुए दिखलाये गये है। भगवान आदिनाथ के राज्याभिषेक का चित्र नयनाभिराम है। आदिनाथ चैक की धोवती, गले मे दुपट्टा तथा माथे पर मुकुट पहने हुये है। एक चित्र मे आदिनाथ अपनी पुत्री ब्राह्मी एव सुन्दरी को पढा रहे है। वे चौकी पर विराजमान है। उनके दोनो ओर ब्राह्मी एवं सुन्दरी पट्टी लेकर पढ रही है। पास ही मे एक स्टेण्ड पर ग्रन्थ रखा हुआ है। पढ़ाते समय आदिनाथ धोती, अगरखी, मुकुट के वेश मे है। एक दरबारी उन पर छत्र किये हुये है।

आदिपुराण की चित्र कला 16वी शताब्दी की है तथा इस पर अपभ्रंश शैली का प्रभाव है। यद्यपि आदिपुराण की एक प्रति देहली के शास्त्र भण्डार मे भी उपलब्ध है लेकिन कला की दृष्टि से प्रस्तुत पाण्डुलिपि में चित्रित कला अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

यशोधर चरित की सचित्र पाण्डुलिपियाँ जयपुर, नागौर, सवाई माधोपुर के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध होती है। इनमें पुष्पदन्त के सचित्र जसहरचरिउ की चित्रित पाण्डुलिपि सबसे अधिक कलापूर्ण, प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है। यह आमेर शैली के चित्रो वाली है। पाण्डे लूणकरण जी मन्दिर की पाण्डुलिपि में बहुत बारीक तूलिका का उपयोग किया गया हैं। 18वी शताब्दी में चित्रित इस पाण्डुलिपि में पाण्डे लूणकरण जी अपने शिष्य खीवसी के साथ बतलाये गये हैं।

भक्तामर स्तोत्र को चित्रित करने में भी समाज ने बहुत रूचि ली थी। इस स्तोत्र की चित्रित पाण्डुलिपियाँ जयपुर, ब्यावर एवं भरतपुर के दिगम्बर जैन मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों में एक-एक पाण्डुलिपि संग्रहित है। इन तीन चित्रित

पाण्डुलिपियों में जयपुर वाली पाण्डुलिपि सबसे अधिक कलापूर्ण शैली में लिपिबद्ध है। चित्रो के आकार, उनके भक्तिपूर्ण हाव-भाव, रंग, आभूषण, नृत्य एवं आचार्य मानतुंग द्वारा भगवान आदिनाथ का स्तवन सब कुछ मूक फिल्म की तरह दिखायी देते हैं। एक-एक पद्य पर एक-एक चित्र है। जयपुर वाली पाण्डुलिपि 19वीं शताब्दी की है।

एक बून्दी शैली के चित्रो का गुटका है जिसमें विविध कथाओं पर आधारित चित्र है। इसी मे चौरासी जाति जयमाला भी है तथा कुछ जातियों के व्यक्तियो को माला की बोली बोलते हुए बतलाया गया है। इसमें जाति विशेष की वेशभूषा का पता चलता है। इसी मे दिगम्बर जैन साधुओ के भी चित्र है तथा जैनेतर साधुओं को भी जटा और ढाढ़ी में चित्रित किया गया है। विवाह समारोहों के भी चित्र है जिसमें वर-वधू को दिखलाया गया है। विवाह मण्डप का भी चित्र है।

मन्दिरो में भित्ति चित्रों का आलेख भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। जयपुर के कितने ही मन्दिरों में ये भित्ति चित्र जैन समाज के कला-प्रेम का बखान करते है। जयपुर के बड़े दीवान जी के मन्दिर मे, दारोगा जी के मन्दिर मे, सवाई माधोपुर, नागौर, बून्दी के मन्दिरो मे कलापूर्ण भित्ति चित्रो का आलेख है।

इस प्रकार कला सस्थानों के विकास में भी दिगम्बर जैन समाज एवं विशेषत: खण्डेलवाल जैन समाज का विशेष योगदान है।

4. शास्त्र भण्डारों की स्थापना

शास्त्र भण्डारो की स्थापना, उनके सवर्धन सरक्षण एव विकास मे जैन समाज का अपूर्व योगदान है। इन शास्त्र भण्डारो की स्थापना मे राजस्थान सबसे आगे रहा है। इसलिए वैसे तो यहाँ के प्रत्येक दिगम्बर जैन मन्दिर मे हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का सग्रह मिलता है लेकिन नागौर, अजमेर, जयपुर, भरतपुर, बून्दी, कोटा, झालरापाटण, कामा, श्रीमहावीर जी, कुचामन, सीकर, मोजमाबाद के मन्दिरो मे शास्त्र भण्डार पाण्डुलिपियो की सख्या की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अकेले जयपुर मे 13वी शताब्दी तक की पाण्डुलिपि सग्रहित है, सुरक्षित है। इन शास्त्र भण्डारों में प्राकृत, अपभ्रंश, सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी की हजारों पाण्डुलिपियाँ हैं। राजस्थान के जैन समाज की इस दृष्टि से यह सबसे महत्ती सेवा है। इन शास्त्र भण्डारों की अभिवृद्धि मे भट्टारको का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे जहाँ भी रहे वहीं के मन्दिरो में शास्त्र भण्डार की स्थापना कर दी और धीरे-धीरे उनमें नये-नये ग्रन्थो को लिखवा कर स्वाध्याय प्रेमियो के लिए उन्हे उपलब्ध कर दिया।

प्राचीनतम पाण्डुलिपि

जयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा तेरापंथीयान के शास्त्र भण्डार में संवत् 1329 को पंचास्तिकाय की प्राचीनतम पाण्डुलिपि संग्रहित है। 15वी, 16वी एवं 17वी शताब्दी मे लिपिबद्ध की हुई सैंकडो पाण्डुलिपियाँ इन भण्डारो में उपलब्ध होती है जिनमे खण्डेलवाल, अग्रवाल जैन समाज के इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है। इन शास्त्र भण्डारो मे अपभ्रंश भाषा की सैंकड़ों पाण्डुलिपियाँ संग्रहित हैं जिनमे से अधिकाश कृतियाँ अपने प्रकाशन की बाट जो रही है। नागौर, अजमेर, आमेर, जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे अपभ्रंश का सबसे अधिक साहित्य मिलता है। इस प्रकार जैन समाज को भट्टारको के निर्देशन मे इस साहित्य को जीवित रखने का श्रेय प्राप्त है।

अपभ्रंश के समान संस्कृत एवं राजस्थानी तथा हिन्दी भाषा में निबद्ध विशाल साहित्य जितना राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में मिलता है वह भी आश्चर्य-जनक है। कुछ पाण्डुलिपियाँ तो ऐसी है जिनकी एक मात्र पाण्डुलिपि इनमें मिली है और अभी तक उसकी दूसरी पाण्डुलिपि अन्यत्र कही नही मिल सकी। वास्तव मे प्राचीन जैन साहित्य का सरक्षण, संवर्धन एवं लेखन में जितना योगदान इस समाज का है वैसा अन्यत्र कही देखने को नहीं मिलता।

5. कलापूण मन्दिरों का निर्माण

जैन समाज एवं विशेषत: खण्डेलवाल जैन समाज ने कलापूर्ण मन्दिरों के निर्माण करवाने मे सबसे आगे रहा है। राजस्थान एव मालवा मे अधिकाँश मन्दिर खण्डेलवाल जैन समाज द्वारा बनवाये हुये है। उनमें से यद्यपि अधिकतर मन्दिर साधारण स्थिति के हैं लेकिन कुछ मन्दिर तो अत्यधिक कलापूर्ण है तथा अपनी विशेषताओं के लिए सर्वत्र है।

इन मन्दिरो में सांगानेर (जयपुर) का सघी जी का मन्दिर सबसे प्राचीन एवं कलापूर्ण है। इस मन्दिर का निर्माण 10वी शताब्दी में हुआ था। मन्दिर के चौक मे स्थित वेदी की बांदरवाल में सवत् 1011 का एक लेख है जिसके अनुसार मन्दिर का निर्माण इसके पूर्व ही होना चाहिए।[1] इस मन्दिर की तुलना आबू के दिलवाड़ा के मन्दिर से की जा सकती है जिसका निर्माण इस मन्दिर के बाद में हुआ था। मन्दिर का प्रवेश द्वारा अत्यधिक कलापूर्ण है। चौक में हाथी, स्तम्भों पर किन्नर-किन्नरियाँ विविध वाद्य यन्त्रों के साथ नृत्य करती हुई प्रदर्शित

1. संवत् 1011 लिखित पण्डित तेजा शिष्य आचार्य पूर्णचन्द्र।

की गई है। इन्द्रों के हाथो में फूलों की माला है जो चंवर भी कर रहे हैं। निज मन्दिर के चौक की वेदी का तोरण द्वार एवं बादरवाल की बनावट बहुत ही सुन्दर एव नयनाभिराम है। ऐसा लगता है कि कलाकार ने अपनी कला को उन्ही में उंडेल दी है। कलाकार ने जो भी भाव प्रदर्शित किये हैं उनको देखकर दर्शक भाव-विभोर हो उठता है। इसी चौक मे दक्षिण की ओर गर्भ-गृह मे संवत् 1185 की करीब ढाई फीट ऊँची भगवान पार्श्वनाथ की मनोज्ञ एवं कलापूर्ण प्रतिमा है जिसके दर्शन मात्र से ही दर्शक हृदय मे अपूर्व श्रद्धा उमड पडती है। मन्दिर के बाहर वाले चौक की दीवाल पर तथा मन्दिर के बाहर के भाग मे ढोला-मारू के चित्र है जिससे पता चलता है कि 11वी शताब्दी मे ढोला-मारू की कहानी अत्यधिक लोकप्रिय थी। मन्दिर के ऊपर के शिखर भी इसकी प्राचीनता को उजागर करने वाले है। यह मन्दिर अपनी शिखरो के लिए भी प्रसिद्ध है।

उदयपुर जिले मे स्थित अतिशय क्षेत्र के केशरियानाथ जी का मन्दिर उत्तरी भारत के दिगम्बर जैन मन्दिरो में प्राचीनतम मन्दिर है। यह मन्दिर भी 10वी शताब्दी के पूर्व का माना जाता है। संवत् 1431 में इसका प्रथम बार जीर्णोद्धार हुआ था। भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा की प्राचीनता के सम्बन्ध मे विद्वानगण एकमत नही है।

झालरापाटन का शान्तिनाथ का मन्दिर कच्छपघात शैली के मन्दिरो की शृंखला का बेजोड उदाहरण है। इसे शाह पीपा ने 1046 ईस्वी ने बनवाया था तथा इसकी प्रतिष्ठा भवदेव सूरि ने की थी। यहाँ की सातसला की पहाड़ी के स्तम्भ पर सन् 1109 का लेख है जो पीपा श्रेष्ठी की मृत्यु का उल्लेख करता है। यह वही व्यक्ति है जिसने शातिनाथ का मन्दिर बनवाया था। कला की दृष्टि से यह मन्दिर भी राजस्थान के प्रसिद्ध मन्दिरो मे से है।

राजोरगढ (अलवर) मे शान्तिनाथ की मूर्ति पर विक्रम सवत् 979 (922 ए. डी.) का लेख अकित है। नवगजा के नाम से प्रसिद्ध इस मन्दिर मे भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा 13 फीट 9 इच के आकार की है जो यहाँ के भयानक वन मे मानो सभी जीव-जन्तुओ एव पशु-पक्षियो को अभयदान देती है।

शेरगढ़ का प्राचीन नाम कोशवर्धन था। 10वी एव 11वी शताब्दी मे यहाँ जैन धर्म अपने वैभव पर था। 1105 ईस्वी मे तीर्थ कर नेमिनाथ का महोत्सव नये चैत्य मे मनाया गया था उस समय वहाँ जैनाचार्य वीरसेन विराज रहे थे। सन् 1134 के एक शिलालेख के अनुसार खण्डेलवाल श्रेष्ठि शात के पुत्रो द्वारा शांतिनाथ, कुंथनाथ एव अरहनाथ की मूर्तियो की स्थापना का उल्लेख है।[1] अटरू मे दो बड़े-

बड़े जैन मन्दिर थे जो 10वीं शताब्दी के आस-पास के थे। एक सुन्दर खड्गासन प्रतिमा अब भी वहाँ रेल लाइन के पास प्राचीन मन्दिर में दबी हुई है। इस मूर्ति पर विक्रम संवत् 1165 का लेख अंकित है। केशोरायपाटन जिसका पूर्व नाम आश्रम-पट्टन था, यहाँ स्थित मुनिसुव्रनाथ का मन्दिर 12वीं शताब्दी का मन्दिर है। यहाँ आचार्यों एवं साधुओं का निरन्तर विहार होता रहता था। श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्तदेव जैसे तपस्वी साधु का यह आश्रमपट्टन साधना का केन्द्र था। 13वीं शताब्दी के मदनकीर्ति ने शासन चतुर्विंशितिका ने इस स्थान का तीर्थ के रूप में उल्लेख किया है।[1]

डेहू (नागौर) का चन्द्रप्रभु स्वामी का मन्दिर 12वीं शताब्दी में निर्मित माना जाता है। चन्द्रप्रभु स्वामी की मूर्ति पर संवत् 1219 में प्रतिष्ठित होने का लेख है तथा यहाँ पर विराजमान बाहुबली स्वामी की मूर्ति 9वीं शताब्दी की मानी गयी है। मन्दिर विशाल एव कलापूर्ण हैं।

बिजोलिया (भीलवाड़ा) को भगवान पार्श्वनाथ की तपोभूमि बनने का सौभाग्य मिला था। वहाँ के संवत् 1226 के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वहाँ 12वी शताब्दी में एक विशाल मन्दिर निर्माण का हुआ था। जो वर्तमान में वहीं कहीं दबा पड़ा है या फिर काल के गर्त में समा गया है।

शिवाड़ (राजस्थान) के जैन मन्दिर का निर्माण संवत् 1212 में हुआ था। संवत् 1556 में इसका जीर्णोद्धार एक खण्डेलवाल श्रेष्ठी ने कराया था। कविवर ठक्कुरसी ने चाकसू का अपनी कृतियों में अच्छा वर्णन किया है। मोजमाबाद का भगवान आदिनाथ का मन्दिर राजस्थान के कलापूर्ण मन्दिरों में से एक मन्दिर माना जाता है। यह मन्दिर आमेर के महाराजा मानसिंह के प्रधान अमात्य नानू गोधा की अमर कृति है। इसके तीन शिखर बहुत ही भव्य एवं आकर्षक हैं। मन्दिर के भीतर के चौक का सामने वाला भाग कला-कृतियों का खजाना है तथा मुख्य वेदी के गुम्बज के भीतरी भाग में भित्ति चित्रो का अम्बार लगा हुआ है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा संवत् 1664 में हुई थी।

17वीं शताब्दी में निर्मित महावीर अतिशय क्षेत्र पर स्थित भगवान महावीर

---

1. राजस्थान का प्राचीन तीर्थ—केशोरायपाटन—डॉ० कासलीवाल।
2. विण्णेक ढुंढाहड वेस मज्झि, णयरी चम्पावई अरिऊ सत्थि।
   तहि अत्थि पास जिणवर णिकेउ, जो भवण्णिहि तारण हसेउ ॥
   —मेघमाला कथा

का मन्दिर भी अपनी विशालता एवं तीन शिखरो के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है । सांगानेर, मोजमाबाद के समान यहाँ के शिखर भी उत्तुंग एवं आकर्षक है ।

इसी तरह 17वीं–18वी शताब्दी मे निर्मित चांदखेडी क्षेत्र यहाँ के मन्दिर के भूमिगत भौरें में विराजमान भगवान आदिनाथ की विशाल एवं मनोज्ञ प्रतिमा के लिए प्रसिद्ध है । इस मन्दिर का निर्माण संवत् 1746 के पूर्व हो चुका था ।

जयपुर तो जैन मन्दिरो का नगर ही है । एक ही नगर में 200 मन्दिर चैत्यालय होना यहाँ की एक विशेषता है । सभी मन्दिर चैत्यालय संवत् 1788 से संवत् 2045 तक निर्मित है । विगत दो सौ भाठ सौ वर्षो मे बने इन मन्दिरों मे सिरमोरियो का मन्दिर, बड़े दीवान जी का मन्दिर, गोधो का मन्दिर, तेरहपथी बड़ा मन्दिर, पाटोदी का मन्दिर, लश्कर का मन्दिर विशाल एवं कलापूर्ण है । सिरमोरियो के मन्दिर में मुख्य वेदी के पीछे पंचकल्याणक सुमेरु पर्वत का अकन कलापूर्ण है । संगमरमर पर अंकित भाव अत्यधिक मनोज्ञ एवं मुँह बोलने वाले है । मन्दिर की मुख्य वेदी एवं उसके ऊपर के शिखर दर्शनीय हैं । बड़े दीवान जी के मन्दिर की उत्तर की ओर जो चैत्यालय है उसमे पच्चीकारी का कार्य मन को मोहित करने वाला है । इसी तरह गोधो के मन्दिर में मुख्य मन्दिर के बाहर के भाग के दरवाजो पर जो बारीक कुराई का कार्य कराया गया है वह बेजोड है । तेरहपंथी बड़ा मन्दिर में चौक के पूर्व की ओर तिबारे में अशोक वृक्षो की पच्चीकारी उल्लेखनीय है । इसी तरह पाटोदी के मन्दिर की मुख्य वेदी एव उसके ऊपर के गुम्बज मे रगीन चित्र दर्शनीय है । चौडे रास्ते में स्थित यति यशोदानन्द के मन्दिर के चौक मे चारो ओर के भित्ति चित्र भी नयनाभिराम है ।

6. तीर्थ क्षेत्रों की स्थापना एवं विकास

देश में सैकडों की संख्या मे तीर्थ क्षेत्र है । इनमे कुछ सिद्ध क्षेत्र है एवं अन्य सभी अतिशय क्षेत्र है । सिद्ध क्षेत्र तो तीर्थङ्करों के किसी भी कल्याणक की भूमि होने के कारण निश्चित है लेकिन अतिशय क्षेत्रो का उद्भव होता रहता है और उनकी संख्या सबसे अधिक है । जैन समाज के अन्य अंगों की तरह खण्डेलवाल जैन समाज ने उनकी स्थापना एवं विकास में पूर्ण सहयोग दिया है ।

सिद्ध क्षेत्रों में सम्मेद शिखर, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर, राजगृही जैसे प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्रो के विकास में उनका अत्यधिक योगदान रहा है । अष्ठापद (कैलाश) पर जिस तरह भरत चक्रवर्ती ने जिनालयों का निर्माण करवाया उसी तरह साह नानू गोधा ने सम्मेद क्षेत्र पर निर्वाण प्राप्त बीस तीर्थङ्करो के मन्दिर

बनवाये और उनकी अनेक बार यात्रा की। संवत् 1732 ज्येष्ठ सुदी 2 को आमेर निवासी गिरधर, काला गोत्रीय श्री घासीराम शाह एवं उनकी पत्नी ने वहाँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन कराया था। संवत् 1863 में दीवान रायचन्द छाबड़ा ने एक विशाल सघ लेकर सम्मेद शिखर जी की यात्रा की और वहाँ विकास के अनेक कार्य किये।

गिरनार सिद्ध क्षेत्र

गिरनार सिद्ध क्षेत्र का राजस्थान वासियों एवं विशेषत: खण्डेलवाल जैन समाज का विशेष सम्बन्ध रहा। राजस्थान में होने वाले सभी श्रेष्ठियों ने वहाँ वन्दना की। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में एक गुटका है जिसमें गिरनार की यात्रा का वर्णन दिया हुआ है। संवत् 1858 में दीवान रायचन्द छाबड़ा ने रैवतकाचल (गिरनार) की पूरे संघ के साथ यात्रा की और वहाँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी।

हस्तिनापुर

हस्तिनापुर क्षेत्र के मन्दिर में संवत् 1164 की एक शान्तिनाथ स्वामी की खड्गासन प्रतिमा है जो देवपाल सोनी द्वारा प्रतिष्ठित करवा कर विराजमान की गयी।

अहार क्षेत्र

अहार जी क्षेत्र का प्राचीन काल में खण्डेलवाल जैन बन्धुओं ने विकास में बहुत रुचि ली थी। वहाँ जितनी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे वर्तमान में वहाँ के म्यूजियम में रखी हुई है। वहाँ 12वीं और 13वीं शताब्दी में खण्डेलवाल बन्धुओं द्वारा स्थापित कितनी ही मूर्तियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं। इसी तरह चम्पापुर एवं पावा का तीर्थ है जिनके विकास में इस समाज ने अपना तन, मन, धन समर्पित कर रखा है।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी

उक्त अतिशय क्षेत्र की स्थापना एवं विकास में खण्डेलवाल जैन समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है। जब से मूर्ति का जमीन से उद्‌भव हुआ उसके बाद से ही इस समाज के व्यक्ति यहाँ की देखभाल में लगे रहे। बसवा निवासी श्री अमरचन्द्र बिलाला ने यहाँ मन्दिर निर्माण करवाया।

बसवा के बिलाला परिवार का इस क्षेत्र से बहुत लगाव रहा है। संवत् 1782 में भवानी बैनाड़ा सरावगी क्षेत्र के मन्दिर का पुजारी टहलवा था। संवत् 1834 में नथमल बिलाला यहाँ संघ समेत यात्रा के लिए आये थे। संवत् 1863 में दीवान रायचन्द छाबड़ा ने सम्मेद शिखर जाते हुए यहाँ की यात्रा की थी। इस प्रकार विगत 400 वर्षों में इस क्षेत्र के विकास में खण्डेलवाल समाज का विशेष योगदान रहा है।

राजस्थान एवं देश के अन्य सभी तीर्थों के विकास में खण्डेलवाल जैन समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सब का वर्णन षष्ठ अध्याय—पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएँ—में किया जा चुका है।

□

अनुक्रमणिकाएँ

ग्राम नगर नामानुक्रमणिका

नामानुक्रमणिका

जाति एवं गोत्र

ग्रन्थानुक्रमणिका

जापरमरांमजी कूलदेव्याआंमणिवाहण बलषलादै
तो दूधीहोयगाय बेचैतो दूधी होय बिक्रमसौ संवत
८ मिती वैसाषसुदि ४ पाछै संवत १२७२ वारैथरमचंद
सिधांती कै बछराज रासराजपाटणी हूवा सुकाती:
आलमैं ऐकआईसौं ढालिमैं ऐकआईसो नरिकुमावे
ढासौ ढालिमैं मुकातीकादांमपकंतानहीतादिअरज
सुरतिलिषिहरमपातिसाहासुं अरजपकंचायहुडापो
बेटोकरिराष्यौ मुसलमांनहुवौ फेरि हाकिमहोयसा
मरिगयो जोमाई सारा मुसलमांनकरे सोधिनायानैप
कड्या जोथे मुसलमांन होहत दिवासराजसारामाईम
सलतिकरी फलोधी श्रीपारसनाथजीकीजातकोनांव
लेरहुटसीजो कहीमेह पार्श्वनाथजीकीजात बोलांछां
महाकोमाई बछराजनैं अंाप्यादे षांतदिजात्राआवांसोअ
बमेहयांसौ मिल्यामनकौ मनोरथसिधिहुवौ सो मुस
लमांनजात्राकरिआवांतादिडालाअबमुसलमांन हूंतो
जात्रा लागै नहीतीसुं जात्राकरिआंवांबानदि बछराज
कही मैंनी चालुगा सोयेसाराफलोधी नचालता गेलामैं

पाण्डुलिपि संख्या–2

इसो बिचार करि जोगध्यानमैं सावधान ऊं क
नगर खंडेला मैं खंडेलगिरराज्य करै॥ खंडे
लानै गांव चोरासी लागै। त्यांमैं जुदा जुदा ठाकुर
चाकरी करैं त्यांनै गांव चाकरी मैं दीया। सो दो
य गांवांका ठाकुरांकै बेटा न ठा। सो वै ह गांव खं
डेला मैं ही ठा॥ सो वां गांवां मैं एकै अवसरि मरव २
ई बा परी। लोक घणां मरिबा लागा। तदि आह्म
णांनै राजा बुलाय पूछ्यो यो कष्ट कह्यां मिटै चो
रासी गांवांका लोक मरीका उपद्रव सुं सारा खंडेले
आयनै लाऊ वा उपद्रव ज्यादा उपज्यो तदि ब्रा
ह्मणांक ह्यो महाराजि नरमेध यज्ञ करा जे ज्योंक

पाण्डुलिपि संख्या-4

श्री आदिनाथ दि. जैन मन्दिर मोजमाबाद (जयपुर)
के तीन उन्नत शिखरों की झलक ↑

सहस्रकूट चैत्यालय
रामगंजमंडी
(कोटा) →
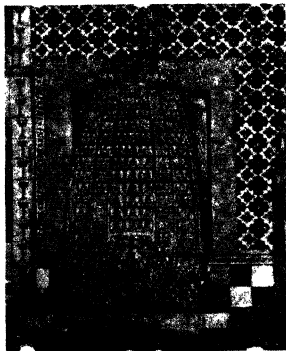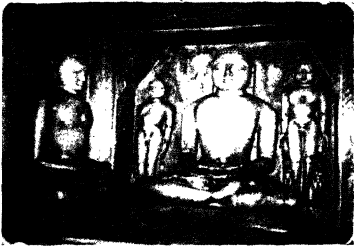
कालू छाबड़ा द्वारा संवत् 1593 में प्रतिष्ठित भगवान शान्तिनाथ की विशाल एवं चमत्कारिक प्रतिमा आवां (राजस्थान) ↑